आदवन की कहानियां

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

आदवन की कहानियां

संकलन

इन्दिरा पार्थसारथी

अनुवाद

सरस्वती रामनाथ

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

विषय-सूची

भूमिका

"क्षणों का रसास्वादन करने हेतु शांति अपेक्षित है। एकांत की जरूरत है। गतिशील जिंदगी के शोरगुल और बेशुमार दौड़धूप के बीच गहरी, कोमल और सूक्ष्म भावनाओं के परस्पर विनिमय के लिए कोई गुंजाइश नहीं। इसीलिए ये 'डेरे' बिछाए गए हैं, ताकि इनकी छाया में हम थोड़ा आराम से, शांति से जिंदगी की विभिन्न बातों पर गहराई से विचार कर सकें। जिंदगी की खुशियों और निराशापूर्ण थकान को, आरोहरण और अवरोहण का स्वर बनाकर, उनके मधुर मिश्रण में सुगम संगीत सुनने की कोशिश तो हम कर सकते हैं।"

'पहले रात आएगी' शीर्षक कहानी संग्रह की भूमिका में आदवन अपनी कहानियों की इस तरह आलोचना करते हैं। उन्होंने 'डेरे' का जो उल्लेख किया है, वे 'डेरे' उनकी कहानियां हैं। इसी कहानी संग्रह पर उनको साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला।

यह कथन साहित्य के प्रति आदवन के विचार और सिद्धांतों पर प्रकाश डालता है। बिल्कुल प्रशांत वातावरण में, एकांतता की स्वर्गीय अनुभूति में अपने आप की तलाश में लीन, अपने को पहचानने की कोशिश जो है, वही है साहित्य।

यह पहचान शून्यता में दर्शित नहीं होती। 'मैं—तुम' के रिश्ते में ही यह अर्थपूर्ण होता है। साहित्य कोई विशिष्ट भाषा नहीं, वह तो संवाद है। परस्पर के संभाषण से शैली की बात बनती है। शैली तो विचारों का प्रतिबिंब है। पाठक पर विश्वास न करके अपने आपके लिए जो गंभीर विचार करता है, वह आत्मकेंद्रित लेखन साहित्य नहीं हो सकता है।

यह सच है कि आदवन अपनी सभी रचनाओं में जोरदार व गंभीर चिंतन करते रहते हैं, लेकिन वे कभी यह नहीं भूलते कि वे पाठक के साथ बोल रहे हैं। यही उनकी लेखनी की सफलता है।

वे अपनी लेखनी द्वारा समाज से अपने रिश्ते को, पहचान को, कलात्मक एवं नाजुक ढंग से संस्थापित करने की कोशिश करते हैं।

आदवन जो बचपन से दिल्लीवासी रहे थे, तमिल में लिखने का उनका निश्चय यह साबित कर देता है कि वे अपनी जड़ों से अपने को खंडित नहीं करना चाहते थे। तमिलनाडु के वर्तमान सांस्कृतिक, कलात्मक माहौल से अपने को अलग हटाकर, तटस्थ भाव से, एक दर्शक के रूप में, इस समाज में अपने चेहरे की तलाश करते हुए जैसे जीया, देखा, उसी को साहित्य के मनोरंजक खेल-सा उन्होंने अपना लिया था। यही उनके सशक्त लेखन का बल था।

आदवन ने अपनी पुस्तकों के आमुख में जो कुछ लिखा है, उनमें अपनी रचनात्मक प्रक्रिया का 'मनोरंजनात्मक खेल' के रूप में जिक्र किया है। 'खेल' को कोरा मनोरंजन नहीं समझना चाहिए। तात्विक दृष्टि से देखा जाए तो जीवन में सब कुछ खेल-सा ही है। कवि कम्बन ने भगवान को 'अविरत रूप से क्रीड़ा करने वाला' कहा है। साहित्य भी ऐसा ही त्रिकर्मी है। इस दृष्टि से सृजनशील लेखक की तुलना सृष्टिकर्ता ईश्वर से की जा सकती है।

'खेल' वाले दृष्टिकोण को अपनाकर ही कृतिकार समाज के साथ स्वस्थ स्वाभाविक संबंध स्थापित कर सकता है और उसके साथ ही तात्विक दृष्टि से अपने को पृथक कर पाता है। इसी बिंदु पर वह 'दर्शक' का दर्जा पाता है। 'जेम्स जायस' कहते हैं : "इस जगत का सिरजनहार अपनी ही सृष्टि मानव कुल को परस्पर लड़ते-भिड़ते और फिर मिलते-जुलते देखता रहता है—एकदम तटस्थ भाव से अपने नाखून तराशते हुए।" सृष्टिकर्ता की भांति रचनाकार भी मात्र दर्शक बना रहे, तभी उसका साहित्य कलात्मकता की कसौटी पर खरा उतरता है।

आदवन कहते हैं—"शब्दों से खिलवाड़ करना छोटी उम्र से ही मेरा प्रिय विनोद रहा है। 'शब्द' मुझे बेहद अच्छे लगते हैं। शब्दों की मधुर ध्वनि, ध्वनियों का मार्मिक भेद, उनका पारस्परिक संबंध, इनसे व्यंजित अर्थों की अनुगूंज, सब कुछ मुझे अच्छे लगते हैं। लोगों से भी मेरा लगाव है। उनके साथ मेल-जोल मुझे बहुत अच्छा लगता है।"

शब्दों में असीम शक्ति होती है। वह समाज से मनुष्य के तादात्म्य को सुदृढ़ करने वाला एक साधन है। सामाजिक धरातल पर भावनाओं की अभिव्यक्ति शब्दों द्वारा ही होती है। सामाजिक जीवन में मानवों के परस्पर मिलन या टकराव से जो परिवर्तन होता है या होना है, शब्द ही उन्हें अभिव्यंजित करते हैं। विज्ञान का आधार पारिभाषिक शब्द है (Technical Language)। साहित्य का आधार सौंदर्य भावना (Aesthetics) है। समाज में प्रचलित शब्द जब साहित्यक रूप लेते हैं उस समय वे अपने प्रयोक्ता का व्यक्तित्व बनकर अवतरित होते हैं। उसके समाज में यही उसकी पहचान है। शब्द ही सामाजिक भावनाओं को अभिव्यक्त करने वाला साधन है; सामाजिक समझौते का माध्यम है।

बिंबों की तलाश में आदवन अपने को गंवा नहीं बैठे हैं। समालोचकों का कहना है— "प्रकृति को लेकर कविता करने वाले दो महान कवियों में 'शेली' ने अपने को खोया जबकि वर्ड्सवर्थ ने प्रकृति में अपने आप को पाया।"

शब्दों से खिलवाड़ करते करते आदवन स्वयं को पहचानने की कोशिश जो करते हैं, इसी प्रक्रिया में उनकी कृति अपना रूप संवार लेती है।

असल में इनकी 'पहचान' क्या है? वे स्वयं लिखते हैं—"कभी मैं अपने 'मैं' को पहचानने के लिए लिखा करता हूं। कभी तो अपने 'मैं' से परे हटकर आराम करने के लिए भी लिखा

करता हूं। हरेक 'मैं' न्यायसंगत और महत्वपूर्ण लगता है। इसलिए अपने 'मैं' को सामने खड़ा कर लेना तथा औरों के 'मैं' से होड़ लगाना मुझे बचपना-सा लगता है। हां, मैं उभयपक्षी व्यक्ति हूं।"

अपने को उभयपक्षी कहते हुए आदवन अपने को Paranoid Schizophrenic के रूप में पेश नहीं करते। मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर अपने को वादी और प्रतिवादी के रूप में देखने की सुलझी हुई दृष्टि को वे इसके द्वारा व्यक्त करते हैं। इसी के फलस्वरूप व्यक्ति और समाज के बीच के रिश्ते के विरोधाभास को वे बखूबी समझ पाते हैं। समझ तो लेते हैं लेकिन फैसला सुनाने या अपनी तरफ से समाधान पेश करने का उपक्रम नहीं करते। अपने को इस जिम्मेदारी से मुक्त करते हुए वे परे हट जाते हैं।

इसी बात को लेकर कतिपय समालोचक यह मत बना लेते हैं कि आदवन में साहित्य संबंधी कोई निश्चित सैद्धांतिक आग्रह नहीं है।

इस पर आदवन की प्रतिक्रिया है : "कुछ निर्दिष्ट प्रतीक्षाओं और अपेक्षाओं को दिशा-निर्देशक बनाकर साहित्य क्षेत्र में कुछेक लक्ष्यों पर अचूक निशान साधते फिरने वाले अति समर्थ साहित्यकारों से मुझे ईर्ष्या होती है। मैं आलसी व्यक्ति हूं। मैं चाहता हूं इस विशाल साहित्य सागर में बिना दिग्दर्शक यंत्र के हवा की दिशा में तिरता रहूं। मेरी नजर किसी मंजिल पर या निर्दिष्ट लक्ष्य पर नहीं है। जो लोग केवल तलाश करते रहने में ही आनंद का अनुभव करते हैं उन सब को मेरी नैया अपने प्रिय मित्र के रूप में प्यार से स्वागत करती है।"

अब प्रश्न यह उठता है—लेखक के लिए सैद्धांतिक आग्रह अपेक्षित है या नहा? यह भी पूछा जा सकता है कि किसी विचारधारा के तमगे को गले में बांध कर उस 'वाद' को न्यायसंगत सिद्ध करने के लिए लिखना ही सैद्धांतिक आग्रह है?

सृजनात्मक रचनाकार सृजन करता है। समीक्षक रूपी पादरी उसका नामकरण करता है। यही बहुधा उसकी पहचान का लेबल बन जाता है। अपने ऊपर थोपी गई इस पट्टी को उसे मजबूरन क्रूस के समान ढोना पड़ता है, उस समय उसकी सृजनात्मक प्रतिभा एक निर्धारित दायरे के अंदर सिमट जाती है तथा उसका लेखन निर्वचनीय विषय बन जाता है।

कला को अमरत्व प्रदान करने वाला तत्व उससे प्राप्त कौतूहल पूर्ण आश्चर्य में निहित है। जैसे कि एक ही राग को एक महान संगीतकार विभिन्न अवसरों पर विविध ढंग से गाता है।

आदवन की रचनाओं में ऐसे कौतूहलपूर्ण आश्चर्य का मैं अनुभव करता हूं। पुराना बुड्ढा और नई दुनिया' शीर्षक कहानी के उसी लेखक ने मर्मस्पर्शी प्रेम-कहानियां भी लिखी हैं।

लेकिन उनकी सभी कहानियों में अंतर्निहित विरक्त भावना को हम महसूस करते हैं। उनकी कहानी 'इंटरव्यू' में कथा पात्र स्वामीनाथन के मुंह से जो उद्गार व्यक्त हुआ है, वह लेखक की मनोदशा को प्रतिध्वनित करता है। "पहला बने रहने में एक हिचक, अंतिम बने रहने में घृणा।" इसी प्रकार 'पहले रात आएगी' कहानी का शीर्षक वास्तव में लेखक की मनोवृत्ति पर प्रकाश डालता है। शेली का कहना है ''सर्दी के बाद वसंत का आना होगा।'' आदवन भी पहले रात का स्वागत करते हैं। उस कहानी में राजारामन कहता है–"अब रात है, रात के गुजरने पर सूरज निकलेगा। दिन प्रकाशमान हो जाएगा। रोशनी हो जाएगी। वही 'कल' का दिन है।"

वर्तमान नरक है, भविष्य स्वर्ग है। वर्तमान की विरक्ति को टालना संभव नहीं है। मगर जो 'कल' है वही आज बन जाए, तब भी वह स्वर्ग नरक बन जाएगा। जीवन की रोचकता इसी में है कि वह कल का दिन हमारी आशा और इंतजार का 'कल' बना रहे। यह प्रतीक्षा ही जिंदगी में रस भरती है।

'पुराना बुड्ढा और नई दुनिया' कहानी में आदवन (इस कहानी की रचना के समय आदवन की उम्र 31 वर्ष की थी) एक बूढे आदमी के अंतर्मन में प्रवेश करके उनकी चिंतन-धारा के रूप में कहानी सुनाते हैं। प्रत्येक बाह्य घटना उनकी विचारधारा के दीपक को दीप्त करने में 'स्विच' का काम देती है। पत्नी की मृत्यु के बाद बुजुर्ग अपने बेटे के साथ रहते हैं। अपनी दुनिया के लुट जाने की व्याकुलता में, नई दुनिया को देखकर वे घबरा जाते हैं। अपने मनपसंद नाई की दुकान में बाल कटवाने जाते हैं। वहां पर आज के नौजवानों को अपनी ही बनाई बोरियत में निरंतर अकुलाते, बिसूरते देखते हैं। नई पीढ़ी जीवन के प्रति क्यों इतनी विरक्त है? न तो उन्हें किसी बात पर आस्था है, न ही वे गंभीर रूप से किसी काम में अपने को जुड़ा पाते हैं, यह बात उन्हें दुखी कर देती है। अपने विगत दिनों में जीवन के जो मूल्य थे, उनके बारे में विचार करते हैं। अपने दांपत्य जीवन और आज अपने बेटे के दांपत्य जीवन पर विचार करते वक्त उन्हें इस बात पर वेदना होती है कि ऐसे आत्मीय, अंतरंग रिश्तों में भी आजकल इतना बनावटीपन और ढोंग क्यों? उनका बेटा और बहू दोनों कालेज के प्राध्यापक हैं। एक दिन शाम को मोटवानी और उनकी पत्नी उनसे मिलने आती हैं। मोटवानी आज की बुद्धिवादी दुनिया के प्रतिनिधि हैं, नकली बुद्धिजीवी। दक्षिण, वाम और मध्य हर तरह के राजनैतिक दलों के पक्षधर हैं। अर्थात वे जानते हैं कि जिंदगी में सफलता कैसे प्राप्त की जा सकती है। व्हिस्की की चुस्की लेते हुए दरिद्रता रहित नवीन समाज के निर्माण का दम भरनेवाले इन 'ड्राइंग रूम' सोशलिस्टों के वार्तालाप में भाग लिए बिना बुजुर्ग परे हट जाते हैं। तभी सुनते हैं कि उस दिन सुबह जिस नाई ने उनके बाल काटे थे, उस पर तैश में आकर एक उद्दंड युवक ने छुरी चला

दी है। वे अपनी अबोध पोती को छाती से लगा लेते हैं। यही कहानी का अंत है।

युवकों के अंदर पनपने वाली 'अलगाव' भावना के बारे में हम जो कहानियां पढ़ते रहते हैं, एक बूढ़े के अलगाव की कहानी हमें एक दूसरी किस्म का अनुभव प्रदान करती है। यह बुज़ुर्ग जीवन से विरक्त नहीं है। नाई का कर-स्पर्श, बाल कटवाने के बाद गरम पानी में नहाने, बढ़िया काफी की चुस्की लेने आदि छोटी छोटी बातों में भी उन्हें स्वर्गीय सुख का अनुभव होता है। जीवन से ऊबकर बनावटी मस्ती में डूबकर हमेशा बेचैन रहने वाली बेबस युवा पीढ़ी पर वे खीझ उठते हैं।

वर्ग भेदों में बंटे हुए इस समाज में औद्योगिक उन्नति के कारण कई प्रकार की समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। आर्थिक असमानता की वजह से पारिवारिक जीवन अस्तव्यस्त हो जाता है। बुनियादी तौर पर जो समाज सामंतवादी सभ्यता पर आधारित है, उस पर जब औद्योगिक युग के मूल्य थोपे जाते हैं, तब परस्पर विरोधी तत्व उभरने लगते हैं। आज की युवा पीढ़ी, तेज रफ्तार से मोटर साइकिल चलाने में, मादक पदार्थों की उत्तेजना में मस्त होने में, केवल मनोविनोद के लिए किए जाने वाले हिंसात्मक कांडों में ही अपनी अस्मिता ढूंढ़ने पर तुली है। उनके मन में असीम आक्रोश है। लेकिन वे स्वयं नहीं जानते कि उनका यह आक्रोश किसके प्रति है। 'कल' के प्रति उनके मन में नफरत इसलिए होती है कि 'आज' का दिन 'कल' का सिलसिला है। बीते हुए उस 'कल' से नफरत है और आनेवाले 'कल' की बिल्कुल चिंता नहीं है। इस कहानी में हम देखते हैं कि अतीत को जड़ से मिटा देने का जोश ही उस मूली वाले युवक को अतीत का चिह्न बने उस नाई की हत्या करने के लिए उत्तेजित करना है। लेकिन भविष्य के प्रति बूढ़े की आशा और विश्वास टूटता नहीं। कहानी के अंत में बुजुर्ग अबोध बच्ची को जो गले से लगा लेते हैं, वह भविष्य के प्रति आशा और विश्वास का प्रतीक है। आदवन बड़े कलात्मक ढंग से इसे समझाते हैं।

बूढ़े के मन में प्राचीनता के प्रति जो आस्था है, वह कृत्रिम या नफरत करने योग्य नहीं है, बल्कि यह वह उदात्त मनोभाव है जिसमें एक व्यक्ति सामाजिक रिश्तों में अपनी आजादी को महसूस कर सकता है। 'सामाजिक रिश्ते' से हमारा तात्पर्य वह नकली रिश्ता नहीं जो बूढ़े के बेटे और मोटवानी के बीच में है। यह वह रिश्ता भी नहीं जो उनके और नाई के बीच था। बुजुर्ग के अंदर बदलती हुई नई दुनिया के अनुरूप अपने को ढाल लेने की जो सन्नद्धता है वही मार्के की बात है।

जार्ज मार्काव का कहना है–"प्राचीनता में सच्ची और गहरी आस्था हो तो कोई व्यक्ति नैसर्गिक और ऐतिहासिक कारणों से बदलते हुए समय के अनुरूप अपने को ढालने में सक्षम होता है।"

आदवन की हरेक कहानी अंतर्मुखी यात्रा है। इस यात्रा के फलस्वरूप जो मूल्य सामने

आते हैं, उनके आधार पर बाह्य जगत की घटनाओं की विवेचना की गई है।

लेकिन आदवन अपनी तरफ से कोई फैसला प्रस्तुत नहीं करते। वे जो कुछ कहना चाहते हैं, उसे उनकी लेखनी बड़ी सफाई के साथ कोमल और मधुर शैली में व्यक्त कर देती है।

आदवन की सफलता का रहस्य यही है।

- इन्दिरा पार्थसारथी

पहले रात आएगी

बस एक मोड़ पर मुड़ी कि शाम की धूप सीधे चेहरे पर आ लगी। राजारामन ने अपना चेहरा उल्टी दिशा की ओर मोड़ लिया, तभी पार्क का वह द्वार पल भर के लिए उसकी नजर में आया और बस की तेज रफ्तार में आंखों से ओझल हो गया। हां, वही पार्क—अनायास उनका मन उल्लसित हो उठा।

इसी पार्क में एक दिन कोदै के साथ बैठा हुआ वह उसके सामने अपनी पारिवारिक समस्याओं का दुखड़ा रोया था। उन दिनों वह और भी जवान था। उसने कहा था, "सब से बड़ी समस्या तो पिताजी हैं; घर की शांति को नष्ट करने वाले नर-राक्षस!"

यह सुनकर कोदै हंस पड़ी। जब वह हंसती है उसके दोनों गालों पर सुंदर गड्ढे पड़ते हैं। उसकी मनोहर दंतपंक्ति चमक उठती है। यही सौम्यतापूर्ण लावण्य उसकी व्यक्ति-मुद्रा है। नैसर्गिक मोहक सौंदर्य। राजारामन की अपनी मां जैसी वह गुमसुम या खोई नहीं थी। शायद कोदै के प्रति उसके आकर्षण का यही कारण रहा होगा।

''क्यों हंस रही हो?'' उसने पूछा।

"रवि, भास्कर, रामू, किसी से भी पूछो, सब के सब यही रट लगाए हैं। लगता है, हर घर में पिता ही सबसे बड़ी समस्या हैं।"

बड़ी चंट है। राजारामन को जता रही है कि इतने सारे लड़के उसके दीवाने हैं। यह बात जताकर उसे झटका देना चाहती है। लेकिन ये नाज-नखरे, छेड़छाड़ सब कुछ उन दिनों उसे बेहद अच्छे लगते थे।

पूछा, "क्या कह रही हो? इन सभी के पिता पियक्कड़ हैं?"

"इन दिनों कौन ऐसा है जो नहीं पीता?"

"ये सभी अपनी-अपनी बीवियों को पीटते भी हैं?"

"देखो, वे मेरे दिली दोस्त हैं। आत्मीयता के क्षणों में सहज भाव से उन्होंने अपने दिल की जो भी बात मेरे सामने उंड़ेल दी हो, उसे हर किसी के सामने दुहराना मैं वाजिब नहीं मानती।"

"आत्मीयता के क्षणों में... माने... मैं-मैं समझ नहीं पाया।"

"शक्की कहीं के।'' कोदै ने पट से उसके हाथ पर हल्की चपत मारी। बोली, ''कभी

कभी तो हम हर किसी से आत्मीयता का अनुभव करते हैं न? अपने पिता के साथ भी...”

पिताजी ! फुर्र से उसका पारा चढ़ गया। बोला, “अपने पिता के साथ मैंने ऐसा सहज भाव कभी महसूस नहीं किया है। वे ऐसे सहज क्षणों को प्रोत्साहित नहीं करते। लगता है, उनकी यह कतई इच्छा नहीं कि कोई उनसे प्यार करे, बदले में उनसे प्यार की कामना करे। इसे वे गुस्ताखी मानते है। अर्थात स्नेह करना कोई जुर्म हो... समझ में नहीं आता कि इस बात को मैं कैसे समझाऊं।”

“ऐसे एकाध व्यक्तियों से भी मेरी वाकफियत है।” कोंदे ने सहानुभूति दर्शाते हुए सिर हिलाया।

“ऐसी बात है? लेकिन मुझे लगता था कि मेरे पिता जैसा पशु और कहीं नहीं मिलेगा। जानवर—निरा जानवर। जानती हो, मेरी मां की किस तरह पिटाई करते हैं? लेकिन वड़ी फन्नी है मम्मी—मुझे लगता है कि मां उनके गाली-गलौज और तीखे व्यवहार का मन ही मन आनंद लेती है।

“ऐसी भी स्त्रियां होती हैं।”

“अठारह साल की इस छोटी उम्र में, लगता है, तुम बहुत कुछ जानती हो।”

“सिर्फ एक बात नहीं जानती।”

“वह क्या?”

“तुम्हारे बारे में।” फिर से कोंदे के गालों पर भंवर से गड्ढे।

“सॉरी... गलती हो गई। ‘आप के बारे में’ ऐसा कहना चाहिए था न?”

“ना-ना...नहीं—चाहिए—यह आप-आपकी...जैसी औपचारिक वातें। ये फिर से मेरे पिता की निर्ममता और मां की उस साहिष्णुता की याद दिलाती हैं, जिससे मन उकता गया है। बस, हम लोग ‘तुम’, ‘तुम’ कह कर वातें करें। यही संबोधन हमें एक दूसरे के निकट ले आता है।”

तू-तू-तू-तू...करते हुए कोंदै एक एक करके अपनी उंगलियां चटकाती रही और वह झूठमूठ चीखने लगा...हाय हाय।

हां—सब कुछ ऐसा लगता है, मानो कल की घटना हो। संध्याकाल की वह हल्की धूप ; फूलों से महकती वाटिका। कोंदे के चेहरे पर वह उल्लासपूर्ण मादकता। सब कुछ याद आया, साथ ही सूनेपन ने उसे घेर लिया। गुनगुनाया, “आडुम कूत्ते नाड चेयदाय एलै (अपने नाच से खींच लिया तूने मुझे)

प्यार से पकड़कर मेरा हाथ,

आनंद-नृत्य करती है

ऐ मां—ऐ मां
अपने नाच से खींच लिया तूने
नृत्य, संचालन ;
जग जीवन का संचालन।"

उस दिन कोदै को उसने इसी रूप में देखा था। जीवन की पूर्णता की ओर ले जाने वाली सुंदर प्रेरक शक्ति के रूप में उसे देखा था। स्वयं याचित पुरुष बिंब को कसकर देखने की कसौटी के रूप में उसे देखा था। जो उपलब्धि हुई वह आधुनिकता की परिभाषा नहीं थी, बल्कि प्राचीनता की व्याख्या थी। अर्थात प्रेम की परिभाषा नहीं, नफरत की विवेचना। प्यार ही नफरत को समझने में काम आता है।

अजीब बात है!

"यह लो, कॉफी।" मां ने कॉफी का गिलास बढ़ाया और उसने हाथ आगे बढ़ाया। उसे लगा, एकाएक सौ-डेढ़-सौ साल पीछे चला गया है वह।

उसके दादा या परदादा, कमरे के अंदर, आराम कुर्सी पर बैठे हैं और दादी या परदादी पीतल के गिलास में कॉफी के साथ खड़ी है। उन दिनों स्टील का प्रचलन नहीं था। पीतल के बर्तनों का—भगोना, हांड़ी, प्याला, लोटा इत्यादि का—अपना एक निराला सुवास होता है। लेकिन शीशे के गिलासों में कोई गंध नहीं होती जब तक उसमें व्हिस्की न भरी जाए। पिताजी भी कुछ ऐसे ही थे, शीशे के गिलास जैसे। जब वह छोटा था अक्सर एक सुगंध को पहचानता था ; कहा करता था, "पिताजी की सुगंध...पिताजी की सुगंध।" अर्थात पिताजी जब कभी उसे चूमते थे, उसे उसी गंध का एहसास होता था। बहुत दिनों के बाद ही उसे मालूम हुआ कि वह गंध व्हिस्की की तीखी गंध थी।

इस गंध को मां खुले दिल से स्वीकार कर न पाई होगी। शायद यही उन दोनों के बीच अनबन और दरार का कारण रहा होगा। या मां की सुगंध से पिता को जो विकर्षण अनुभव होने लगा, क्या वही असली समस्या थी?

चमेली की सुगंध!

इस महकते फूल को अपनी वेणी में लगाने के अधिकार से मां वंचित हो गई। इस बात को पांच साल पूरे हो गए हैं। कोदै, जिसे फूल लगाने का अधिकार है, इस ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देती।

इसका एक कारण है। चमेली की सुगंध से उसे एलर्जी है।

जिसका नाम कोदै* है, उसे फूलों से एलर्जी है ! अजीब तमाशा है!

"डैडी!" उषा भागती हुई आई और उसके पैरों से लिपट गई।

---

* पेरियाल्वार की सुपुत्री गोदा, जो आण्डाल (दक्षिण की मीरा) नाम से प्रसिद्ध हुई, फूलों से बहुत प्रेम करती थी।

"डैडी ! आज अंग्रेजी के डिक्टेशन में सारे के सारे राईट मिले।"

"शाबाश ! दिखाओ तो?"

उषा को आज स्कूल के काम में जो सफलता मिली थी वह एक एक करके प्रदर्शित करती गई और राजारामन 'वेरी गुड', 'वेरी गुड' कहता हुआ उसे दाद देता रहा। उसे बांहों में भरकर प्यार किया, पुचकारा। बच्ची समझ गई कि आज उसके डैडी अच्छे मूड में हैं जो मांगेंगे मिल जाएगा। बोली, "बापू! बहुत दिन हो गए आईसक्रीम नहीं खिलाया।

"सच?"

"इतने दिन हो गए, बापू।" उषा ने अपने दोनों हाथ फैला दिए।

"हाय रे ! इतने दिन हो गए? अच्छा ! चलो खिला लाता हूं।"

"दादी मां ! तुम भी आईसक्रीम खाने चलो न?"

"तुम जाकर खा लेना मेरी गुड़िया। मुझे नहीं चाहिए।"

"आईसक्रीम खा के देखो। बड़ा मजा आएगा, दादी मां।"

मां ने हंसने की कोशिश तो की, जैसे कोई नौसिखुआ घोड़े पर चढ़ने की कोशिश कर रहा हो। बुरी तरह हार गई। बोली, "तुम जाकर खा लेना, बेटी। तुमने खा लिया तो समझो मैंने खा लिया।"

राजारामन ने बड़ी उदासी से मां की ओर देखा। कितने प्यार से बुला रही है बच्ची! चलने में क्या हर्ज है? एक बार आईसक्रीम खा ले तो इसमें बुराई क्या है?

मगर वह न जाएगी न आईसक्रीम खाएगी; जीवन भर ना-ना-करके नकारते नकारते नकारना ही उसकी आदत बन गई है। सबसे जुदा होकर अपने को दूर हटाते हटाते वह अपने आप में सिमटकर रहने की आदी हो गई। पूजा-पाठ, आचार-अनुष्ठान, व्रत-उपवास, बस यही उसकी दुनिया है। वे रातें, जब पिताजी मां को बेरहमी से पीटते थे। राजारामन ने सोचा—प्यार और क्रूरता को विभाजित करनेवाली रेखा कितनी पतली होती है। पिताजी के प्यार की प्रतिध्वनि उसी तरंग-दीर्घता में मां की तरफ से नहीं मिली, यही उन दोनों के बीच अनबन का कारण रहा होगा। पिताजी ने जब जब हां हां करके प्यार की तलब की होगी, तब तब मां ना-ना करते हुए हट गई होगी।

"ओह ! अपने नाच से खींच लिया तूने मेरी मां..."

आईसक्रीम पार्लर में डिस्को संगीत गूंज रहा था। उषा अनजाने में ही उसी लय-ताल के अनुसार थिरकने लगी। बच्चों का हृदय कितना पावन होता है! जब तब मन में उठती इच्छाओं को उसी क्षण पूरा कर लेने की वह धुन और वह सहजता!

बड़े होने पर हमें अपनी ही आशा-अभिलाषाओं को पहचानना कितना दूभर हो जाता है !

चारों तरफ सोफे लगे थे। राजारामन आईसक्रीम लेकर उषा के साथ एक सोफे पर

बैठा। बगल के सोफे पर एक युवा जोड़ी बैठी थी। एक ही गिलास में स्ट्रा डालकर दोनों 'मिल्क-शेक' का मजा ले रहे थे। बेचारे पिताजी! मां के साथ इसी तरह एक गिलास में स्ट्रा लगाकर पीने के लिए उनका जी ललचाया होगा। ऐसी छोटी छोटी इच्छाओं को मां ने प्रत्येक बार जो दुत्कारा था, उससे उनका हृदय मंथन होता रहा। इसके फलस्वरूप जो निकला वह था जघन्य घृणा का मक्खन !

मां, कभी भी प्याले के साथ होंठ लगा के न पीने वाली मां !

किसी भी चीज को दांत से काटकर जूठा न करने वाली मां !

अपने ही अंदर अपने को कैद करके हमेशा ताला लगा लेने वाली, निकटता से घबराने वाली मां !

प्यार से कतराने वाली; प्यार करने से डरने वाली।

हां, प्रेम की संतान है घृणा।

तिरस्कृत प्रेम के विरुद्ध पिताजी द्वारा अपनाई गई सुरक्षात्मक कार्रवाई थी व्हिस्की और रम, मानो उन्होंने इसके द्वारा मां को चेतावनी दी हो, "पावनता की बच्ची, तू अपनी राह पकड़ और लो मैं अपनी राह चलता हूं। मैं अपने को और भी गंदा और मलिन बनाऊंगा। खबरदार, कहीं मेरे पास फटकी तो !"

कई कई दिन पिताजी मैले कुचले कपड़े पहने दफ्तर जाते थे। कई कई दिन तो वे कलफ लगाई कमीज और पैंट को उतारे बिना ही बिस्तर पर निढाल हो जाते थे।

विरोध, प्रतिरोध, प्रतिकार।

मां की शुद्धि और आचार-निष्ठा के पागलपन का विरोध।

आईसक्रीम पार्लर से निकलते हुए रात काली हो आई थी।

उषा ने पूछा, "डैडी ! कल हो गया क्या?"

पांच साल की है। पहली कक्षा में पढ़ रही है। फिर भी बीता हुआ कल, आज, और आने वाला कल आदि कालखंडों को समझने में गड़बड़ी होती है।

"अभी 'कल' नहीं हुआ है बिटिया रानी! अब रात है। रात गुजर जाने पर फिर से सूरज निकल आएगा। रोशनी फैलेगी। वही होगा कल का दिन।"

"तब तो मेरी मां आ जाएगी न?"

"हां बिटिया !"

"डैडी। यह मम्मी क्यों बार बार मुझे छोड़कर चली जाती है ? मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता।"

दफ्तर की वजह से ऐसा हो रहा है, इसे समझाने की बड़ी कोशिश की। कोदै प्रौढ़ शिक्षा विभाग में काम करती थी। वहां सेमिनार, मीटिंग, रैलियां, गांवों में जाकर आंकड़े लेना; यों पच्चीस तरह के काम के लिए उसे अक्सर दौरे पर जाना पड़ता था।

अब घर लौटने पर बच्ची को फिर से मां की याद आ सकती है, यह सोचकर राजारामन उषा का हाथ पकड़े बाजार में इधर उधर थोड़ी देर घूमता रहा। उषा के चेहरे पर—उसकी उत्सुक और चमकदार आंखों में—जैसे उसे अपना ही बचपन दिख रहा था। जब वह छोटा था, शाम के समय अपनी मां के साथ इसी तरह बाजार में घूमता था।

उसके पिताजी हमेशा देर से घर लौटते थे। मां को ही बाजार जाकर घर का सामान लाना पड़ता था और वह अपनी मां का अंगरक्षक था। इस बात पर उसे गर्व होता था। उस वक्त वह सोचा करता था—'एक न एक दिन मैं अपनी मां के चेहरे पर मुस्कान लाऊंगा।' एक अबोध बालक का सपना। उसे क्या पता था कि यह मरीचिका है।

मां ने अभी तक मुस्कुराने का उपक्रम भी नहीं किया है। वयस्कों को शिक्षित तो किया जा सकता है, किंतु उन्हें हंसना कौन सिखा सकता है? दुखों और मुसीबतो के बोझ में दबे हुए, दबकर रौंदे गए लोगों की अष्टावक्रता को कौन सीधा करे?

एकाएक कोदै का चिड़चिड़ाता चेहरा उसकी स्मृति में सजीव हो उठा। मां के अर्थहीन आचार-विचारों और अंधविश्वासों से टकराते रहने से कोदै के चेहरे पर दिन-ब-दिन उभरती घृणा की रेखाएं—हूं। शाम के वक्त बस में आते समय पार्क के मोड़ पर क्षण भर के लिए बिजली के समान कौंधा कोदै का वह हंसमुख चेहरा अब बिल्कुल याद नहीं रहा था।

भगवान न करे, ना-ना करते करते कोदै का चेहरा भी कहीं मां के जैसा नकारात्मक भाव जतानेवाला चेहरा बन जाए।

"ना-ना" की यह प्रवृत्ति इस घर की चारदीवारी के बीच तनाव की जननी-सी, सुख-संतोष की दुश्मन-सी हमेशा विचरती रहती है।

राजारामन, उषा, मां तीनों रात का भोजन करने के लिए बैठे।

राजारामन ने सोचा—आज आखिरी बार तीनों बच्चे एक साथ बैठे खाना खा रहे हैं। उषा असल में बच्ची है। वह स्वयं अपनी मां का बच्चा है मां भी बच्ची ही थी जो चुनरी पहनने से पहले मंगलसूत्र के बंधन में कैद हो गई थी। पिताजी उस बच्ची को सयानी बनाने की कोशिश में आजीवन लगे रहे, और मां इसका सख्त विरोध करती रही... बस ...इसी संघर्ष में उनकी सारी जिदंगी गुजर गई।

अब गले में मंगलसूत्र नहीं है। बंधन भी नहीं है। वह अब आजाद है। चेहरा बुढ़िया का है। मगर दिल अबोध बच्ची का-सा।

अपनी मां को देखते देखते राजारामन का मन दया से पसीज उठा। वाटिका आईसक्रीम पार्लर और यह बुढ़िया।

कह नहीं सकते, कल भी उसके मन में दया की यही भावना बनी रहेगी। कल कोदै घर वापस आ जाएगी।

उषा के सोने तक राजारामन इंतजार करता रहा। फिर अपनी मां के पास जाकर आवाज

दी, "मां!"

रसोईघर में से मां ने मुड़कर उसकी तरफ देखा। आंखों में वही अकथनीय शोक। उसे वह शोक पवित्र लगा। एक ऐसा शोक जो सृष्टि के प्रारंभ से लेकर इस संसार में शाश्वत रूप में सदा के लिए विराजमान रहा है।

"मां !" सिसकता हुआ राजारामन ने मां को अपनी छाती से लगा लिया। विना किसी प्रतिरोध के उसकी मां उसके आलिंगन में चिपकी पड़ी थी। सोचा—पिताजी...आप को भी रोना चाहिए था...आंसू बहाना चाहिए था। पसीज जाना, पिघल जाना चाहिए था—अबोध बच्चा बन जाना चाहिए था।

कम से कम एक दिन के लिए।

"अब रात है।" जैसे वह बच्ची को समझा रहा हो, राजारामन ने मन ही मन कहा, "रात के गुजर जाने पर सूरज निकलेगा। दिन प्रकाशमान हो जाएगा, रोशनी हो जाएगी। वही कल का दिन होगा..."

तीसरा आदमी

परशु उस परिवार का तीसरा बच्चा है।

"तीसरा बच्चा अभी नहीं" वाला सरकारी नारे का प्रचार जोर पकड़ने के पहले ही जन्मा था वह। उसकी दीदी लक्ष्मी और उसके बीच में दस साल का अंतर था। बड़ा भाई माधवन उससे पांच साल बड़ा था।

छोटी उम्र में ही परशु यह घोषित करने लगा कि मैं औरों से भिन्न हूं, मैं निराला हूं। उसका भाई और दीदी जब बच्चे थे, उन्होंने अंगूठा चबाया था। लेकिन परशु मध्यमा और अनामिका उंगलियों को एक साथ मुंह में डालकर चबाता था। उसकी दीदी और भैया बहुत संवेदनशील थे। मां-बाप की आवाज जरा ऊंची हुई या डांट लगी तो बस फूट फूटकर रोने लग जाते। लेकिन परशु ! उसे किसी की डांट-डपट की कोई परवाह नहीं थी। बड़ा ढीठ था वह।

परशु को गाली देना या डांट-डपट लगाना दीवार पर सिर मारने के जैसा था। चाहे कोई कुछ भी कहे, वह उसकी ओर ध्यान दिए बिना अपनी शरारतों में मशगूल रहता। घर की चीजों को तोड़ मरोड़कर बाहर ेंक देता। अपनी किसी भी मांग को मनवाने के लिए ऊंची आवाज में ऊं ऊं...करके रोता विलाप करता या घर में धमाचौकड़ी मचाता, फर्श पर लोटकर चिल्लाता, यूं आसमान सिर पर उठा लेता कि मां-बाप विवश होकर उसके हठ के सामने झुक जाते। लक्ष्मी और माधवन कातर नेत्रो से एक दूसरे को देखकर हाथ मलते—हाय हमको भी यह सब विद्या आती तो...

समाज में अपने अपने अधिकार के लिए संघर्ष की प्रवृत्ति आंदोलनों का रूप लेकर जीवन का अंग बन चुकी थी। तभी परशु का जन्म हुआ था। उसके पिताजी शक्ति लड़ाकर ऐसा सोचते थे कि परशु की मनमानी और स्वेच्छाचारिता के पीछे यह भी एक कारण हो सकता है। इस तरह सामाजिक घटनाओं और पारिवारिक घटनाओं को मिलाकर गांठ बांधना और उस गांठ की भंगिमा का आस्वादन करते हुए घंटों तक बैठे रहना, यों बैठे-बैठे विस्मय विमुग्ध होना उनका एक शगल था। हां। वे एक बुद्धिजीवी थे। उनका वंश बुद्धिजीवियों का वंश था। उनके पिताजी दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर थे। दादाजी संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। पर दादा किसी राजवंश के शिक्षक रहे और उनके सम्मान में

जमीन-जायदाद आदि उन्हें प्राप्त हुआ था।...ऐसा बहुत कुछ कह सकते हैं। यों उस वंश की महिमा का बखान करते रह सकते हैं।

लक्ष्मी और माधवन को छुटपन से पढ़ने में बड़ी दिलचस्पी थी। घर में जो भी पत्र पत्रिकाएं आती थीं या पुस्तकें उपलब्ध थीं, उन्हें उलट पुलटकर जब वे तस्वीरें देखने लगते तो उनके मां-बाप की छाती गर्व से फूल उठती। इस बात पर उनकी बांछें खिल जाती थीं कि मानो उनके बच्चों ने अभी से पढ़ाई शुरू कर दी हो। "जानते हो ! किसका खून इनकी रगों में दौड़ता है?" पूछते हुए अपने वंश की गरिमा का गर्व से स्मरण करते।

लेकिन परशु को पुस्तकों के पन्ने उलटकर तस्वीरें देखने में कोई रस न आता था। चार-पांच साल की उम्र में जो भी पत्र-पत्रिकाएं या पुस्तकें हाथ लगतीं उन्हें फाड़कर टुकड़ा टुकड़ा करके फेंक देना ही उसका प्रिय मनोविनोद था। ऐसा लगता, मानो पुस्तकों को वह अपनी जानी दुश्मन समझ बैठा हो। घरवालों को उसका लाड़ प्यार किए बिना, उसकी शरारतों का मजा लिए बिना, हमेशा उन पुस्तकों को हाथ में लेकर लालन करते देखकर शायद वह इतने आक्रोश से अपना विरोध जता रहा हो। परशु के पिताजी ने एक बार किसी मनोवैज्ञानिक से परामर्श किया तो उन्होंने बताया, "आप लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए ही वह इन तरीकों को अपनाता है।" उन्होंने इस तथ्य की व्याख्या करके उसे विस्तार से समझाया भी।

उन्होंने समझाया : वह तीसरा बच्चा है न? उससे बड़े दो हैं। कई साल के बड़े हैं। उनके इतने सालों की साधनाओं को परास्त करने पर ही वह अपने आप को स्थिरता से स्थापित कर पाएगा, इस तरह का भय और संत्रास उसे हमेशा नचाता रहता है। इसीलिए वह ऐसे टेढ़े-मेढ़े तरीकों के माध्यम से अपने को एक हीरो साबित करने की कोशिश करता है। आपको भूलकर भी उसके मन में यह ख्याल जमने न देना है कि आप लोग उसके भाई-बहन से उसकी तुलना कर रहे हैं। यह न बताना है कि देखो, दीदी किस तरह भगवान से प्रार्थना कर रही है। भैया कितना समझदार है, देखो किस तरह बिना नागा स्कूल जाता है। इसके विपरीत स्वयं को पहचानने की जो कोशिश वह कर रहा है, उसमें उसकी मदद करनी चाहिए, उसके आत्मविश्वास को बढ़ाना चाहिए।

उक्त डाक्टर के हाव भाव में एक कुशल अभिनेता जैसा चातुर्य और प्रभाव था। उसे देखकर परशु के पिताजी को लगा कि इनके पूर्वजों में किसी का संबंध नौटंकी या रंगमंच से अवश्य रहा होगा। साथ ही एक और ख्याल भी आया कि शायद बड़ा होने पर परशु भी ऐसा ही मनोवैज्ञानिक डाक्टर बन जाए।

मनोवैज्ञानिक डाक्टर से परामर्श लेने के बाद उसके माता-पिता में यह परिवर्तन आया कि अब तक परशु पर जो थोड़ा बहुत नियंत्रण था, डांट-डपट पड़ती थी वह सब बंद हो

गया। अब तो परशु का निरालापन विकराल रूप लेकर बढ़ने लगा। उसके भाई-बहन हमेशा घर में ही रहते, बहुत कम बाहर जाते। किंतु परशु इसके बिल्कुल विपरीत आठों पहर घर के बाहर रहता और अगल बगल के घरों में अपना समय बिताता। इन घरों में उससे अंटसंट सवाल पूछे जाते और उसके उल्टे सीधे जवाब सुनकर वे लोग खूब मजा लेते। इसी तरह मजेदार और चटपटी बातें सुनने के लिए वे उसे बराबर उकसाते रहते। उनका मकसद उसे छेड़कर मजा लेने का था। दुनिया में कोई भी व्यक्ति किसी को स्वयं से ज्यादा होशियार मानने को तैयार नहीं होता, यह बात परशु को मालूम नहीं थी। उसकी यह गलतफहमी थी कि वह सचमुच अपने भैया और दीदी से बुद्धिमान है और इसीलिए लोग उसे देखकर खुशी से फूल जाते हैं। उसके अंदर जो स्पर्धा की भावना थी, वह उसे इसी प्रकार सोचने को प्रेरित करती थी।

घर में भी परशु का दबदबा और धांधली बढ़ती ही गई। जब उसकी दीदी और भैया अपनी पढ़ाई में लगे रहते, तब या तो जानबूझकर वह ऊंची आवाज में गाने लग जाता या पिताजी का लाया माउथ आर्गन जोर से बजाने लगता। पिताजी यह देखकर फूले न समाये। सोचा--बेटे में संगीत के प्रति बड़ी रुचि है। जब से वे मनोवैज्ञानिक डाक्टर से परामर्श लेकर आए थे, उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था कि परशु में कोरे पुस्तकीय ज्ञान से परे कोई ऐसी मेधा शक्ति अन्तर्निहित है जिसका पता लगाना अपने विशाल दृष्टिकोण के लिए एक चुनौती है।... यदि लक्ष्मी और माधवन शिकायत करते कि परशु का यों गला फाड़ फाड़कर गाना और माउथ आर्गन बजाना उनकी पढ़ाई में बाधा डालती है तो वे सलाह देते, "दरवाजा बंद करके पढ़ा करो।" रेडियो में जब भी संगीत का कोई अच्छा प्रोग्राम आता वे परशु को अपने पास बिठा लेते। परशु भी जैसे अपने भाई-बहन का मजाक उड़ाने के ख्याल से सिर हिला हिलाकर ताल देने लगता। पिताजी ताल की गलतियों को सुधारते।

असल में परशु को संगीत के प्रति रुचि या लगाव बिल्कुल नहीं है, वह यों ही संगीत ज्ञान का बहाना कर रहा है, इस तथ्य को समझने में पिताजी को कई साल लगे। लेकिन तब तक वे काफी धन और समय खर्च कर चुके थे—संगीत शिक्षक रखने में और संगीत समारोहों में खुद उसे ले जाने में। इसका परिणाम आखिर यह हुआ कि माधवन और लक्ष्मी को कर्नाटक संगीत से अरुची-सी हो गई। परशु को दिए जाने वाले इस मान-सम्मान के विरोध में दोनो ने शास्त्रीय संगीत में उपेक्षा और अवहेलना दिखाई। जब परशु का जन्म हुआ था, तब लक्ष्मी को संगीत से लगाव था। लेकिन बाद में परशु के कारण उसके मन में संगीत के प्रति अनादर उत्पन्न हो गया। जो कुछ सीखा था वह भी याद न रहा। वह विवाह योग्य हुई तो संगीत की शिक्षा न पाने की जिद और ज्यादा बढ़ गई। बस इसी एक कारण से कई एक संबंध टूट गए। आखिर बिहार के किसी एक नगर में स्वादिष्ट

घरेलू खाने के लिए तरसने वाले एक नौजवान ने उसके गले में मंगलसूत्र पहनाया था। यह एक अलग कहानी है।

संगीत शिक्षा केवल एक उदाहरण है। ऐसे कई एक मामलों में परशु के व्यवहार और पिताजी द्वारा दिया गया प्रोत्साहन—इन दोनों के खिलाफ अपना प्रतिरोध दिखाने की जिद में लक्ष्मी और माधवन ने अपनी स्वाभाविक इच्छाओं और हौसलों को अपने अंदर दबा लिया। मां-बाप के विरुद्ध वे दोनों हमेशा काला झंडा फहराते रहे। छोटी उम्र में माधवन गंभीर प्रकृति का नहीं था। खेलकूद में अभिरुचि, बाल सहज शरारतें सब कुछ उसके अंदर था। लेकिन परशु की धांधली की वजह से माधवन अपने आप में सिमट कर कछुआ बन गया।

उसके चेहरे से हंसी गायब हो गई। उल्टे गंभीर और चिंता का बोझ ढोता सा नजर आने लगा, मानो दुनिया भर की चिंताओं को अकेला वही वहन कर रहा हो। शायद गंभीरता और तनाव को उसने इसलिए ओढ़ लिया था कि औरों को यह जताना चाहता था कि वह अपने छोटे भाई से भिन्न है। परशु अध्यापकों के लिए समस्या उत्पन्न करनेवाला छात्र था। 'आवारा', 'बदमाश', 'उद्दण्ड'—ऐसे कई विशेषण लगाकर अध्यापक उसकी शिकायत करने लगे थे। ये शिकायतें सब से पहले माधवन के कान में पड़ती थीं। अपमान और आक्रोश से वह बौखला उठता। चाहे पढ़ाई हो या खेलकूद असल में वह एक औसत दर्जे का विद्यार्थी था। लेकिन किसी ने उसे बुरा लड़का नहीं कहा था। और अब उसका छोटा भाई ऐसी ख्याति पा रहा है।

उस भाई के बड़े भैया के रूप में वह भी अब मशहूर हो रहा है। स्वभाव से संकोचशील होने के नाते वह दरअसल इसका सामना कर नही पाया। उसका दम घुटने लगा। स्कूल के बरामदों से गुजरते वक्त किसी का उसकी ओर इशारा करके "देखो न? यही परशु का भैया है"—कहा जाता था। उस समय उसे लगता कि यदि वह ऐसे ही हवा में विलीन हो जाता तो कितना अच्छा होता।

घर में आने वाले मेहमानों और नाते रिश्ते के लोगों के बीच परशु ने ही प्रसिद्धि पाई। उनकी हर जरूरत का ख्याल रखते हुए वह उनकी सेवा टहल करता। उनके सामने अपने शौर्य और प्रताप का ढिंढोरा पीटता। शहर घुमाकर दिखाने के लिए उनके साथ चलता। अपने मसखरेपन से उनको हंसाता। घर में आने वाले नए व्यक्तियों को पता ही नहीं चलता कि लक्ष्मी और माधवन कहां छिपे हैं। उन दोनों का मकसद अपने को छिपाने का नहीं था, बल्कि एक तरह से बहिष्कार करने का था। दूसरों का ध्यान आकर्षित करके सस्ती लोकप्रियता पाने के लिए परशु द्वारा अपनाई जाने वाली युक्तियों के प्रति अपना असंतोष प्रकट करने के लिए उसके भाई-बहन का सत्याग्रह था यह। यह तो आश्चर्य की बात थी,

सत्याग्रहों के जमाने के होते हुए भी परशु के पिताजी इसे समझने में असमर्थ रह गए।

मेरे दोनों बड़े बच्चे डरपोक हैं। परशु में हिम्मत है, हर तरह का तिकड़म करने में उसका कोई सानी नहीं है। आज के युग में ऐसी होशियारी की ही जरूरत है ! मोटे तौर पर उनके दिल ने इस तरह का निष्कर्ष निकाल लिया। शायद दफ्तर में प्राप्त कुछ कटु अनुभवों ने उनके मन में ऐसी विचारधारा का बीज बोया होगा। जो उनके जूनियर थे, अफसरों की खुशामदी करके न्यायपूर्वक जो प्रमोशन उन्हें मिलना था, खुद हथिया लेते थे। उनके विरोधियों ने उनके विरुद्ध जो अफवाहें उड़ाई थीं, उनके आधार पर, बिना पूछताछ किए अफसरों ने तीन सालों तक उनके बारे में घटिया रिर्पोट लिखी थी। इन सब बातों से कर्त्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी और अनुशासन आदि पर उनका अटल विश्वास डांवाडोल हो गया। उन्हें अपने आप से इतनी घृणा हुई कि सोचा उन्हें इतना सीधा सादा न रहना चाहिए था। अब तो लक्ष्मी और माधवन को किसी से झगड़ा फसाद न करते हुए चुपचाप अपना काम करते देखकर उनके प्रति क्रोध और नफरत की भावना उठती थी। उन्हें लगा कि वे हू-ब-हू उनके प्रतिरूप हों या उनके आईने में वे अपने को देख रहे हों।

परशु की उद्दण्डता और मनमानी उन्हें आकर्षक लगीं और आश्वासन का अनुभव हुआ। लगा, बुढ़ापे में सहारा देने योग्य लाठी यही है। परशु ही हमें क्षेत्राटन में ले जाएगा। हम लोग उसी के साथ रहेंगे। माधवन में इतनी क्षमता और होशियारी नहीं है। इस ढंग से अपने बुढ़ापे के बारे में वे खुलकर विचार करते थे। इसी बीच में लक्ष्मी की शादी हो चुकी थी। अब बेचारे माधवन को अपने दिल का दर्द बांटने के लिए भी घर में कोई न रहा। वह मन ही मन अपने दुख में जलता जा रहा था। जल-भुनकर खाक होता जा रहा था।

जिंदगी में कोई भी चीज एकदम काली नहीं होती, न ही पूर्ण रूप से सफेद होती है। परशु को अक्खड़ और दुष्ट समझकर उसके पिताजी का मन में प्रफुल्लित होना भी कुछ ऐसी ही बात थी। एक दृष्टि से देखा जाए तो झूठ-फरेब नहीं, बल्कि जरूरत से ज्यादा सीधापन और सच्चाई ही परशु की गिरावट का कारण था। पहली कक्षा की अध्यापिका को उसके मुंह पर ही 'मुटल्ली' कहने की सत्यवादिता, दूसरी कक्षा की मास्टरनी की तेज चाल, तीसरी कक्षा के मास्टर की पतली खरखराती आवाज इत्यादि की आलोचना करने की ईमानदारी तथा अपने अध्यापकों की कमियों और दुर्बलताओं की बड़ी बारीकी से छानबीन करके अपने दोस्तों के बीच उन्हें प्रचारित करना इन सब में उसकी दृष्टि लगी रहती थी। कौन-से मास्टर किस अदा के साथ नसवार लगाते हैं, इस बात से लेकर किस मास्टर का किस मास्टरनी के साथ मधुर संबंध है जैसी बातों तक सब कुछ उसे मालूम था। इस तरह के मास्टरों से उसके पेश आने का ढंग ऐसा था मानो उनसे कह रहा हो,

"पहले अपना आचरण सुधार लेना, बाद में हमें समझाने आना।"

उसके अध्यापकों को उसकी यह बात बुरी लग गई तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है?

इसके अलावा परशु के दिल में अपने अध्यापकों से प्रतिस्पर्धा की भावना भी थी। कक्षा को रंगमंच और अध्यापकों को उसके अभिनेता (कितने घटिया कलाकार हैं ये) मानता हुआ वह विद्यार्थियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उन अभिनेताओं से होड़ लगा रहा था।—"अरे देखो, इन मास्टरों को जितना कुछ आता है, वह सारी करामते मैं भी जानता हूं।" इस तरह चुनौती देने की धुन में परशु सहपाठियों को रिझाने के लिए तरह-तरह की शरारतें, व्यंग्य-विनोद, खेल-तमाशा दिखाते हुए छात्रों के बीच 'हीरो' बन गया।

उसके अध्यापकों में एकाध अनुभवशील और विवेकी थे। उन लोगों ने परशु के दिल की बात अर्थात बिना पुस्तकीय ज्ञान के सहारे सितारा बनने की उसकी आकांक्षा को, आकुलता को—समझ लिया। साथ ही यह भी जानने की कोशिश की कि उसके अंदर कौन-कौन सी क्षमताएं छिपी हुई हैं। उन्होंने उन क्षमताओं को संवर्धित करते हुए उसे प्रोत्साहित किया।

एक अध्यापक ने उसे चित्र बनाने की ओर उत्साहित किया। एक और मास्टर ने नाटकों में भाग लेने की सलाह दी। वे अपने सह अध्यापकों से कहते कि परशु बड़ा मेधावी लड़का है। समस्या यह है कि उसकी मेधा को सही ढंग से पहचाना नहीं गया है।

लेकिन परशु के मन में न जाने कौन-सा भूत सवार था। जो कोई उससे हमदर्दी प्रकट करता वह उसे बुरी तरह चोट पहुंचाने पर तुल जाता था। जब से उन अध्यापक ने उसे चित्र बनाने के लिए उत्साहित किया था, तब से उसने रोज कक्षा के ब्लैकबोर्ड पर उनकी हंसी उड़ाते हुए उनका ही कार्टून बनाना शुरू कर दिया। उनके पीरियड से पहले कुछ अश्लील चित्र भी बना देता। अध्यापक यह सब कुछ बर्दाश्त कर लेते। मगर कुछ दिनों के बाद स्कूल की दीवारें परशु की अद्‌भुत चित्रकला से रंग गईं। प्रिंसिपल द्वारा उसे बुलाकर इसके बारे में पूछताछ करने पर फट से उत्तर मिला "सर, गणपति मास्टर ने ही मुझे सलाह दी थी कि मैं दीवारों पर चित्र बनाऊं।" इसके बाद गणपति मास्टर उसके रास्ते से हट गए।

नाटकों में भाग लेने के लिए जिस मास्टर ने उसे प्रोत्साहित किया था उनकी भी यही गति हुई। रिहर्सलों के समय परशु ने अपना पार्ट बखूबी निभाया, पूरा पूरा सहयोग दिया। मगर जिस दिन रंगमंच पर नाटक खेला गया, उस दिन जानबूझकर अपने संवादों का उच्चारण उल्टे सीधे ढंग से किया। अभिनय भी कुछ ऐसा ही बेमेल बेढंगा था, अपनी तरफ से कई बातें जोड़कर हंगामा मचा दिया। इस तरह परशु ने उस मास्टर के मुंह पर कालिख

पोत डाली।

आखिर परशु की इन करतूतों का मूल कारण कौन-सा था? अपने ऊपर चिपकाए गए निंदापूर्ण विशेषणों के प्रति विरोध प्रकट करने के उद्देश्य से उसने यह सब किया? या अध्यापकों ने स्वयं पहल कर उसे जो नई दिशाएं दिखाईं उसे उसने अपने निजी जीवन में दस्तंदाजी तो नहीं समझ ली?

असल में उसकी असली समस्या किसी की समझ में नहीं आई। जैसे तैसे पास होते हुए वह पांचवी कक्षा तक पहुंच गया। छठी से फेल होने का सिलसिला शुरू हो गया। छठी कक्षा में एक बार, सातवीं और आठवीं में दो दो बार और नवीं में फिर दो बार...

रेलगाड़ी जब किसी जगह लेट हो जाए तो आगे लगातार लेट पहुंचती रहती है, इसी तरह परशु भी हर कक्षा में फेल होता चला जा रहा था। देखा जाए तो परशु के इस ह्रास के लिए मास्टरों की अपरिपक्वता और सहृदयता भी कारण बन गई। परिणाम यह हुआ कि वह ऐसा उपद्रवी छात्र बन गया जिसे संभालना मुश्किल हो रहा था। यह एक विष-चक्र सा बन गया—मंजे हुए चोर और पुलिस की तरह। अगर शहर में कोई कुख्यात चोर डाकू आतंक फैलाता हो तो उसे पकड़कर उसकी बदमाशी पर अंकुश लगाना दिलेर पुलिस इंस्पेक्टरों के लिए भी चुनौती होता है, सपना होता है। इसी तरह कक्षा में परशु का मुकाबला करके, उसका सिर नीचा करना, स्कूल के हर आध्यापक का सपना बना चुका था। हर अध्यापक जो पहली बार उससे पेश आते थे, सुनी-सुनाई अफवाहों के बल पर, स्वयं उसके बारे में बहुत बुरी और अनुचित कल्पनाएं कर लेते और उस पर बड़ी निर्ममता से व्यंग्य भरे वाक्य-बाणों की वर्षा करने लगते, मानो उसके अहं पर आघात कर रहे हों। मिसाल के लिए एक घटना को लें। गणित के अध्यापक ब्लैक बोर्ड पर गणित का कोई एक प्राब्लम लिखकर समझाते और पूछते तुम लोग समझ गए न? एक मिनट के अंतराल के बाद फिर पूछते, "परशु, तुम्हारी समझ में भी आ गया न?" इस पर सभी छात्र हंस पड़ते। छात्रों की समझ में आ गया या नहीं, इसे मापने के लिए परशु ही 'लघुतम समापवर्तक' (एल.सी. एम.) था। अगर उसकी समझ में आ जाए तो निश्चय ही सब समझ गए। एक और शिक्षक उसे नकली आदर के साथ 'बुजुर्ग महोदय' कहते थे। कक्षा के सभी छात्रों में वही तो उम्र की दृष्टि से बड़ा था।

क्या करें? इन स्कूल मास्टरों में एक ऐसी हीन भावना काम कर रही है। उनकी हालत इतनी खस्ता है कि पढ़ने-लिखने में जरा पीछे रहने वाले छात्रों को कक्षा में नीचा दिखाकर ही इन लोगों को दूसरे छात्रों की दृष्टि में सम्मानपूर्ण स्थान बनाना होता है। इसके अलावा अध्यापक का पेशा ही कुछ ऐसी बोरियत का है कि समय-समय पर हंसी-मजाक अनिवार्य

वन जाता है। परशु जैसे छात्र इस आवश्यकता की पूर्ति कर देते हैं।

अध्यापकों द्वारा लगातार अपमानित परशु विवश होकर आवारों और गुंडों की टोली में शरीक हो गया। ऐसी स्थिति में अध्यापक नामक सामान्य शत्रु का मुकावला करने के लिए ऐसा संयुक्त मोर्चा मन में जोश और उत्साह पैदा करता था। धीरे धीरे सिगरेट, शराव और गांजे की आदतें पड़ गईं। इन सवके पीछे उसका मकसद आध्यापकों से प्रतिशोध लेना ही रहा था। अब वे लोग उसे लफंगा-गुंडा कहकर उसे दुतकारने लगे। लेकिन उसे जरा भी दुख न हुआ; उल्टे उनके सामने खलनायक के समान सीना तानकर चलता था।

एक दिन की वात है। क्लास में काफी हलचल मची हुई थी। एक लड़की फूट फूटकर रो रही थी। सुना कि किसी ने उसके नाम प्रेमपत्र लिखकर उसकी डेस्क पर रख दिया है। अध्यापक को तुरंत परशु पर ही शक हुआ। उन्होंने उसे वुलाकर पूछताछ की। परशु बौखला उठा। यह कैसा इलजाम है? कड़क कर बोला, "मुझे इन लड़कियों की सूरत घिनौनी लगती है। भला मैं क्यों इन्हें प्रेमपत्र लिखूं? छिः छिः !"

अध्यापक ने पूछा, "फिर क्यों तुम्हारी आंखें लुक-छिप करती हुई उनकी तरफ जाती थीं? मैंने कितनी बार देखा है तुम्हें उनकी ओर झांकते हुए।"

परशु अपनी बेंच से उठा, तेजी से कदम वढ़ाते अध्यापक के पास गया और जोर से उनके गाल पर चपत मारी; फिर अगले क्षण तूफान की गति से कक्षा के वाहर निकल गया।

बस, उसके बाद वह स्कूल नहीं गया।

अब तक परशु की मां के बारे में कुछ भी नहीं कहा है। भूल के कारण रह गया हो ऐसी बात नहीं है। केवल ससपेंस बनाए रखने के लिए, बस।

अव कहानी का अंत होने वाला है इसलिए उसके बारे में कहने में कोई आपत्ति नहीं है। वह ज्यादा पढ़ी लिखी नहीं थी। मगर थी बड़ी होशियार और समझदार। मां के साथ प्यार और नफरत का मिला-जुला रिश्ता था परशु का। शुरू-शुरू में वह हमेशा पिता से शिकायत करके परशु को डांट पिलाती थी और सजा दिलाती थी, इसलिए वह उससे नफरत करता था। दूसरी ओर मां के स्वभाव में पिता जैसा बुद्धिजीवीपन या दिखावा नहीं था, इसलिए उसके प्रति श्रद्धा-भाव था। छोटी उम्र से ही रसोई घर में वह अपनी मां की छोटी मोटी मदद करता रहता था। इससे वह मां का प्रेमभाजन ही नहीं, बल्कि उसके एहसान का पात्र भी वन गया था। रसोई घर में मां के बोझिल अकेलेपन को महसूस करके उसका वोझ हल्का करने का प्रयत्न केवल उसी ने किया था। उसकी मां उससे बार बार कहा करती थी, "तुम्हें एक लड़की के रूप में जन्म लेना चाहिए था। अरे पुस्तकें पढ़ना ही सव कुछ है? इन लोगों को देखो, घर में क्या हो रहा है, गृहस्थी कैसे चल रही है, इसकी रत्ती

भर भी चिंता नहीं है इन्हें।" बुद्धिजीवियों के पुस्तकीय ज्ञान को मां यों दुतकारती रहती।

दस वर्ष की उम्र पूरी करने से पहले ही बालक परशु पाक-कला में विशारद हो गया, वह हर तरह का खाना बनाने में दक्ष बन गया। पिताजी, भैया, दीदी इन तीनों की बुद्धिजीवी प्रकृति को ललकारने की ललक से ही उसने रसोई-विद्या की बारीकियों के प्रति इस हद तक दिलचस्पी दिखाई होगी। पिताजी और भैया मानते थे कि रसोईघर के छोटे मोटे काम में हाथ बटाने से उनके बुद्धिजीवी वर्चस्व और गौरव में बट्टा लग जाएगा। दीदी का विचार यह रहा कि लड़की होने के कारण आगे चलकर उसे इन सब जिम्मेदारियों को निभाना ही पड़ेगा, पर अभी से इस परंपरागत धर्म को मैं क्यों ढोती फिरूं। इसलिए वह रसोई के काम से कतराती रही। ऐसे में इन तीनों की छाती पर मूंग दलने और मां के संपूर्ण प्रेम का एकमात्र पात्र होने के लिए रसोईघर परशु के लिए एक वरदान बन गया।

यही नहीं, इसके द्वारा अपने पिता को नाजुक ढंग से अपमानित करके उन्हें सजा देने का संतोष भी वह पा सका ; उनका जुर्म यह था कि बचपन से ही वे उसके प्रति हमदर्दी दिखाते आ रहे हैं। अपने स्वभाव के अनुसार परशु का यह कर्तव्य बन गया कि वह इस जुर्म के लिए उन्हें सजा दे। वे जिस बुद्धिजीवी परंपरा की प्रशंसा का पुल बांधते नहीं अघाते, उसमें स्त्रियों को विद्या या ज्ञान का प्रकाश पाने का कोई अधिकार नहीं है, बेचारी नारी को 'पद-दलित वर्ग' के रूप में चूं तक किए बिना पड़े रहना होगा। उनके सिद्धांत में दर्शित इस विरोधाभास का पर्दाफाश करके उनको मार्मिक आघात पहुंचाने के लिए परशु ने जो-जो मार्ग अपनाए थे, उनमें एक था रसोईघर के प्रति उसकी निष्ठा और आस्था।

स्कूली पढ़ाई से हाथ धोकर घर लौटने के बाद से परशु ज्यादातर दिनों में रसोई का काम स्वयं संभालने लगा। उसकी मां जो विवाहित होकर इस घर में पदार्पण करने के दिन से चौका संभालती आई थी, अब इस काम से ऊबने लगी थी। उसके मन में जब तब थोड़ा आराम कर लेने की इच्छा उठती थी। परशु के पिताजी, बड़े भैया और दीदी के लिए अपने निश्चित और उन्नत लक्ष्य थे, जिनके लिए वे अपना अमूल्य समय समर्पित कर चुके थे। ऐसी हालत में वे इस तरह के निरर्थक कामों पर अपना समय बरबाद न कर पाए। इसलिए वे लाचार थे। परशु ने इस परिस्थिति को अपने अनुकूल बना लिया। जब से वह रसोई विभाग के उपमंत्री पद पर आसीन हो गया था, उसके पिताजी, बडे भैया, और दीदी उसका सीधा मुकाबला करने से डरने लगे। क्योंकि पेट में चूहे दौड़ते समय उन्हें उसकी दया की दरकार थी। उसका शासन मां के पक्षपात रहित और न्यायपूर्ण शासन से भिन्न था।

खाना बनाने के अलावा घर-गृहस्थी में पौ फटने से लेकर और कितने ही काम पड़े रहते हैं। घर की सफाई, जमादार, नौकरानी आदि के कामों की निगरानी करना, राशन

के लिए चावल, शक्कर, मिट्टी का तेल इत्यादि निर्धारित तिथियों में क्यू में खड़े होकर ले आना, टूटी-फूटी चीजों की मरम्मत, मांगने वालों और भिखारियों को भगाना इत्यादि बहुत-सी जिम्मेदारियों को अपने कंधे पर लेकर परशु घर में अपने अधिकार क्षेत्र को और विस्तृत करता गया। उसने आखिर एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि किसी में भी उसका विरोध करने का साहस नहीं था। अब उसका भाई भी नौकरी में लग गया था।

भैया और पिताजी को बाहरी काम-काज से फुरसत नहीं मिलती थी। दीदी उस घर के सभी मामलों से उकता चुकी थी। वह उन प्राचीन संप्रदायों के प्रति कृतज्ञ थी जिनके अधीन एक लड़की होने के नाते उसे इस घर से हमेशा के लिए विदा होने का मौका मिलने वाला था। वह उस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा में आंखें बिछाए बैठी थी। जहां तक मां का संबंध है उसके लिए गृहस्थी का भार संभालने में परशु का यह स्वेच्छापूर्ण सहयोग सहर्ष स्वीकार्य था। उसकी दृष्टि में वह अवतार पुरुष लगा।

परशु जो रसोई विभाग का उप मंत्री बना था, कुछ ही दिनों में गृह विभाग के संपूर्ण अधिकारों पर कब्जा करके मंत्री पद पर आसीन हो गया। दीदी की शादी होने बाद वह लगभग उस घर का प्रधान मंत्री बन गया। मां का संपूर्ण समर्थन उसी को प्राप्त था। उसके पिताजी गुट-निरपेक्षता के सिद्धांत पर अमल करते थे। इन दिनों परशु पूजा पाठ, कीर्तन, मंदिर में देवता-दर्शन आदि धार्मिक कार्यों में विशेष आसक्ति दिखाने लगा था। (यह सब दिखावा था या नहीं यह दीगर बात है) इनसे उसकी मां के दिल में उसके प्रति ममता और विश्वास बढ़ता गया। अब तो उसके पिताजी को भी एहसास होने लगा था कि परशु ही उनका क्रिया कर्म श्राद्ध आदि विधिपूर्वक संपन्न करके उनकी आत्मा को सद्गति प्रदान करवाएगा। परंपरा पर आस्था रखने वाले बुद्धिजीवी भी ढलती उम्र में परलोक के आतंकपूर्ण प्रभाव में आकर कलाबाजी करते हुए पलट जाते हैं।

यह सब देखकर माधवन के मन में परंपरागत संप्रदाय, रीति-रिवाज, धर्मानुष्ठान आदि सब के प्रति घृणा सी हो गई। सोचा, परशु जैसा व्यक्ति दुनिया की आंखों में धूल झोंककर, अपना धंधा चलाने और पेट पालने के लिए धार्मिक संस्कारों के नाम पर ढकोसले करता है। इसलिए मंदिर या पूजा-पाठ का नाम सुनते ही माधवन बौखला उठता था। वह पक्का नास्तिक बन गया। उसे अच्छी तरह मालूम था कि उसकी ईश्वर विरोधी भावना उसके छोटे भाई की पकड़ को और मजबूत कर देगी। लेकिन उसके सामने कोई और चारा नहीं था। वेशधारी भक्त बनने में अपने छोटे भाई से होड़ लगाने का साहस भी उसमें नहीं रहा। उसके ख्याल में अपने इस छोटे भाई से किसी भी बात पर होड़ लगाना अपनी शान पर बट्टा लगाने वाली बात है। सोचा, उसका कार्यक्षेत्र अलग है और अपना कार्यक्षेत्र अलग।

उसके मन में एक तरह का जनून सवार हो गया। वह मां-बाप के सामने स्पष्ट रूप से साबित करना चाहता था कि मुझमें और भाई में कितना अंतर है। उसने एक ऐसी लड़की से मेलजोल बढ़ा लिया जो उसकी भांति अमेरिकन लाइब्रेरी से 'फिलिप राथ' वर्नाड मालमूड जैसे लेखकों की पुस्तकें जारी करवाकर पढ़ती थी, मैक्समूलर भवन में चलने वाली सायंकालीन कक्षा में जर्मन भाषा सीखती थी और फिल्म सोसायटी में अंग्रेजी में सब-टाइटल वाली फिल्में देखती थी। (यह लड़की मार्क्सवादी बुद्धिजीवी थी)। एक दिन एकाएक उस लड़की को अपने साथ घर ले आया और उसने मां बाप से उसका परिचय कराया। मां बाप उसके बेलबाटम और बनियान को देखकर हैरान हो रहे थे। माधवन ने कहा, "मैं इसी लड़की से शादी करने वाला हूं।" इस तरह ऐलान करके उसने उन्हें एक और झटका दिया। बाद में उसकी मां ने पूछा, "बेटा ब्राह्मणी तो है न?" सुनकर उसका पारा चढ़ गया।

उसे लगा, यदि पद्मा अय्यर (यही उस लड़की का नाम था) ब्राह्मणी न होकर, ईसाई या मुस्लिम होती तो और अच्छा होता। तन कर कहा, "हमारी कोई जाति नहीं है।" फिर उसी लहजे में बोला, "जांत-पांत, रीति-रस्म, पूजा-पाठ, मंदिर और ईश्वर में, मेरी ही तरह उसकी भी आस्था नहीं है। मेरी तरह शास्त्रीय संगीत उसे भी बोर लगता है। उसे पॉप म्यूजिक पसंद है, हम एक दूसरे के लिए पैदा हुए हैं, इसमें कोई संदेह नहीं।"

पद्मा अय्यर से शादी करके माधवन एक अलग एपार्टमेंट में रहने लगा। पद्मा अय्यर को सिगरेट और व्हिस्की का शौक था। उसने माधवन में भी इन दोनों चीजों का चस्का लगवा दिया। उसे भी अपने इस नए इमेज पर गर्व होने लगा। मन ही मन प्रसन्न था कि वह इस ढंग से अपने मां बाप और परशु से खूब बदला लेने में सफल हो गया है। बुद्धिजीवियों में उसका एपार्टमेंट बहुत मशहूर हो गया। विभिन्न जाति वाले वहां व्हिस्की पीने के लिए आने लगे। परशु भी वहां एक बार आया था। तब पद्मा अय्यर की फर्राटे की अंग्रेजी पर परशु को चकराते देख माधवन को बेहद तसल्ली हुई। वह मन ही मन गुर्राया, "जान लिया न, अपनी औकात क्या है?"

लेकिन अंत में परशु ने ही विजय दुंदुभी बजाई। उसने अपने परिचित एक रसोइए के जरिए अमेरिकी दूतावास में किसी को पटाकर वहां एक स्टेनो की नौकरी पा ली। वहां पर संयोग से एक अमेरिकी लड़की से उसका परिचय हुआ। भारतीय संस्कृति और रीति-रिवाजों का अनुसंधान करने के लिए वह भारत आई थी। उसकी वह थीसिस टाइप करते करते जो दोस्ती बनी वह आखिर शादी में परिणत हो गई। पिताजी द्वारा सिखाए गए संस्कृत श्लोक और सुनाई गई कर्नाटक संगीत की स्वर लहरियां, मां की धर्मपरायणता, पूजा पाठ और इन सब से बढ़कर दक्षिण भारतीय भोजन पकाने की कला में परशु की निपुणता आदि पर उस युवती ने अपना दिल लुटा दिया।

उसके दिल में इस घर की बहू बनने की अदम्य इच्छा उत्पन्न हुई और उसने अपनी वह इच्छा पूरी कर ली। परशु के मां-बाप को भी ऐसा लगा कि उनके जीवन में उसका प्रवेश उनके परंपरागत विश्वासों को और उनकी जीवन शैली को अपनाने की एक सुंदर स्वीकृति है। इस भावना से अभिभूत होकर उन्होंने उस लड़की को सहर्ष बहू के रूप में अपना लिया।

माधवन को लगा कि छोटे भाई ने फिर से उसके चेहरे पर कालिख पोत दी है। अपनी पत्नी की फर्राटे की अंग्रेजी, शराब का सेवन, सिगरेट की कश लेना आदि पर आजकल वह गर्व कर नहीं कर पा रहा था। उसे ऐसा एहसास होने लगा था कि वह नकली है, कृत्रिम है। उसके रंग ढंग, चाल चलन, उसके विचार सब कुछ बनावटी हैं। जबकि उस अमेरिकी युवती का हृदय विशाल है। उसके आचार-विचार मौलिक हैं। मन में जब जिस चीज के प्रति आस्था उठती है, उसका ईमानदारी से पालन करती है।

परशु भी कुछ ऐसा ही है। उसका अपना एक निजी चेहरा है, कोई मुखौटा नहीं है। लेकिन मैं? अब तक मैं पहचान नहीं पाया कि मेरा असली मुखड़ा कौन सा है। मां-बाप को संतुष्ट करने के लिए एक मुखौटा पहना था। मेरे छोटे भाई की टीका टिप्पणी करने और उससे अपने को अलग और विशिष्ट दिखाने की धुन में एक और मुखौटा। फिर...फिर तो अपने मां बाप को मर्माहत करने के लिए एक और मुखौटा...असल में मैं हूं कौन?

उसे लगा कि अब एकाएक वह स्वयं अपने लिए एक तीसरा आदमी हो गया है। सोचा, हां। मैं ही तीसरा आदमी हूं...आखिर...

एक शनिवार के दिन सवेरे परशु का फोन आया। उसने उसे और पद्मा को अगले दिन रात्रि-भोज पर बुलाया। बताया, मिरांडा उन लोगों का निकट परिचय पाने के लिए बहुत उत्सुक है, मिलना चाहती है।

उस फोन कॉल ने मानो उसके अंदर किसी मार्मिक स्थल को झकझोर दिया हो।

फ्रिज से निकाली हुई पानी की बोतल मेज पर रखी थी। माधवन ने उसे उठाकर मारे गुस्से के फर्श पर दे मारा कि वह चूर चूर हो गई। फिर शीशे के गिलास को उसी तरह फेंक दिया। उसके बाद फूलदान, फिर कलात्मक चीजें, दीवार पर टंगी तस्वीरें, पत्नी के हेअरऑयल की शीशी, शैम्पू, सेंट की शीशियां, बाब म्यूजिक के रिकार्ड...

फोन का चोंगा नीचे पटककर माधवन ने दांत पीस लिए। मिरांडा उनसे मिलना चाहती है, ब्लडी बासटर्ड !

पद्मा अय्यर मार्केट से लौटी और घर के अंदर पांव रखते ही उसके मुंह पर एक टमाटर 'टप' से आ गिरा। साथ ही माधवन की जोर से हंसने की आवाज। इसके बाद

व्हिस्की की खाली बोतल लगभग उसके कान को छूती हुई दीवार पर लगकर चूर चूर हो गई।

वह भयभीत हो गई। उल्टे पैर बाहर की ओर दौड़ी। पहली मंजिल के मोड़ पर आकर रुकी। अब क्या किया जाए? डाक्टर को फोन करे या मां-बाप को?

ऊपर से माधवन के हंसने की आवाज और भी जोर से सुनाई दे रही थी। अगल बगल के लोगों ने दरवाजा खोलकर बाहर झांका। वह अपमान से सिकुड़ गई। उधर माधवन लगातार हंसता रहा, जोर जोर से अट्टहास कर रहा था। ऐसा लगा कि जिंदगी में अब तक जो हंस न पाया था अब सारी कसर निकालने के लिए हंस रहा है।

गर्भाशय

किसी मित्र के द्वारा प्रसाद नगर में एक फ्लैट के खाली होने की सूचना पाकर सुबह सवेरे कॉफी पीकर वह घर से निकल गया था। अब सूर्य सिर के ठीक ऊपर आ गया है। कड़ी धूप में घर लौट रहा था। भूख, थकान, झुंझलाहट।

घर के द्वार पर जो दृश्य देखा, उससे उसकी झुंझलाहट और बढ़ गई। उसका डेढ़ साल का लाड़ला बेटा सड़क की मिट्टी मुंह में भरकर बड़े चाव से खा रहा था। उसने लपककर बच्चे को उठाया, जोर जोर से तमाचे मारे और फिर चीखते चिल्लाते मुंह में उंगली डालकर मिट्टी निकालने लगा।

बच्चे की चिल्लाहट उसकी पत्नी को अंदर से बाहर खींच लाई। बोली, ''अभी एक मिनट भी नहीं हुआ। जरा काम से अंदर चली गई। इस बीच में न जाने कब यह बाहर दौड़कर आ गया है।''

"बस ! दौड़ पड़ा है बाहर–इतना कहना काफी है?'' वह झल्लाकर फूट पड़ा, ''यह नहीं होता कि दरवाजा बंद करके रखें। हमेशा सपाट खुला पड़ा रहता है।"

"दरवाजे को जो खुला छोड़ते हैं, उनसे जाकर बताना..."

यह इशारा उसकी मां की ओर था। वही हमेशा हवा के लिए घर के सारे दरवाजे खोल देती है।

"कहां है मां?" उसने पूछा। पत्नी ने पिछवाड़े की ओर इशारा किया।

महादेवन ने पिछवाड़े की तरफ झांककर देखा। मां हाथ में खुरपी लिए चमेली के पौधे के चारों तरफ की मिट्टी गिरा रही थी। अपने कमरे में न मिले तो मां पिछवाड़े के बगीचे में जरूर मिल जाएगी। जब देखो, चमेली, सहजन, करी का पत्ता (मीठा नीम), तुलसी, आदि के पौधों को प्यार से सहेजती दुलारती रहती है। पत्नी का यह उलाहना बेबुनियाद नहीं है कि इन पौधों के प्रति मां के मन में जितनी ममता है उतनी अपने सगे पोते पर भी नहीं।

उसकी बुनियाद अपनी जिम्मेदारियों को टालने का बहाना तो नहीं थी?

आचार और शुद्धि के विचार से उसकी मां पूजा-अनुष्ठान पूरा होने तक अपने पोते को छू नहीं सकती, क्योंकि वह कल वाले कपड़े पहने रहता है, किंतु अपने पौधों को वह

छू सकती है, दुलार सकती है क्योंकि पौधे कोई कपड़े नहीं पहनते। जब चाहे उन्हें छू सकती है। पूजागृह में रखे चित्रों को भी...

उसकी पत्नी के मन में दबा आक्रोश वाग्धारा बनकर फूट रहा था।

"मैंने कहीं नहीं देखा है ऐसा। सारा दिन पूजा-पाठ में लगी रहती हैं, समय का मूल्य बिल्कुल नहीं जानतीं। अपने चारों तरफ क्या हो रहा है, घर गृहस्थी में क्या हो रहा है, कौन-कौन सी समस्याएं हैं, इन सब बातों का रत्ती भर भी ध्यान नहीं है। सारा दिन भगवान के चित्रों के सामने बैठे न जाने क्या क्या विलाप करती रहती हैं। छिः छिः, इधर मैं अकेली पड़ी परेशान होती रहती हूं। चौका संभालना, खाना बनाना, पानी भरके लाना...। सब्जी भी मुझे ही लानी पड़ती है। बच्चे को भी संभालना है न? बीच-बीच में नौकरानी की निगरानी करनी पड़ती है। इतने कामों के बीच में अगर कोई दरवाजे को खुला छोड़ के पिछवाड़े में जाके बैठ जाए तो वह दोष भी मेरे ऊपर...।"

"क्या करें, तुम्हीं बताओ। पिताजी के गुजर जाने के बाद से मां की हालत कुछ ऐसी हो गई है।"

"पिताजी को गुजरे अभी आठ ही महीने हुए हैं न? उसके पहले भी आपकी मां कुछ ऐसी ही थी।"

"बेचारी पुराने जमाने की है। देखो, हमें अपनी अपेक्षाओं के तराजू पर उसे तोलना उचित नहीं रहेगा। उसे उसकी कमजोरियों के साथ जस के तस स्वीकार करने की कोशिश करनी चाहिए। और कोई चारा नहीं।"

"उनकी कमजोरियों के साथ उन्हें स्वीकार करना है। आपकी दुर्बलताओं सहित आपको अपनाना है। लेकिन मुझमें कोई कमजोरी या कमी-बेशी नहीं होनी चाहिए। क्योंकि इस घर की बहू हूं न? मुझे सदा दोषरहित, दुर्बलता विहीन, गुणवती, सतवंती होना है। धरती माता जैसी सहनशील..."

महादेवन आगे कुछ न बोला। बोलने का मन नहीं रहा। उन दोनों (मां और पत्नी) पर थोड़ी सहानुभूति भी हो रही थी। यदि चाहें तो घर की चारदीवारी के बीच में ये दोनों सुखी और प्रसन्न रह सकती हैं। लेकिन क्या करें? जो चीज असल में कोई समस्या है ही नहीं, उसे भारी समस्या के रूप में खड़ी करती हुई...छिः।

वह कपड़े बदलकर आया, तब मां भी पिछवाड़े से घर के अंदर आ गई। उसे देखते ही मां ने पूछा, "क्या हुआ बेटा? पक्का है कि कच्चा?" (जिस काम से गए थे, उसमें सफलता मिली कि नहीं?) उसका यह प्रश्न, प्रश्न के शब्द, पूछने का तरीका इस सबने उसमें चिढ़ पैदा कर दी। अभी थोड़ी देर पहले उसने पत्नी को जो उपदेश दिया था, उनसे कतई मेल न खा रही थी उसकी वर्तमान मनःस्थिति (हम स्वयं अपने बारे में कितना कम जानते हैं)।

'कच्चा' 'पक्का' शब्दों का उच्चारण करते समय मां के अधरों की भंगिमा, उसकी मंद मुस्कान, चेहरे पर प्रतिबिंबित आशा और नादानी ने उसे चोट पहुंचाई, यही नहीं उत्तेजित भी कर दिया।

"कहीं झोंपड़ी बनाकर रहना पड़ेगा।" हिकारत भरी आवाज में वह बोला, "मुझे अब बिल्कुल आशा नहीं रही कि हमारी सारी शर्तों के मुताबिक हमें कहीं बसेरा मिलेगा...।"

"अब जिस जगह गए थे वह मकान..."

"वह भी ऊपरी मंजिल का फ्लैट है। तुम्हें तो ऊपरी मंजिल का मकान रास नहीं आता। आजकल सारा संसार बहुमंजिले मकानों में ही बसा है। जब नल में पानी आता है, तभी लोग नहाते हैं, खाना बनाते हैं। बालकनी में जितनी सी जगह मिल जाए वहीं कपड़े सुखाते हैं। जितनी सी जगह उपलब्ध है वहीं पर वे लोग अपने देवी देवता के साथ प्रसन्नता से गुजारा करते हैं। मां! यह जिंदगी जो है, वह केवल समझौता है ! सौ बरस पहले जो जिंदगी का रवैया था वह अब नहीं रहा। इस सच्चाई को समझ कर हमें परिस्थिति के अनुरूप अपने को बदलना होगा।"

मां चुप रही। कुछ न बोली। हमेशा ऐसा ही होता है। जब कभी वह इस तरह बेसब्री से ऊंची आवाज में चिल्लाने लगता है वह एकदम मौन हो जाती है। जिद भरी चुप्पी साध लेती है। फिर, दो-तीन दिनों के बाद, कभी कभी हफ्ते भर बाद पत्नी के द्वारा मां का उत्तर उसे पहुंच जाता है। लेकिन अब! ऐसे मौके पर भी मां मौन व्रत क्यों साध रही है? मकान की तलाश में वह मारा मारा फिर रहा है। यह सब मां के लिए ही तो है।

मां को अपने आचार-अनुष्ठान, पूजा-पाठ के लिए बहुत सा पानी चाहिए। इस सुविधा के लिए नीचे वाला मकान ही ठीक रहेगा। ऊपरी मंजिल का फ्लैट बिल्कुल उपयुक्त नहीं रहता। सुबह की पूजा समाप्त होने तक वह किसी को नहीं छूती। स्नान के बाद वह अपनी शुद्धता को बड़े जतन से सुरक्षित रखती है। उसके गीले कपड़ों को सुखाने के लिए अलग अलगनी चाहिए। उसके पूजा पाठ के लिए फूल और तुलसी के पत्ते भी चाहिए। भोजन में स्वाद के लिए करी का पत्ता और सहजन अनिवार्य है। कभी कभी केले के पत्ते भी चाहिए। उसकी आवाज देते ही कौए और गाय को दौड़े आना है। (रोज कौओं को खिलाकर ही वह भोजन करती है) ये सारी बातें निचले मकान में ही संभव हैं। अलावा इसके, मंदिर और भजन-मंडलियों में वह बराबर जाती रहती है। ऊपरी मंजिल का फ्लैट हो तो, सीढ़ियां चढ़ना, उतरना उसे कठिन लगेगा। मां के पास जो महिलाएं आती रहती हैं, वे भी मां के समवयस्क होती हैं। उन्हें भी सीढ़ियां चढ़ने-उतरने में दिक्कत हो जाएगी। इसके अलावा उसे ऐसे मुहल्ले में मकान की तलाश करनी होगी जहां से मां को मंदिर और

कीर्तन मंडली आदि तक पहुंचने के लिए सुविधापूर्वक बसें मिल सकें। यह एक अहम शर्त है।

हां—नीचे वाला मकान ही चाहिए। जिस पर मां की सुविधा के लिए उपर्युक्त शर्तों के अनुसार एक अच्छे एरिया में ढूंढ़ना बहुत जरूरी है। इसीलिए वह अपने मौजूदा घर को खाली नहीं कर पाता है। मकान मालिक अक्सर फोन पर तकाजा करता रहता है। "मकान कब खाली करने वाले हैं?" कहता है, उसके दामाद की बदली होने वाली है। बेटी के लिए यह मकान चाहिए। हो सकता है यह सब झूठ हो, बहाना हो। आजकल कौन सच बोलता है? या दूसरों के हित या सुविधा का ख्याल करता है? जहां देखो झूठ-फरेब, धोखाधड़ी, खुदग़र्जी। दफ्तर में भी यही सब छल-प्रपंच चलता है। मां जो इस चारदीवारी के अंदर, अपने आचार-अनुष्ठानों के घेरे में अपने को समेटे, नादान बनी अपने देवी देवताओं के पूजा पाठ में लगी, अपने विश्वासों की छोटी सी किलेबंदी में अपने को बचाती छिपाती हुई जी रही है, उसे बाहरी दुनिया के निर्दयतापूर्ण तौर तरीकों का पता नहीं। अपने को जिंदा रखने के लिए आदमी को जो जो छल-कपट और चालाकियां सीखनी पड़ती हैं, जितने प्रकार के निरादर और अपमान को निगलना पड़ता है, यह सब मां के लिए अज्ञात है। वह अबोध है। किसी को दंडित करने के उसके तौर-तरीके भी पुराने हैं। एकदम जिद पकड़ के घोर चुप्पी साध लेना, अपने मन के संताप और असंतोष को सूक्ष्म रूप से व्यक्त करने का वह ढंग, ये सब एकदम पुरातन तरीके हैं। हाय ! इतना भी वह बेचारी नहीं जानती...

महादेवन ने खाना खाया। सवेरे अखबार पढ़ने की फुरसत नहीं मिली थी, अब पढ़ने के इरादे से उसे हाथ में लिए बिस्तर पर लेट गया। लेकिन अब उसका मुन्ना भी उस अखबार से होड़ लगाता हुआ उसके पास आकर लेट गया। महादेवन बाहरी दुनिया को, अर्थात अखबार को एक तरफ हटाकर, बच्चे की दुनिया में आ गया। सोचा—मां के समान उसे भी मोहमाया में आश्रय लेने की जरूरत है। अपने बच्चे के लिए अब वह हाथी, घोड़ा, मुर्गा, कौआ आदि के रूप में बदलता रहा। एक ऐसी दुनिया जहां पर मकान की समस्या नहीं...वह जंगल में प्रवेश कर गया। सुनाने लगा...एक था जंगल...उसमें...कहानी बढ़ती ही गई। न जाने कब, बच्चे के सोने के पहले ही उसकी आंख लग गई थी।

जब दुबारा उसकी नींद खुली, कमरे में अंधेरा छाया हुआ था। साढ़े सात बजे होंगे या आठ।

मेज पर पड़ी हाथ घड़ी सवा आठ दिखा रही थी। छुट्टी का एक दिन पूरे का पूरा यों ही बेकार जाने के पछतावे के साथ वह कमरे से बाहर निकला।

"पधारिए..." पत्नी ने स्वागत किया।

"मुझे जगाया क्यों नहीं?"

"दो तीन दफे जगाया था मैंने। आप उठें तभी न?

तिस पर आप की मां ने "बेचारा सो रहा है। सोने दो न?" कहकर मना कर दिया। "भला सास की आज्ञा कहीं टाली जा सकती है?"

"हरगिज नहीं..."

जब उसे पता चला कि उसकी मां पोते को साथ में लेकर 'तिरुप्पुगषू' कीर्तन क्लास में चली गई है, उसने झट अपनी पत्नी को दोनों बांहों में भरकर कस लिया और...उसकी बांहों से अपने को छुड़ाती हुई वह बोली, ''छिः छिः, मेरे वदन पर इतना पसीना है...।''

"मुझे यही अच्छा लगता है।"

"हूं...हूं...हाय-बाबा—आपकी यह तोंद ! दिन व दिन आपकी तोंद फूलती जा रही है।"

"उम्र बढ़ती जा रही है न?"

"मां भी यही कह रही थीं आज।"

"ओह ! ऐसी बात है?"

"हां...आप को बेखबर सोते देख आपकी अम्मा से सहा न गया। कहने लगी, "आजकल घूमना-फिरना होता नहीं है। अधेड़ उम्र का हो गया है न?"

"इस पर तुमने क्या कहा था?"

"कहा था, उम्र-वुम्र की कोई बात नहीं है। आलसी हो गए हैं।"

"हूं..."

''कहा था, जिस दिन बाहर नहीं भी जाते, उस दिन भी दोपहर की नींद लिए बिना रहते हैं क्या?"

"हूं।"

"लेकिन आपकी मां ने मेरी बातों पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। बस, बराबर 'हाय बेचारा, हाय बेचारा' की रट लगाए रहीं। कहने लगीं, 'बेचारा दफ्तर से आते ही निढाल हो जाता है।' आपकी तबीयत को लेकर बहुत फिक्र है उन्हें।"

घुमा फिराकर बड़ी चतुराई से वह क्या बताना चाहती है इसे महादेवन समझ गया और जोर से हंस पड़ा। मां पर जो गुस्सा आ रहा था, वह ठंडा हो गया। हाय ! बेचारी मां ! मां की ममता ऐसी अनमोल चीज है जो प्राचीनता-नवीनता आचार-अनुष्ठान कुछ भी नहीं जानती।

मां की ममता निराली होती है।

चार दिनों के बाद मां का उत्तर मिल गया, पत्नी की जबानी।

"मां कहती हैं, प्रशांत नगर वाला वही मकान ले लिया जाए।"

"वह तो दूसरी मंजिल पर है।"

"कहती हैं, आपको कोई एतराज नहीं है, तो उन्हें भी आपत्ति नहीं है।"

महादेवन के हृदय में मां के प्रति ढेर सी सहानुभूति उमड़ आई। वह मां के पास जाकर बोला, "मां। यह फ्लैट तो दूसरी मंजिल पर है। तुम्हें दिक्कत होगी न?"

मां बोली, "मेरी चिंता मत करना बेटा। मेरी सुख-सुविधाएं उतनी प्रमुख नहीं हैं। लेकिन तुम्हें तो रोज दफ्तर जाना है, बाहर आना-जाना है, बार-बार सीढ़ियों पर चढ़ना-उतरना होगा। इसका ख्याल रखना कि तुम्हें कोई परेशानी न हो।"

"मुझे क्या परेशानी है?" महादेवन हंस पड़ा। उसकी मां आगे कुछ नहीं बोली। महादेवन ने भी मां की सुख-सुविधाओं की चर्चा न की, न चिंता ही व्यक्त की। उसे तो अपने ऊपर घृणा सी हो रही थी। शर्मिंदा भी था। मन को समझा लिया, "यह सब बच्चे के लिए है।" जब तक नीचे वाले मकान में रहेंगे तब तक बच्चे की यह मिट्टी खाने की आदत नहीं छूटेगी।

अगला इतवार भी उसका बेकार ही निकला। वह विश्राम नहीं कर पाया। मकान बदलना, घर-गृहस्थी के सामानों और परिवार के सदस्यों को सुरक्षित नए घर में ले जाना। खासकर कुछ चीजें कीमती होती हैं या जल्दी टूट जाने वाली होती हैं...इन्हें बड़ी सावधानी से ले जाने के लिए कई बार सीढ़ियां चढ़नी उतरनी पड़ीं।

ऐसे ही एक दौर में एकाएक उसका दम घुटने लगा। हाथ-पांव फूल गए। सिर चकराने लगा, आंखों के सामने अंधेरा-सा...वैसे ही फर्श पर बैठ गया, नए मकान के फर्श पर। थोड़ी दूरी पर खड़ी मां उसे सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से निहारती रही। मानो वह दृष्टि बता रही थी—'बेटा! उम्र हो गई है न?'

उसके मन में आ रहा था कि दौड़कर मां के पास पहुंचे और उसकी गोद में सिर रखकर निश्चिंत लेटा रहे। ऐसा न कर पाने से मन में असमर्थता की भावना जो उठती थी शायद वही क्रोध और आक्रोश बनकर प्रकट हुई हो। यह थकान, सांसो का फूलना...हाथ-पैरों में बोझ बने हुए वर्ष...

खुली खिड़की के जरिए दूर पर दीखने वाले पेड़ और ऊंची-ऊंची इमारतें...जैसे सब उसके बिल्कुल निकट आ गए हों...मानो आकाश की नीलिमा ने उसके चारों ओर सूनेपन की भावना पैदा कर दी हो।

उसे लगा कि वह एकाएक निपट अनाथ हो गया है।

परछाइयां

विदा लेने का वक्त आ गया, विदाई का स्थान भी।

उसके हास्टल का गेट काफी ऊंचा था। लोहे की भारी भारी छड़ों से बने गेट के पास खड़े रहते समय वे दोनों कितने छोटे और महत्वहीन लग रहे थे। हास्टल की इमारत की बाहरी दीवार पर लगे लैंप की मद्धिम रोशनी। इस रोशनी में फाटक की परछाईं बाहरी सड़क पर काफी लंबाई में तन कर लेटी थी। आमने सामने खड़े उन दोनों की परछाइयां भी उस गेट की परछाईं के ऊपर परस्पर घुली मिली-सी सड़क पर फैली थीं।

वह बोला, "हमारी परछाइयां एक दूसरे से गले मिल रही हैं।"

युवती की नजर भी उसी ओर घूमी। गलबांही करती परछाइयों को देखा। वह मुस्कराई। ऐसी फीकी मुस्कान भर रही थी युवक के शब्दों में व्यंजित अर्थ को नजरंदाज करते हुए...अभिव्यक्तिहीन पर अपनी पकड़ को ढीली न करनेवाली मुस्कान। परछाइयां आलिंगन करती हैं, लेकिन मुस्कराती नहीं। वह मुस्कराती हैं, लेकिन...

वह बोला, "आज बड़ी उमस हो रही है न?"

"हूं..."

"और इतनी धूल ! धत ! आजकल शाम को भी नहा लेता हूं।...और तुम?"

"हां, मैं भी।"

"नहाने में तुम्हें कितना समय लगता है?"

''पौने सोलह मिनट।''

"बहुत ज्यादा। मुझे पांच मिनट से ज्यादा नहीं लगता।''

"गुसलखाने में घुसते ही मैं अपने बदन पर पानी नहीं डालती। कुछेक क्षण बाल्टी पानी को हाथों से हिलाती डुलाती, कुछ सोचती-विचारती बैठी रहती हूं। फिर पानी को हाथ में लेकर पांव की एक एक उंगली और नाखून पर बूंद बूंद करके गिराती हूं। मुट्ठी भर बालों को गुच्छा-सा बनाकर हाथ में ले उसे पानी में भिगो लेती हूं और उसका ब्रुश बनाकर हाथ पांवों को सहलाती हूं। लोटे को पानी में औंधा करके हाथ से दबाए रखती हूं...पानी उसके अंदर गुड़गुड़ाने लगता है। तब उसे धीरे धीरे सीधा करती हूं और उसकी बोली को सुनती हूं...बम्...बुम् बम्...बुम्..."

"अगर मैं वह लोटा होता तो कितना अच्छा होता!"

"तुम कहना क्या चाहते हो? क्या मैं तुमसे बात नहीं करती?"

"ना ! मेरा मतलब है, वैसे एकांत में नहीं..."

"डोण्ट बी वल्गर।"

उसकी आवाज में हल्की-सी घुड़की थी। उस आवाज की सख्ती उसे अच्छी लग रही थी। वह खुश था। उसके अभेद्य कवच को भेद डालने की खुशी। अपना मनोगत समझाने में वह सफल हो गया। तभी तो यह डांट पड़ी है। वह खुशी से फूल उठा। बोला, "मैं वल्गर टाइप का नहीं हूं।"

"हां-हां, बेहद नाइस टाइप..." कहते कहते वह संभल गई, "इसीलिए चाहती हूं कि आप हमेशा 'नाइस' रहें।''

"मैं ऐसा नहीं चाहता। मैं चाहता हूं जब तब जरा-सा 'बलगर' बनूं।

"क्या तुम यह भी चाहते हो?"

"कभी-कभी जरा-सा...बस।"

"किसलिए भई?"

"माई गाड ! लगता है, अगला सवाल यह करोगी कि मैं तुमसे प्यार क्यों करता हूं।"

"तो आप 'इसी बात' के लिए प्यार करते हैं? इसी गरज से?"

"कौन सी गरज?"

वह कुछ नहीं बोली। परछाइयों की ओर नजर डाले रही। एक दूसरे से गुत्थमगुत्था होने वाली, घुली मिली परछाइयां।

"लोग क्यों प्यार करते है?" उसने पूछा।

''मैं अब औरों की बात नहीं करती।" वह बोली।

"अच्छा! तुम क्यों प्यार करती हो?"

"रोना, हंसना आदि मूल प्रवृत्तियों की तरह मेरे भीतर से एक भावना अपने आप निर्गत हो रही है, मेरे अनजाने में..."

"आई सी।"

"लेकिन इसमें रोने और हंसने की मूल प्रवृत्ति से भिन्न एक विलक्षणता है। किसी विशिष्ट दशा में विशिष्ट व्यक्ति को देखने पर ही यह भावना अभिव्यक्त होती है।"

"ओह ! कितना भाग्यशाली हूं मैं।"

"लेकिन, तुम में सब्र नाम की चीज बिल्कुल नहीं है।"

"ऐसी बात है?"

"हां-हां, बेशक।"

"हां ! मेरी मां भी यही कहती है। वह जो कुछ पकाती है, सीधे बर्तन से उठा के खा लेता हूं। कलछी, थाली, थोड़ा थोड़ा करके परोसना, इंतजारी...हाय बाबा...यह सब मेरे वश की बात नहीं है।"

उसके चेहरे पर मुस्कान खिल उठी, "मुझे देखते वक्त मां की याद आती है क्या?"

"औरतें आखिर औरतें ही होती हैं।"

"मर्दों की सहिष्णुता की कड़ी परीक्षा लेने वाली भी होती हैं, न?"

"हां...बेशक।"

"फिर भी उन्हें सहना ही होता है।"

"क्या करें? हमारे भाग्य में यही बदा है।"

"पृच्...पृच्...हाय-बेचारे।" उसने उसके कंधे को लाड़ से सहलाया। उस कोमल मृदु स्पर्श से उसका सारा तनाव ढीला होने लगा। उसके अंदर जो बरफ-सा जम गया था, एकाएक पिघलने लग गया और कोई तरल वस्तु उमड़ पड़ी। उसने झट उसका हाथ पकड़ लिया जैसे उसे कसकर अपनी बांहों में बांधना चाहता हो। चेहरे पर आवेग था।

"ऊ-हूं...ना...प्लीज...नहीं...।" बिना उत्तेजित हुए उसने बड़े सहज भाव से अपना हाथ छुड़ा लिया। उस क्षण उसे लगा कि इसका गला घोंट दूं। यह कैसा चरित्र है? आग लगा देना फिर फूंक फूंककर उसे बुझाना।

वह उसकी ओर देखने लगी। उसके गुस्से को महसूस भी कर रही थी। सहज, स्नेहपूर्ण, स्थिति में विदा लेने के इरादे से उसके कंधे को हल्के से थपथपाया था। लेकिन उसका नतीजा उल्टा हो गया।

"नाराज हो?" उसने धीमी आवाज में पूछा।

"छिः छिः। ऐसी कोई बात नहीं है। बहुत ख़ुश हूं। देखो न? मुस्करा रहा हूं।"

उसने अपने होंठ काट लिए।

"प्लीज ! समझने की कोशिश करो न?"

"यह कोई आसान काम नहीं है। फिर भी कोशिश तो करता रहता हूं। मुझ पर भरोसा रखो।"

"तुम जो समझना चाहते हो, उतना ही समझ लेते हो। पूर्ण रूप से नहीं।"

"अपने को तुमने पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया है क्या? तब मैं तुम्हें पूर्ण रूप से कैसे समझूं?"

वह मौन रही। ओह, कैसा निर्मम होकर ताना मार रहा है, कटूक्तियों से कुरेद रहा है !

करुणा और कठोरता को विभाजित करने वाली रेखा इतनी पतली है क्या?

सहसा ठंडी हवा का एक झोंका आया, जो उस माहौल में बेमेल लग रहा था। प्रमुख सड़क पर बसों, मोटरों के चलने की आवाजें, हार्न की ध्वनियां आ रही थीं। उनके सिर पर अकेला एक कौआ कांव कांव करता हुआ उड़ा, मानो अपने बेवक्त की दखलंदाजी के लिए माफी मांग रहा हो। उसे कहीं, किसी बस की प्रतीक्षा में (मिस की भी) खड़े रहने की जरूरत है नहीं फिर भी न जाने आज उस कौए को घर लौटने में इतनी देर क्यों हो गई है।

लेकिन उसे तो बस के इंतजार में खड़ा रहना पड़ेगा। 'गुड नाइट' कहकर, 'कांसलेशन प्राइस' के रूप में एक मुस्कराहट फेंकती हुई वह हास्टल के अंदर घुस जाएगी। लेकिन उसे बस स्टैंड की ओर चलना पड़ेगा। अपने विचारों में गोता लगाता, उनसे संघर्ष करता, उनके घेरे में छटपटाता, मन ही मन भुनकर खाक होता, बस के लिए राह पर आंखें बिछाए घंटों खड़ा रहना पड़ेगा। ओठ भींचकर धैर्य का परिचय देना पड़ेगा। बसों पर उसका कोई वश नहीं है। जैसे और लोग खड़े रहते हैं वैसे उसे भी खड़ा रहना है। कोई बात नहीं, वह खड़ा खड़ा इंतजार करता रहेगा। लेकिन वह क्यों उसे यों इंतजार में, आशा-निराशा के बीच झुलाती रहती है? कितनी छोटी सी बात है यह? इसे कितना बढ़ा-चढ़ाकर महत्वपूर्ण बना लिया है इसने ! हमेशा हर बात के लिए तरसते, प्रतीक्षा करते रहना ही शायद उसके भाग्य में बदा है। कुछ लोगों को हरेक चीज, हर कोई बात कितनी आसानी से हाथ लग जाती है?

सड़क के बीच में एक सफेद रंग की कुतिया भागती आ रही थी। उसके पीछे पीछे एक काला कुत्ता। सफेद कुतिया एकदम खड़ी हो गई, सड़क के बीच में। काला कुत्ता उसे सूंघने लगा।

वह बोला, ''कुत्ते सोच विचार नहीं करते।''

उसके मौन तथा दृष्टि के रुख को देखकर वह हंस पड़ी। उसने सोचा था, जो कुछ उसने कहा था, वे शब्द उसे चौंका देंगे, उसका दिल दुखा देंगे। उल्टे वह हंस पड़ी तो वह चकरा गया। वह अपने को बुद्धू महसूस करने लगा।

जैसे वह एकाएक हंसने लगी, वैसे ही एकाएक उसकी हंसी रुक गई। उसके चेहरे पर अब थकान और उदासी छाई थी। प्रत्येक हंसी के मूल में हर्ष व उल्लास नहीं रहता। वह बोली, "तुम कभी कभी मुझे ऐसा महसूस करा देते हो कि मैं कोई हृदयहीन राक्षसी हूं।"

वह कहने लगा, "और तुम? तुम मुझे ऐसा महसूस करा देती हो कि मैं कोई जंगली हूं।"

"एक जंगली और राक्षसी के बीच में खिल पड़ी है प्रेम की कली।" फिर से वह हंसने लगी।

हाय रे ! ये औरतें कितनी चालाक होती हैं। ऐसी कोई चालबाजी नहीं जो ये नहीं जानती हों। हंसते हंसते आंखों में धूल झोंकती हैं। कभी तो बिना हंसे ही छलती हैं। मीठी बातें बतियाते हुए दगा देती हैं। बिना बातें किए भ्रम में डालती हैं।

यह तो इसी तरह चिकनी चुपड़ी बातें करते करते सारी रात ऐसे ही बिता देगी और अपने को तो सुबह बस स्टैंड की तरफ पैर घसीटते हुए चलना पड़ेगा। हेल (नरक)! इसके बदले अभी विदा लेकर चले जाना बेहतर होगा। गिड़गिड़ाना, रूठना, मनाना, कुड़बुड़ाना, छिः छिः, इससे बेहतर यही है कि सीधे घर जाकर बिस्तर पर निढाल हो जाऊं। कसमसाते इन कपड़ों को उतार फेंकूं और आराम से हाथ पांव पसार लेट जाऊं। सब भाड़ में जाए। यह जैसा चाहती है वैसा रह ले। मुझे क्या पड़ी है। लगता है, असल में मुझे भी 'इस' बात का विशेष आग्रह नहीं है। फिर भी चूंकि इसने 'उस' बात को एक प्रतिष्ठा का प्रश्न बना दिया है, तो लगता है, मुझे भी उस बात को अपनी इज्जत का सवाल बनाना होगा।

"अच्छा। मेरा ख्याल है कि अब मुझे चल देना होगा", उसने अपने चेहरे पर जबरन विदाई वाली वह मुस्कान भर ली और कहा, "गुड नाइट ! विश यू हैप्पी ड्रीम्स (शुभ रात्रि ! मीठे सपनों की शुभकामनाएं)। कम से कम सपने में तो इतने नखरे नहीं करोगी। है न?"

"ओह ! सपने में आने वाले हो?"

"लगता है, सपने में ही आना होगा।"

वह मुस्कराई। 'क्लिक' उसने हाथ ऊपर उठाकर फोटो लेने का अभिनय किया। "थैंक्यू मैडम ! प्रिंट्स कल मिलेंगे।"

"शाम को?"

"हां, शाम को।"

"कहां?"

"मैं स्वयं आकर डिलीवरी करूंगा मैडम!"

"ओह ! थैंक्स।"

"इट इज ए प्लेजर।" उसने कमर टेढ़ा करके सलाम किया, "मेरी तरफ से जो भी सेवा हो बेहिचक बताना।"

"अपनी यादगार में कुछ भी नहीं दोगे?"

"ओह !" उसने अपनी जेबों को टटोलने का अभिनय किया। बोला, "पूच्... पूच्...विजिटिंग कार्ड लाना भूल ही गया।"

"कोई और चीज दो न?"

"जो चाहो?"

"हां।" वह उसके निकट आई और अपना मुखड़ा ऊंचा करके बोली, "आइ मीन इट" (मेरा मतलब यह है)। उसने उन चमकती आंखों को देखा। शरारत में टेढ़ी बनी नाक देखी। उसके नीचे पतला अधर...उसकी अपनी मां का अधर भी इसी तरह पतला था। "मेरे लाल! चुम्मा दे न?" कहती हुए मां अपने गालों को इसी तरह बढ़ाती थी, जब वह छोटा सा बालक था।

यह जो उसके सामने खड़ी है, वह भी एक न एक दिन मां बनने वाली है। हां, मां बन सकती है। एक नन्हीं-सी मां। पल भर में अपना सारा अक्खड़पन भूल गया वह। उसके मन में एकाएक ममता उमड़ पड़ी। उससे अभिभूत होकर उसने उसके दाएं हाथ को हौले से ऊपर उठाके उन उंगलियों को बेहद नरमी से चूमा।

"ना...यहां पर नहीं।"

"फिर कहां?"

"पृच्...पृच्...नादान बच्चा है न! कुछ नहीं पता है।" उसका परिहास करती हुई उसने सिर हिलाया और कहा। आंखों में वही शरारत। जब तक अपनी शर्तों के अनुसार खेल चलता रहे वह खुश रहती है। मगर वह जिस चीज के लिए तरसता है, उसे कभी न देगी। उल्टे वह जो कुछ देती है, बिना इंकार किए उसे खुले दिल से स्वीकार करना होगा। यह कहां का इंसाफ है?

अचानक उसका पारा चढ़ गया। खेल तमाशा सब काफूर हो गया। तमाशे के लिए उसने फोटोग्राफर का जो मुखौटा पहन रखा था वह हवा में उड़ गया। सहज बना वह चेहरा फिर से तन गया। अत्यंत संयत, शांत स्वर में उसने पूछा, "भीख दे रही हो क्या?"

"क्या?" उसकी आवाज में विस्मय के साथ हल्का सा भय भी मिश्रित था।

"मुझ पर तरस खाकर रेजगारी बांट रही हो?" उसके खिले चेहरे पर जो खुशी की लहरें छा रही थीं, एकाएक सूख गईं। उसे अब पछतावा होने लगा कि वह बेहद निर्मम और कठोर बन गया लगता है। इस बात को, इस तरह, इतने कठोर शब्दों में शायद नहीं कहना चाहिए था। लेकिन जो बात मुंह से निकल गई सो निकल गई। अब क्या किया जाए? चंद पल पहले जो अच्छा माहौल बना था अब छितरा गया। बेहतर होता वह थोड़ी देर पहले ही विदा लेकर यहां से चला जाता। तब तो सब कुछ सहज-मधुर था। लेकिन अब...

उसकी आंखें जैसे सजल हो आईं। लगा होंठ भी कांप रहे हैं। क्या वह अभी रो पड़ेगी? ओह ! स्त्री जाति ने इस तरह के कितने अस्त्र अपने भीतर छिपाए हैं? अब उसे सहानुभूति

के साथ विस्मय भी हो रहा था।

उसने एक बार गहरी सांस ली और लंबी सांस छोड़ी। उसका वक्ष एक दो बार ऊपर नीचे होता रहा। सिसकियों को शायद जबरदस्ती दबाने की कोशिश कर रही थी। लग रहा था जैसे सारा शरीर हल्का-हल्का कांप रहा हो। फिर एकाएक फूट पड़ी, "तुम्हें छुट्टे पैसे नहीं चाहिए, है न?" उसके लहजे में उलहना था, साथ में चुनौती भी। फिर कहा, "साबुत नोट ही चाहते हो तो ले लो न !"

वह अचकचाकर मौन खड़ा रहा। वह यही तो चाहती थी। मुझे शर्मिंदा करने का ही उसका इरादा रहता है, इस तरह मुझे जलील करती है कि मैंने कोई बहुत बड़ा जुर्म किया हो। मुझसे जबरन यही बुलवाना चाहती है—'आइ एम सॉरी।' मुझे पश्चात्ताप के लिए, माफी मांगने के लिए विवश करती है। वाह रे तिरिया चरित ! प्रेमपूर्वक आत्मसमर्पण करने के बजाए उसे ललकारने पर तुली है, कांटों में घसीटकर मजा ले रही है।

फिर भी वह झुक सकता था। कह सकता था, हां गलती मेरी है...ऐसा कहकर उसे दिलासा दे सकता था। उसे माफ करके और उसके तिरिया चरित्र को अनदेखी करके वह अपनी और उसकी दृष्टि में ऊंचा हो सकता था। लेकिन ऐसी नम्रता और विनय क्या इतनी आसानी से सहज रूप से आ जाती है इंसान में ? ताने के बदले ताने, चुनौती के बदले में चुनौती यही स्वाभाविक रूप से आती है।

"हु...म् ! ले लो न?" उसने फिर कहा, "जो चाहते हो ले लो।"

"यों, बेमन से, अनिच्छा से नहीं।"

"पूरे मन से कह रही हूं।"

"रियली?"

वह चुप रही।

"तुम समझी नहीं", सिर हिलाते हुए वह बोला, "इतने दिन हो गए फिर भी तुमने अभी तक मुझे सही रूप से समझा नहीं। मुझ पर भरोसा नहीं करती।"

"यदि तुम पर भरोसा नहीं करती तो कइयों के बीच में से अकेले तुम्हीं को क्यों चुनती? असल में मुझे नहीं, तुम्हें मुझ पर भरोसा नहीं है।

"वाह रे वाह ! अच्छा !"

"तुम पर मुझे विश्वास है, इसका सबूत चाहते हो। यह भी चाहते हो कि मैं उसे साबित करके दिखाऊं, है न?"

"ऐसी कोई बात नहीं। प्लीज ! तुम्हें इस तरह नहीं सोचना चाहिए।" उसने उसका हाथ फिर से अपने हाथ में लेते हुए कहा, "मेरे ख्याल में हम परस्पर विश्वास देने-दिलाने की स्थिति के पार पहुंच चुके हैं।"

"हां, मैं मानती हूं।"

"प्रेम और विश्वास साबित करने का सवाल ही नहीं उठता। हम दोनों की एक निजी दुनिया बन चुकी है। अब तो जो समस्या हमारे सामने है, वह तो उस दुनिया के कायदों की समस्या है। अलग अलग कमरे और पर्दों की समस्या है।"

"यानी कि सवाल यही है कि कब वह पर्दा हटे। है न?"

"हां। लेकिन क्या तुम इन पर्दों को जरूरी समझती हो?"

"यह पत्थर का युग नहीं है।"

"लो...देखो न ! तुमसे मैं जो चाहता हूं—वह 'वह बात' नहीं है। तुम्हारा ख्याल है कि मैं तुमसे कुछ छीनना चाहता हूं और तुम उसे मुझसे सुरक्षित रखना चाहती हो—है न? असल में बात यह नहीं है। मैं जो चाहता हूं...वह केवल तुम हो। हां ! बिना किसी छिपाव दुराव के संपूर्ण रूप से; बेपर्दे के ! समझी? अगर केवल मुझे 'वही' चाहिए होता तो मैं किसी बदबूदार गली में किसी को..."

उसने झट उसका मुंह बंद कर दिया, "प्लीज।"

"कहने का मतलब यही है कि केवल उस बात के लिए मैं तुम्हारे पास नहीं आया था।" वह आगे बोलता गया, "हां, 'उस' इच्छा की पूर्ति के लिए कतई नहीं। नाट एट आल। तुम मुझे अच्छी लगती हो। कई एक लड़कियों के बीच में अकेली तुमने मुझे आकर्षित किया। मेरा मन चंचल हो उठा। यही सबसे पहली और महत्व की बात है। बाकी बातें बाद में आती हैं। देखो, पूर्ण रूप से आत्मसात करके, अपने को उसमें एकाकार करने योग्य, किसी को पाने के बाद, जो कुछ देना है वह सब देकर, जो कुछ पाना है वह सब लेकर, जीवन में पूर्णता पाने की तृष्णा है यह। तुम्हें इसे अच्छी तरह समझना है।"

"समझती तो हूं मैं... लेकिन।"

"बस।" उसने उसे चुप होने का इशारा किया, "समझ लिया है तो ठीक है। बाकी बातें उतनी जरूरी नहीं। हमारे व्यक्तिगत जीवन के कायदे, सामाजिक नियमों के विरुद्ध न हों—यही तुम्हारा विचार है, कामना है। जैसे तुमने मुझे समझ लिया है, वैसे मैं भी तुम्हारे दिल की बात समझता हूं। तुम्हारी आस्था और विश्वास को मैं समझता हूं। मैं जब तक तुम्हारे विश्वासों का आदर करूं तभी तक मैं तुम्हारे आदर का पात्र बना रहूंगा। है न?"

उसका चेहरा खिल उठा। निर्मल मुस्कान अधरों पर लहराई। बोली, "थैंक्स।"

"मैं तुम्हारे विश्वासों का आदर करता हूं मगर", उसने अपना सिर जोर से हिलाते हुए कहा, "मानता नहीं।"

वह उसके पास और सरक आई। अपनी उंगली से उसकी छाती पर लकीरें खींचती हुई धीमी आवाज में पूछा, "मुझसे नाराज तो नहीं हो न?" उसने उसके कंधों पर अपना

हाथ रखा। उसने उसे अपनी बांहों में लेने की इच्छा को जबरदस्ती दबाता हुआ झट अपना हाथ खींच लिया। बोला, "नाराजगी? तुम पर ! सो कैसे?" उसी क्षण उसे महसूस हुआ कि हमेशा की तरह आज भी वह हार गया है। हां...कुछ ज्यादा बोल देने से खुद अपने आप बंध गया है। उसकी नजर में अपने को जेंटिल मैन सिद्ध करने की मजबूरी का ख्याल आते ही उसका मन उकता गया।

धीरे धीरे अपने को भावनाओं के बंधन से मुक्त करता हुआ वह बोला, "अच्छा ! चलूंगा।... गुड बाई।''

"अभी जाना है ?...सच में ?''

"जानती हो, समय क्या हुआ है? साढ़े दस।"

"मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।"

"कहां? बस स्टैंड तक?"

"नहीं। तुम्हारे कमरे तक।"

वह एकदम सकते में आ गया। झट बोला, "नहीं-नहीं...डोण्ट बी सिली।" फिर कहा, "हम इस बात पर बहस कर चुके हैं। तुम जिस चीज को नहीं चाहती उसे करना लाजमी भी नहीं है।"

"अब मेरे मन में वह इच्छा जगी है।"

"नो-नो—अब तुम्हें साथ ले जाऊं तो अपराध भावना के बोझ से परेशान रहूंगा।"

"तुम्हें ऐसे ही छोड़कर मैं अपने कमरे में लौट जाऊं तो मैं भी उसी अपराध भावना से परेशान रहूंगी।"

पल भर वह डगमगाया। तुरंत संभलकर बोला, "आज मेरा वह मूड नहीं रहा। फिर किसी दिन..."

"पता नहीं उस दिन मेरा मूड रहेगा कि नहीं?"

''कोई बात नहीं है।'' कुछ देर पहले जो चीज बेहद अहमियत रखती थी, अब वही उसे एकदम नाचीज लगी।

उसके इस अप्रत्याशित विचलन पर मानो आशंकित होती हुई, और इस विचार से घबराती हुई कि कहीं उसके मन में मेरे प्रति लगाव और आसक्ति कम तो नहीं हो गई, उसने उसे अपनी कोमल बांहों में भर लिया। "मै झूठ नहीं बोल रही हूं। मैं तो अभी इसी वक्त तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूं।" यों बड़बड़ाती हुई उसके हाथ को कसकर पकड़ लिया। उसकी अकुलाहट, उसका यह आत्म-समर्पण, उसकी वह कातर दृष्टि इन सब से वह उत्साहित होने की बजाए घबराया। उस क्षण उसे लगा कि अपने दिल में उसका जो इमेज बना था वह सुंदर बिंब खंडित हो रहा है। "ना...ना...प्लीज।" उसने बड़ी मुश्किल

से अपने को उसके आलिंगन-पाश से छुड़ाया जैसे उसके दिल पर चोट नहीं पहुंचाना चाहता हो। बोला, "तुम्हारी बातों पर मुझे पूरा पूरा भरोसा है, डियर, तुमसे मैं जरा भी नाराज नहीं हूं। लेकिन आज नहीं। ठीक है न !"

''जैसी आपकी मर्जी।''

"ओ...के! जरा मुस्कराओ तो।"

वह मुस्कराई। उस मुस्कान को अपनी चेतना में सहेज कर, मानो और सभी विचारों से बचते हुए, वह बस स्टैंड की ओर बढ़ने लगा। असल में ऐसी कौन सी बात थी जिसने मुझे उसकी ओर रिझाया? औरों से उसे न्यारी और अनोखी दिखाया? हां—मेरे प्रति उसके मन में जो भरोसा है, आदर है, उसे कौन सा तत्व अटूट बनाए रखता है?

सड़क पर फैली लैपों की रोशनी, और रोशनी के बीचोंबीच फैली काली परछाइयों से गुजरता हुआ वह तेजी से कदम बढ़ाता जा रहा था। सोच रहा था, "जब रोशनी आती है, परछाइयां भी साथ साथ आ जाती हैं।

इतवार, महानगर, और कमरे में एक युवक

होटल में भोजन करके नागराजन जब अपने कमरे में वापस आया, ग्यारह बज चुके थे। इतवार होने के बादजूद ग्यारह बजे ही खाने से निपट गए. इस पर उसे अचरज के साथ थोड़ी मायूसी भी हो रही थी। अगर वह सुबह एक मार्निंग शो चला जाता, या बाल कटवाने गया होता तो काफी दिन निकल गया होता। फिर भोजन करके सो जाता तो आंख खुलते वक्त संध्या हो गई होती। कॉफी पीकर घूमने निकलते, रात हो जाती। यों चुटकी में इतवार का दिन कट जाता।

लेकिन आज बाल कटवाने या मार्निंग शो जाने का मन न रहा। नतीजा यह रहा कि आज ग्यारह बजे ही भोजन से निवृत्त हो चुका है। तो अब एक पूरा दिन उसके सामने मुंह बाए खड़ा है। लंबा-सा दिन। गहरी सांस भरता हुआ उस दिन का अखबार हाथ में लिए नागराजन खाट पर आधा लेटा-सा बैठा। सिगरेट का पाकेट खोल कर एक सिगरेट हाथ में ली, पैंट-पाकेट को टटोला। माचिस नहीं मिली। अब रसोईघर तक जाकर उसे लेना पड़ेगा। बिस्तर पर लेटने के बाद फिर उठने का मन नहीं कर रहा था। सिगरेट को बगैर जलाए ही ओठों पर लगाए अखबार के पन्नों को उलटने लगा। अंतिम पृष्ठ के पहले वाले पन्ने पर घुड़दौड़ की खबरें निकली थीं।

"लकी स्टार के जीतने की आशा है" इस शीर्षक के नीचे उस दिन की घुड़दौड़ के बारे में पूरा विवरण चार कालम में दिए गए थे। इन कालमों पर उसकी आंखें धीरे धीरे चलने लगीं। दूसरे कालम पर पहुंचते पहुंचते आंखें अपने आप मुंद गईं। खाने के बाद सुस्ती आती ही है। उसका सिर एक तरफ लुढ़का। ओठों पर लगी सिगरेट खिसकर अखबार पर गिर पड़ी...

खट-खट...दरवाजा खटखटाने की आवाज आई। नागराजन की नींद खुल गई। फिसल कर नीचे पड़ी सिगरेट को बड़ी सावधानी से लेते हुए वह खाट से उठ गया। दरवाजा खोलकर देखा था तो वहां सारंगन खड़ा मिला, साथ में एक अपरिचित युवक। "यह मेरा दोस्त रमणी है, दिल्ली से आया है।" सारंगन ने अपने साथ आए युवक का परिचय कराया। नागराजन ने उसकी तरफ आंख उठाकर देखे बिना ही हाथ मिलाया। अब तो उसका सारा ध्यान सारंगन के हाथ में सुलगती सिगरेट पर थी। धुआं उगलते सिगरेट के उस टुकड़े को नागराजन

ने हाथ बढ़ाकर बेझिझक ले लिया और अपनी सिगरेट जला ली। समय संजीवनी की तरह आए सारंगन के प्रति उसके मन में कृतज्ञता और स्नेह उमड़ पड़ा।

तीनों कमरे के अंदर आकर बैठे। ''जानते हो आज कौन सा नंबर आने वाला है?''

"सेवन।" सारंगन ने कहा।

"कौन-सी रेस में?"

"बुद्धू ! रेस में नहीं, मटके में।"

"मटका?" नागराजन ने पूछा, फिर बोला, ''बुधवार को ही 'सेवन' आ गया।" 'मटका' बंबई में खेला जाने वाला एक किस्म का जुआ है। 'न्यूयार्क काटन' की तरह रोज किसी खास नंबर से शुरू होता है और किसी नंबर पर खत्म होता है। सब से कम चार आने का 'बेट' लगता है। सारंगन ने कहा, "आज भी सेवन है।"

"बोलो, एक दिन भी आया है क्या, तुम्हारा बताया नंबर?''

''अरे ! क्या बक रहे हो? पिछले महीने कितने दिन आया था?"

"बताओ ! कितने दिन?"

नागराजन साबित करना चाहता था कि सारंगन का 'मटका' संबंधी अनुमान नब्बे प्रतिशत सही नहीं निकलता। लेकिन सारंगन इसे मानने के लिए तैयार नहीं था। आज तक उसने अपनी हार कब मानी है? नागराजन ने देखा, बहस करना बेकार है। इसलिए वह चुप हो गया।

"अच्छा ! आज का क्या प्रोग्राम है?" सारंगन ने पूछा।

"मैंने सोचा, अम्बि के यहां जाऊं।" नागराजन ने कहा।

"मत जाना। वहां खड़े होने के लिए जगह नहीं है। सुना है, रात भर अम्बि को भारी नुकसान हुआ है। अब तुम वहां जाओ तो हो सकता है, वह तुमसे उधार मांग बैठे।"

"तुमसे मांगा होगा।"

"वह पहले ही मेरा कर्जदार है।"

नागराजन चुप हो गया। उसे याद आया, अम्बि के यहां प्रत्येक शनिवार की शाम से ताश का दौर शुरू होता है जो सोमवार की सुबह तक जारी रहता है। एक के बाद एक राउंड, कभी समाप्त न होने वाला दौर। इन बैठकों की याद आते ही सारा शरीर सिहर उठा। अभी छह महीने पहले तक—सारंगन से घनिष्ठता होने से पहले तक—वह भी इस ताश महासभा का नियमित सदस्य था। सारंगन को ताश के खेल में दिलचस्पी नहीं थी। घंटों तक एक ही जगह बैठे रहने की सहनशीलता उसमें नहीं थी। इसी वजह से क्रिकेट मैच में भी उसका शौक नहीं रहा। आज भी रंजी ट्राफी का एक मैच है।

थोड़ी देर के बाद सारंगन ने पूछा, "हम लोग रेस खेलने जाते हैं। तुम भी चलोगे?"

"रेस डेढ़ बजे शुरू होती है। अभी से क्या जल्दी है?"

"मेरा ख्याल है, रेस के मैदान में जाने के पहले रमणी को महालक्ष्मी मंदिर दिखाया जाए।"

नागराजन फिर से चुप हो गया। समय काटने के लिए उसे हमेशा सारंगन की सलाहें माननी पड़ती हैं, लेकिन उसकी सुझावों को सारंगन कभी नहीं मानता। उसने सोचा—अब सारंगन के साथ जाना जरूरी है? यहां कमरे में मन बड़ा शांत और निश्चल है। बाहर जाने पर सब कुछ बदल जाएगा। अपने कमरे में तो वही राजा है। लेकिन बाहरी दुनिया में स्थान, वातावरण और व्यक्तियों का वह गुलाम हो जाता है। परिस्थिति, व्यक्ति और स्थान के अनुसार उसे चलना पड़ता है। सारंगन और उसके बीच दोस्ती का जो अलिखित समझौता है, उसका वह गुलाम है।

सारंगन ने पूछा, "क्या सोच रहे हो भई?"

"कुछ नहीं", नागराजन उठ गया, "तुम कह रहे हो, मैं भी चलूं।"

"हां...जल्दी करो"

नागराजन कपड़े पहनने लगा। उसके पैंट पहनने तक सारंगन इंतजार करता रहा, फिर पूछा, "पानी पिलाओगे कि नहीं?"

नागराजन तुरंत बगल वाले कमरे में गया। यही कमरा रसोईघर का काम देता है, इसके प्रमाण थे, वहां रखे हुए बर्तन, अलमारियों में रखे डिब्बे।

"मकान मालिक छुट्टियों में बाहर गए हैं। अब मकान का रखवाला मैं ही हूं।" नागराजन एक कोने में रखी मटकी से एक गिलास पानी ले आया। सारंगन ने गिलास हाथ में लेते हुए कमरे के चारों तरफ नजर दौड़ाई फिर बोला, "आज पहली बार इस कमरे को देख रहा हूं।"

उसकी शादी अभी अभी निश्चित हुई थी। इसलिए मकान, रसोईघर इत्यादि के प्रति उसके मन में दिलचस्पी होने लगी थी।

पानी पीने के बाद सारंगन ने पूछा, "तो सबके सब गांव चले गए हैं?" सारंगन ने 'सबके सब' शब्द पर जानबूझ कर जोर दिया। फिर आगे बोला, "तभी तो तुम इतने उदास हो।"

उस क्षण नागराजन को लगा कि वह औंधे मुंह धरती पर गिर गया है। सारंगन के गाल पर जोर से एक थप्पड़ मारने की इच्छा हुई। सोचा, उसकी यह ज्यादती है। उस पर जरूरत से ज्यादा अपना हक जता रहा है। लेकिन एक खिसियानी हंसी हंसता हुआ मौन रहा। मकान मालिक की एक खूबसूरत बेटी थी। उसके प्रति अपने मन में अंकुरित प्रेम भाव की चर्चा नागराजन ने किसी कमजोर क्षण में सारंगन के सामने कर दी थी। बाद

में उसे लगा कि सारंगन को यह बात सुनाकर उसने ठीक नहीं किया। जो अपनी अंतरंग बात है, उसी को लेकर अगला आदमी गैर जिम्मेदाराना ढंग से खिल्ली उड़ाए, यह उसे कतई पसंद नहीं था। पर सारंगन के सामने नाराजगी को जाहिर करके आपसी मित्रता के महीन धागे को तुड़वाना भी नहीं चाहता था। दोनों के बीच में तनाव की स्थिति पैदा करने की हिम्मत भी नहीं थी। उसे डर था कि इससे मित्रता का धागा टूट जाएगा। सारंगन से अपनी दोस्ती बनाए रखने के लिए अपने स्वाभिमान की सीमाओं में अंतरंग रुचि-अरुचि, इच्छा-अनिच्छाओं में ढिलाई करनी पड़ती थी। जिन रुचिभेदों और विरोधी विचारों ने उसके व्यक्तित्व को एक अलग अस्तित्व प्रदान किया था, उन्हें उसे अस्थाई रूप से ही सही, गिरवी रखनी पड़ती थी। अपनी तनहाई की बोरियत को दूर करने के लिए अपनी हस्ती को उसे मिटाना पड़ता था।

साढ़े ग्यारह बजे वे घर से निकले। माटुंगा से सयान पहुंचे और वहां से दूसरी बस पकड़ी। सयान बस स्टैंड में सारंगन ने रेस की टिपृस की एक पुस्तिका खरीदी। फिर तो पूरे सफर में, आज की रेस में कौन-कौन घोड़े जीतेंगे, प्रमाणों सहित वह नागराजन को समझाता रहा।

महालक्ष्मी मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए और मंदिर के द्वार पर चप्पल उतारते समय भी वे लोग रेस की ही चर्चा करते रहे। मंदिर के अंदर पहुंचने पर सारंगन रेस की बातें चंद मिनिट के लिए भूल गया और रमणी को उस मंदिर की महिमा सुनाने लगा।

मंदिर के पीछे समुद्र की जोरदार लहरें गरजती हुई चट्टानों से टकराकर फेनिल बूंदों को छितरा रही थीं। समुद्र की रानी, भगवान के सामने लहर के नारियल चढ़ा रही है क्या? शायद कहती होगी, इन पापात्मा बंबई निवासियों को छोड़कर मेरे पास आ जाइए। नागराजन के मन में उन लहरों को अपलक निहारते खड़े रहने की इच्छा उठ रही थी।

मंदिर से नीचे उतरते हुए रास्ते पर जो गन्ने के रस की दुकान थी, उसमें तीनों ने एक एक गिलास गन्ने का ताजा रस पिया और रेसकोर्स की तरफ चल पड़े।

रेसकोर्स के पास पहुंचते पहुंचते सड़क पर मोटरों और फुटपाथ पर लोगों की संख्या काफी बढ़ गई। इतनी भीड़भाड़ और शोरगुल से सिर चकराने लगा। सड़क पर जितनी मोटरें खड़ी थीं, उनसे दुगुनी संख्या में कारें अहाते के अंदर खड़ी थीं। आठ आठ रुपए का प्रवेश शुल्क देकर तीनों अंदर पहुंचे। अभी एक बजकर चालीस मिनट हुए हैं। रेस के शुरू होने में अभी बीस मिनट बाकी है। सामने लगे ऊंचे तख्ते पर यह विवरण दिखाया जा रहा था कि आज कौन-से घोड़े पर कितने टिकट बिक रहे हैं। छठें नंबर के घोड़े पर ही ज्यादा टिकट बिक रहे थे। सारंगन बोला, "छठा नंबर मेरा फेवरिट (मेरी पंसद का) नंबर है।"

रमणी बोला, "तब तो हम उसी पर एक टिकट ले लेंगे"

सारंगन हंस पड़ा। "अरे ! कौन सा घोड़ा जीतेगा इतना भर जान लेना काफी नहीं है। यह भी देखना है कि कौन सा घोड़ा ज्यादा से ज्यादा पैसा देगा। छठे नंबर के घोड़े पर अभी तक लगभग दो हजार टिकट बिक गए हैं। अगर वह जीत भी जाएगा तो इनाम का पैसा दो हजार व्यक्तियों में बंटेगा न? तुम पांच रुपया लगाओगे तो शायद छह या सात रुपए मिल सकते हैं, बस।"

"तीसरे नंबर के घोड़े पर कम टिकट बिके हैं।"

"लेकिन तीसरा नंबर घोड़ा नहीं जीतेगा न !"

रमणी चकराया। सारंगन ने उसे एक बोर्ड दिखाया। जिसमें 'फोरकास्ट पूल' लिखा था। क़ौन सा घोड़ा पहला आएगा और कौन सा दूसरा इसका पूर्वानुमान ही फोरकास्ट होता है। कौन सा घोड़ा पहला आएगा इसका अंदाजा बहुत से लोग तुक्का लड़ाकर कर सकते हैं। लेकिन बहुत कम लोग होंगे जो सिलसिलेवार ढंग से अनुमान लगा सकें कि फलां घोड़ा पहला आएगा, फलां दूसरा। इसलिए 'फोरकास्ट' में ज्यादा पैसा कमाने की गुंजाइश है। कुल संख्या को लेकर अलग अलग क्रम से गणना करके अनुमान लगाया जाता है कि फलां पहला होगा और फलां दूसरा। उस क्रम के अनुसार जो रकम मिलने की संभावना है उसे यह बोर्ड सूचित करता है। इस रेस में आज नंबर छह, नंबर चार, नंबर एक ये तीनों घोड़े ही प्रमुख है। इनमें से किसी को पहला और किसी को दूसरा नंबर देकर बेट लगा सकते हैं। नंबर छह, नंबर चार को जो रकम मिलने वाली है, वह नंबर छह, और नंबर एक को मिलने वाली रकम से ज्यादा हो सकती है, उसके लिए एक टिकट ले सकते हैं।"

सारंगन ने दो किस्म के मेल में टिकट लिए—छह-एक पर एक टिकट और एक-छह पर एक टिकट।

रमणी बोला, "यदि यह निश्चित रूप से मालूम है कि नंबर चार ही दूसरे स्थान पर आएगा, तो नंबर छह और नंबर चार के कांबिनेशन पर ले सकते थे न?"

"यह जुए का खेल है। सही उत्तर निकालने के बदले, जो लाभदायक रहेगा, इसका पता लगाने में ही होशियारी है।" सारंगन ने कहा।

तीनों गैलरी में जाकर बैठ गए। रेस शुरू होने के पहले घोड़े गैलरी के सामने की तरफ धीमी चाल से ले जाए गए। नागराजन ने पास बैठे एक आदमी का बैनाकुलर मांगकर घोड़ों को देखने के बदले साड़ियों पर नजर दौड़ाने लगा। उसकी राय में रेसकोर्स में जो रूपसियां आती हैं, केवल उनके दर्शन के लिए आठ रुपए दे सकते हैं।

रमणी ने पूछा, "कैसे पता चलेगा कि कौन सा घोड़ा उम्दा है।"

"बहुत सी बातें हैं इसमें।" सारंगन ने कहा, "घोड़े की वंश परंपरा कैसी है, उसका

मालिक कौन है, कौन उसका प्रशिक्षक है, जैकी कौन है, हाल में हुए दौड़ों में अमुक घोड़ा कैसे दौड़ा इत्यादि बातों को परखना होता है। आज नंबर छह पर जो घोड़ा दौड़नेवाला है, उसका नाम है 'लकी स्टार।' जिब्रालटर का बच्चा। आज तक जिब्रालटर का कोई भी बच्चा निकम्मा नहीं निकला है। इस सीजन में कलकत्ता, मद्रास, बैंगलूर, पूना सभी जगहों की दौड़ों में 'लकी स्टार' ने कमाल दिखाया है। चंदूलाल इसका कोच है और जैकी है जानसन। असल में दोनों ही बड़े काबिल हैं। लकी स्टार का मालिक है एस.के. मेहता। इसलिए अब हमें यह देखना है कि एस.के. मेहता के मुकाबले में खड़े घोड़ों के मालिक कौन कौन हैं? नंबर दो, नंबर तीन, नंबर पांच, आदि घोड़ों के मालिक मि. मेहता के ग्रुप के हैं। इनमें से किसी एक का घोड़ा यदि पहले आए, तो बाकी तीनों उसे हराने की कोशिश नहीं करेंगे। सो नंबर एक और नंबर चार ही नंबर छह से होड़ लगाने वाले हैं।"

लाइन पर तैयार खड़े घोड़े सिगनल पाते ही लपक कर दौड़ने लगे। 'दे आर आफ' ... लाऊड स्पीकर में कमेंट्री शुरू हो गई। 'नंबर सिक्स लीडिंग' माईक से आवाज आई। थोड़ी देर के बाद सारंगन ने रमणी की ओर गर्व भरी दृष्टि से देखा। काफी दूर तक नंबर छह सबसे आगे दौड़ रहा था लेकिन फिनिश तक पहुंचने के लिए जब दो सौ गज की दूरी बाकी थी, नंबर एक ने एकाएक आसुरी वेग से छलांग मारता हुआ दौड़ लगाया और नंबर छह से आगे निकल गया। यही नहीं, आखिर तक अपनी इस गति को जरा भी ढीला किए बिना रेस जीत भी लिया। नंबर वन का कोलाहल मच गया। पल भर के बाद नंबर चार, नंबर छह, दोनों ने आपस में होड़ लगाकर फिनिश लाइन को पार कर दिया। दूसरे घोड़ों ने भी एक एक करके उनका पीछा किया। माइक पर घोषणा हुई, "नंबर वन को पहला स्थान प्राप्त है। दूसरे स्थान की सूचना फोटो फिनिश को देखने के बाद घोषित की जाएगी। फोटो फिनिश पर नंबर चार और नंबर छह हैं।"

सारंगन ने कहा, "नंबर छह को दूसरा स्थान मिल जाए तो बेहतर होगा। मैंने नंबर एक और नंबर छह के कांबिनेशन में टिकट लिया है न?"

एक मिनट के बाद घोषणा की गई, "फोटो फिनिश के अनुसार नंबर चार को दूसरा स्थान और नंबर छह को तीसरा स्थान प्राप्त है।"

सारंगन ने, अपने हाथ में जो टिकट थे, उन्हें फाड़कर फेंक दिया। पांच जमा पांच कुल दस रुपए पानी में गए।

तीनों गैलरी से उतरकर कॉफी पीने गए। वहां पर अपने एक परिचित मित्र को देखते ही सारंगन ने 'हेलो' कहकर हाथ मिलाते हुए कहा, "अरे, लकी स्टार ने आज बेहाल कर दिया रे !"

मित्र ने कहा, "कहो कि जानसन ने यह हाल कर दिया है ! नंबर छह पर हद से

ज्यादा बेटिंग हो गया था। सुना है, नंबर छह को सबसे आगे न ले जाने के लिए बुक्कियों ने जानसन को पैसा खिलाया है।"

"छिः छिः, जानसन ऐसा काम कभी नहीं करता।"

"अभी किया है न? अब क्या बोल रहे हो?"

सारंगन चुप था। फिर पूछा, "तुम भी हार गए?"

"मैंने नंबर वन पर बेटिंग किया था।"

"रियली ! बधाई हो !"

"बस ! अब सब्र करो। मेरे पास के जैकबाट टिकट में पहली और दूसरी रेस ठीक आई है। देखना है, आगे की रेसें कैसी रहती हैं, उनमें क्या होता है?''

तीसरी रेस के लिए टिकट खरीदे बिना मात्र दर्शक बने रहने का उन्होंने निश्चय किया। तीनों फिर से गैलरी में जाकर बैठे। उनके पीछे की कतार में बैठी एक काले चश्मे वाली अपने हाथों की चूड़ियां खनकाती हुई बार बार अपने आंचल और केश को संवारती रही। नागराजन ने एक बार मुड़कर उसकी ओर देखा।

घुड़दौड़ शुरू हो गई। नंबर वही, लेकिन घोड़े नए थे। जैकी भी दूसरे थे। सारंगन ने फट से कहा, "तीसरा नंबर ही जीतने वाला है।" नागराजन ने मन ही मन कामना की, "तीसरा नंबर हार जाए।" सारंगन घुड़दौड़ और घोड़ों के बारे में सर्वज्ञता की डींग जो मार रहा था, नागराजन को वह कतई अच्छा नहीं लगा। उसने सोचा, इसे जितना आता है, उतना तो मैं भी जानता हूं। मेरी सलाह लेकर खेला होता तो अब तक कम से कम एक रेस में कुछ तो कमाया होता। सारंगन की नजर में मैं इतना बड़ा नहीं हूं कि मुझसे सलाह ली जाए। यह विचार आते ही नागराजन क्षुब्ध हुआ। उस समय स्वयं आगे बढ़कर सलाह देने या बहस करने का साहस भी उसमें नहीं था।

रेस ने सरगर्मी पकड़ ली। जो लोग बैठे हुए थे, हडबड़ाकर उठ खड़े हो गए। "कम आन, कम आन" की चीख पुकार मच गई। "कम आन मुमताज" की चिल्लाहट के साथ, एक हाथ नागराजन के कंधे पर आ गिरा। चौंक कर उसने मुड़कर देखा। "ओह, आई एम सॉरी" कहती हुई काले चश्मे वाली ने अपना हाथ खींच लिया। हड़बड़ी में उसने अनजाने ही अपना हाथ उसके कंधे पर डाला होगा या जान बूझकर? इसके बाद नागराजन का मन घुड़दौड़ में नहीं लगा। मन में संदेह होने लगा कि शायद वह ग्रैंड रोड वाली होगी।

आखिर नंबर तीन की जीत हुई। ''पृच्...पृच्..बेट लगाना चाहिए था इस पर" सारंगन हाथ झटकाते हुए पछताया। काले चश्मे वाली की प्रतिक्रिया देखने के लिए नागराजन ने पीछे की तरफ देखा। जैसे वह भी इसी इंतजारी में थी कि नागराजन उसे देखेगा। वह भी मुस्कराई। नागराजन चकरा गया। उसे लगा, अभी वह बेहोश हो जाएगा।

"एक्सक्यूज मी ! अगली रेस के लिए कोई टिप् दे सकते हैं आप?"

नागराजन कुछ जवाब देता इससे पहले सारंगन बोल पड़ा, "नंबर दो, या नंबर पांच।" 'थैंक्यू' कहकर वह उसकी तरफ देखती हुई मुस्कराई। नागराजन झल्ला उठा। सोचा– "उसने जब मुझसे सलाह मांगी तो यह क्यों जवाब देता है?"

सारंगन उठा, "आओ भई। टिकट लेकर आएं।" नागराजन ने उसे थोड़ा रुकने का संकेत किया और चश्मे वाली की ओर देखकर पूछा "आपके लिए कोई टिकट लेना है?" "येस ! वेरी काइंड आफ यू" (आपकी बड़ी मेहरबानी) "उसने अपना हैंड बैग खोलकर पांच रुपए का नोट निकाला और उसे पकड़ाते हुए कहा, "नंबर टू...फाइव पर एक टिकट।"

काले चश्मे वाली के लिए टिकट काउंटर पर जाकर सारंगन ने 'टू-फाइव' पर एक टिकट, और अपने लिए पांच-दो पर दो दो टिकट लिए। गैलरी में वापस आते ही नागराजन ने काले चश्चमे वाली को उसका टिकट देकर उसके बदले में उसकी मुस्कराहट ली। उस मुस्कान पर चाहे जितना बेट लगाने को वह तैयार था।

घुड़दौड़ शुरू हो गई। नंबर पांच और नंबर दो शुरू से ही बाकी घोड़ों को पीछे छोड़कर आगे आगे सरपट दौड़ते आ रहे थे। ये दोनों घोड़े बराबर हवा से बातें कर रहे थे कि यह कहना मुश्किल हो गया कि कौन सा घोड़ा आगे जाएगा। लेकिन फिनिश के निकट आते आते एकाएक नंबर दो की रफ्तार बढ़ गई। लगा, उसके पैर जमीन पर टिकते ही नहीं, वह हवा में तैरता जा रहा है। काले चश्मे वाली की खुशी का ठिकाना न रहा। रूमाल को हिला हिला कर बड़े उत्साह से उछल कूद करने लगी. चीखती चिल्लाती रही। यह लो नंबर दो ने लाइन को पार कर ही दिया। काले चश्मे वाली आनंद में अपना होश हवास भूल बैठी थी। 'थैंक्यू' कहते हुए बिल्कुल अप्रत्याशित रूप से उसने नागराजन का हाथ पकड़कर हिलाया। नागराजन को बिजली का झटका सा लगा। सोचा–यह ग्रैंड रोड वाली ही है, कोई संदेह नहीं। फिर एक अदा के साथ उठी और नागराजन को यह बताकर चली, "अभी पैसा कलेक्ट करके आती हूं।" नागराजन के दिए टिप् से जीतने की वजह से उसने नागराजन को यह बताना अपना फर्ज समझा हो। लेकिन सारंगन का ध्यान उस ओर न था। "बस, आज का खेल आखिरी है। आगे कभी बेट नहीं करूंगा।" यों बुदबुदाते हुए उसने टिकट फाड़कर फेंक दिए।

आगे की दौड़ों के लिए वे तीनों कोरे दर्शक बने तमाशा देखते रहे। हां, सारंगन और रमणी दौड़ते घोड़ों को देखते रहे थे और नागराजन काले चश्मे वाली को। चार बजे रेस खत्म हुई तो सारंगन ने कहा, "चलो भई ! रमणी और सैर करना चाहता है। नागराजन निराश हो गया। काले चश्मे वाली से बिछुड़ने का मन नहीं कर रहा था। उसी समय सारंगन के सुझाव को इंकार करने की हिम्मत भी न हुई। काले चश्मे वाली की तरफ देखकर सिर

हिलाते हुए मुस्कराया, फिर सारंगन और रमणी के पीछे चल पड़ा। काले चश्मे वाली ने सोचा होगा—अव्वल नंबर का बुजदिल है !

तीनों रेसकोर्स के बाहर आए। फिल्म देखने के इरादे से विद्या विहार स्टेशन तक पैदल चले और वहां से वी.टी. तक बिजली की रेल गाड़ी पकड़ी। वी.टी. में जितने थिएटर थे, सब में जाकर कोशिश की। कहीं भी टिकट नहीं मिला।

"एक बात बताऊं?" सारंगन ने कहा, "किसी जगह बैठकर 'बियर' पिएं।"

"कहां पर ?"

"मुझे एक जगह मालूम है।"

"मैं तैयार हूं।" रमणी की आवाज में जोश भरा था। नागराजन की ओर देखा। नागराजन बोला, "ओ-के।"

कोलाबा तक तीनों पैदल चले। सारंगन उन दोनों को एक गली में ले गया। लगभग एक जैसी बहुमंजिली इमारतों में किसी खास इमारत का पता लगाकर सारंगन अंदर घुसा और सामने की तरफ जो दरवाजा था, उस पर दस्तक दी। थोड़ी देर खटखटाने पर नाटे कद का एक जवान दरवाजे का पल्ला जरा सा खोलकर बाहर की तरफ झांका।

"खुला है न?" सारंगन ने पूछा।

"हां!" अबकी बार उसने पूरा दरवाजा खोल दिया। वे लोग घुस गए तो युवक ने दरवाजा बंद करके चिटकनी लगा दी। दीवार के साथ सटाकर रखी स्टील की तीन कुर्सियां ले आया और मेज के पास बिछा दीं।

"तीन बोतल बियर।"

वह जवान बियर की बोतलें और गिलास ले आया। मेज पर उनको सजाकर बोतलों के ढक्कन खोल दिए।

रमणी बोला, "खाली बियर पीने से कोई मजा नहीं आएगा, यार !"

"और क्या चाहिए?"

"व्हिस्की ऑर समथिंग।"

सारंगन ने उस छोकरे को बुलाकर व्हिस्की का दाम पूछा। फिर रम का। रम ही सस्ता था, इसलिए तय हुआ कि 'रम' पी जाए।

तीन पैण्ट रम लेने के बाद बियर और रम को मिलाकर काकटेल बनाया गया। तीनों पीने लगे। काकटेल के रक्ताभ रंग में निराला आकर्षण होता है। उसकी तीखी महक में मन को मस्त करने वाली ठंडक होती है। उसके स्वाद में कोई खास अनोखी बात है जिसको समझना मुश्किल होता है, पर समझने को उकसाने वाला एक स्वाद, मोहक कड़वाहट। पीने का अभ्यास ज्यादा नहीं था, इसलिए एकदम गटक नहीं पाए। बातें करते हुए धीरे

धीरे पी रहे थे। शुरू में उनकी बातें जो छपवाने योग्य थीं, धीरे धीरे सुनने या लिखने लायक भी नहीं रहीं। नागराजन को उस काले चश्मे वाली की याद आई। उसकी आंखें नशे से बोझिल हो गई थीं। लगा, कोई उसके गालों के साथ जोर जोर से चर्रमर्र रगड़ रहा है, गाल पर चिंउटी मारकर खींच रहा है। लगा अब पीना बंद किया जाए। लेकिन अपनी ठाट रखने और बड़प्पन जताने के लिए वह पीता ही रहा। लड़के के हाथ में आठ आने रखकर नमकीन बिस्कुट मंगवाया और थोड़ा सा रम और लाकर गिलास में डालने का आदेश दिया। पहले बिस्कुट खाते हुए पिया। फिर सिगरेट का धुआं उड़ाते हुए।

आधे घंटे के बाद जब वे बाहर आए, तीनों सातवें आसमान पर तिर रहे थे। दिल में गजब का जोश भरा था। दुस्साहस से भरी बेहूदगी। कोलाबा में लगी छुट्टी के दिन की भीड़ भाड़ को, फुटपाथ की दुकानों को देखते हुए चल रहे थे। सड़क पर जो औरतें सामने आतीं, नागराजन जानबूझकर उनसे टकराता हुआ चलता। सारंगन ने उसे रोका। तब नागराजन ने झट उसे अपनी बांहों में कसकर बांध लिया और बुदबुदाया, "नाराज मत होओ डियर।"

कोलाबा में ऊपर नीचे थोड़ी देर घूमते रहने के बाद गेट वे आफ इंडिया तक तीनों पैदल चले। वहां एक बेंच पर बैठे आने जाने वालों को देखते रहे। एलिफेंटा की सैर करके पर्यटकों की एक नौका उसी घाट पर आ लगी। पर्यटक लोग नाव से उतर रहे थे। "दस पैसे में जहाज देखिए साब" की रट लगाता हुआ, गले में, कंधे पर ढेर सारे बैनाकुलर लटकाए एक लड़का उनके पास आ खड़ा हो गया। सारंगन ने कहा,"बिना बैनाकुलरों से जहाज साफ दिख रहा है, भई।"

"जहाज के ऊपर लिखे हुए अक्षरों को देख सकते हैं, साब?"

"उन्हें देखने से क्या फायदा है?"

सहसा नागराजन को मतली आने लगी। दबाने की कोशिश करने लगा, मगर रोक न पाया। उल्टी कर दी। 'कलक-कलक' करके उल्टी हो रही थी। शराब की तीखी दुर्गंध चारों तरफ फैल गई। जहाज का कोई पंछी जो उनके सिर के ऊपर मंडरा रहा था, फुर्र से समुद्र की तरफ उड़ गया मानो यह दृश्य उसके लिए असह्य हो। सारंगन ने रमणी से कहा, "यही इसकी आदत है, बेहद पी लेना और..." सिर थामकर बैठे नागराजन को वहीं छोड़कर वे दोनों सीढ़ियां उतर कर समुद्र के तट पर गए। वहीं पर खड़े खड़े विशाल अरब सागर को देखते रहे जो गोलाकृति सूर्य-बिंब को साबुत निगल रहा था।

जब वे लौटे तो नागराजन बेंच पर लेटा खर्राटे भर रहा था। "अरे यार ! उठो न, उठो उठो !" सारंगन ने उसे जगाया। वहां से एक टैक्सी करके तीनों चौपाटी गए। रास्ते भर नागराजन सोता रहा।

चौपाटी पर भेलपूड़ी, पानीपूड़ी, आलूपूड़ी, वगैरह वगैरह सारंगन और रमणी ने खूब खाया। नागराजन की खाने की इच्छा न रही। उसके मन में यह डर था कि कुछ खाने पर फिर से उबकाई न आ जाए। तीनों समुद्र की रेत पर बैठे ऊंटों और खच्चरों पर सवारी करते लोगों को देख रहे थे, उनमें बच्चे-बूढ़े सभी थे। अंधेरा छा जाने पर मलाबार हिल्स जाकर वहां के एक रेस्तरां में बैठ गए।

रेस्तरां की छत पर कुर्सियां लगी थीं। वहां बैठने पर सारा का सारा बंबई शहर जगमगाता दीख रहा था। भेलपूड़ी स्टालों की गैस लाइटों से लेकर मेरीन ड्राइव के जगमगाते मर्करी लैंपों की कतारों तक साफ नजर आ रही थीं। लेकिन नागराजन की दृष्टि इन नजारों पर नहीं थी। वहीं पास की एक मेज के सामने एक प्रेमी युगल बैठा था जिन्हें अपने चारों तरफ की दुनिया का बिल्कुल ध्यान नहीं था। एक दूसरे में खोए हुए थे वे। नागराजन की दृष्टि में यही युगल महत्वपूर्ण लग रहा था। शायद कुछ दिनों के बाद वह अपनी पत्नी को इसी रेस्तरां में ले आएगा। सहसा उसे उस काले चश्मे वाली की याद आई। अनायास ही हाथ में आई किसी चीज को खो देने के दुख और अकुलाहट से उसका दिल भरा हुआ था।

रेस्तरां से वे तीनों बाहर निकले। मलाबार हिल्स के हर बस स्टैंड पर बस के लिए इंतजार करने वाली सवारियों की भीड़ थी; छुट्टी का दिन जो था। लाचार होकर तीनों बिजली की गाड़ी के लिए ग्रैंड रोड स्टेशन की ओर चल पड़े। नागराजन नशे में धुत्त था, अंटसंट बकता और बड़बड़ाता चल रहा था। नावल्टी थिएटर के पास आते ही एकाएक वह रुक गया। ओह ! कितने आश्चर्य की बात है ! थिएटर के द्वार पर कहीं और देखती हुई वही काले चश्मे वाली खड़ी थी, मिस...आवाज देता हुआ नागराजन उसकी तरफ लपका। झट से पकड़कर सारंगन और रमणी बड़ी मुश्किल से उसे स्टेशन तक घसीटते ले गए और उसे रेल में बिठाया। रास्ते भर अपने प्रति किए गए इस जबरदस्ती के खिलाफ झुंझलाता, अशक्त आक्रोश भरी दृष्टि से सारंगन की ओर घूरता हुआ, सारंगन की नजर में परिहास का पात्र, तथा डिब्बे में बैठे अन्य लोगों के लिए दिलचस्प 'शो पीस' बना बैठा था नागराजन।

साढ़े दस बजे वे माटुंगा पहुंच गए। सारंगन और रमणी उसे उसके मकान के द्वार तक ले आए। सारंगन ने पूछा, ''अब तुम खुद ही चलोगे या मैं कमरे तक पहुंचा दूं? नागरजन को लगा कि उसकी आवाज में व्यंग्य और उपेक्षा थी। मित्रता के लिए और समय काटने के लिए नागराजन उसी पर निर्भर है, इस भावना से उत्पन्न उपेक्षा...यह अपनी तनहाई की समस्या के लिए खुद कोई हल ढूंढने में असमर्थ है, इस भावना से उत्पन्न अवहेलना!

"तुम चले जाओ...आई विल मैनेज।" नागराज ने कहा। वे दोनों चले गए।

सीढ़ियों पर धीरे धीरे चढ़कर नागराजन अपने कमरे में पहुंच गया और थका मांदा

खाट पर निढाल हो गया। सारंगन के साथ बड़े जतन से एक और इतवार को ढकेल दिया है उसने। इस बात पर उसे संतोष अनुभव हो रहा था। साथ ही यह ख्याल भी उभर आया, क्यों सारंगन के बिना वह इतवार का दिन नहीं बिता सकता? सारंगन और वह दोनों एक दूसरे के पूरक थे। जिस तरह उसे सारंगन की जरूरत थी वैसे ही सारंगन को उसकी थी। यों कहना चाहिए कि सारंगन को एक ऐसे शख्स की जरूरत थी जो उसके अहं को ठेस पहुंचाए बिना उसे अविकल रूप से अपनाए और उसकी तनहाई को दूर करे। अपने साहसिक कारनामों और क्षमताओं की प्रशंसा करने वाले एक आराधक की आवश्यकता थी उसे। वे दोनों इस तरह की अपेक्षाओं को हमेशा नहीं तो कभी कभी, पूर्ण रूप से नहीं तो एक हद तक पूरा करते थे।

शादी के बाद सारंगन की जरूरतें उसकी पत्नी के साहचर्य में पूरी हो जाएंगी; उसका अधूरापन पूर्ण हो जाएगा। अब सारंगन की मेहरबानी के बिना छुट्टी के दिन बिताने का अभ्यास करना होगा। नागराजन ने सोचा—अगले इतवार को सवेरे बाल कटवाने जाना है। फिर भोजन करके किसी मैटनी शो देखने जाएं तो एक दिन गुजर जाएगा। वह या तो सीधे अम्बि के यहां जा सकता है, नहीं तो घुड़दौड़ में जाकर एक जैकबाट टिकट लेकर वहीं बैठा रह सकता है। वहां पर उस काले चश्मे वाली से मुलाकात हो सकती है या उसके जैसी किसी और से। किससे, यह बात महत्वपूर्ण नहीं है। अपने व्यक्तित्व को खोकर ही तनहाई मिटानी है तो उसके लिए शाश्वत रूप से संबंधी या मित्रता बनाए रखने की क्या जरूरत है? स्नेह संबंध और समझौते में स्थाई रूप से बंधना किसलिए? समय और परिस्थिति के अनुसार जब तब जुड़नेवाले रिश्ते—बिना किसी शर्त के जुड़ने वाले रिश्ते—पर्याप्त हैं ; बल्कि ऐसे रिश्ते ही बेहतर होते हैं। ताश के खेल की सरगर्मी, घुड़दौड़ या खेल के मैदान का शोरगुल और कोलाहल, थिएटर का अंधकार, साथ में बैठी रूपसी की क्षणिक मुस्कान से सब एक स्थाई आकार या अनिवार्यता के बिना घटित होने वाले हैं। इन चीजों में अपने व्यक्तित्व को वह गिरवी रख दे तो आसानी से इनसे छूट भी सकता है। ये रिश्ते घर तक साथ नहीं देते न ही यह पूछते हैं, "क्या मैं तुम्हारे कमरे तक आऊं?" सोमवार की सुबह दफ्तर में फोन कर नहीं पूछते, "रात को नींद आई कि नहीं।" इस तरह सवाल करके उसकी खोई हुई खुदी की याद नहीं दिलातें, उसे एहसास नहीं होने देते कि हमेशा के लिए वह अपनी खुदी को गंवा चुका है।

गोरा चिट्टा, लंबे कद का, बिना मूंछों वाला

गोरा चिट्टा, लंबे कद का, बिना मूछों वाला—अपने होने वाले पति की यह धुंधली सी छवि, अभी कुछ दिनों से, नीला के हृदय पट पर अक्सर उभरने लगी है।

उम्र बाईस साल की; विवाह योग्य कन्या। धर वाले बड़ी मुस्तैदी से वर ढूंढ़ने में लगे हैं—जन्मपत्री, कुल-गोत्र, वेतन-हैसियत का विचार हो रहा है। वर की तलाश में उनकी दौड़धूप, चिंता, स्वयं उसके प्रति स्नेह-ममता सबकुछ उसे अच्छा लगता है। किंतु फिर भी उसके जवान दिल में अपने भावी पति के बारे में कुछ अकांक्षा-अभिलाषा हो सकती है, इसके बारे में उसके मां-बाप ने कभी कुछ सोचा है? साथ ही उसे यह संदेह भी हो रहा था, अगर पूछा जाए तो क्या वह अपनी राय निश्चित और नपे-तुले शब्दों में प्रकट कर सकती है? बड़ों के विचार और मत जिस मात्रा में सुदृढ़ और सघन सत्य पर आधारित होते थे, उसके विचार उतनी ही मात्रा में कमजोर होने के अलावा अनबूझ पहेली-से लगते थे, यह भी डर बना रहता था कि सुननेवाले कहीं हंसी में न उड़ा दें।

उसके सपनों का राजकुमार गोरे रंग का था। इतना गोरा चिट्टा कि आंखों को चौंधियाने वाली ललाई नहीं, बल्कि जरा हल्की ललाई मिली गौर आभा जो आंखों को ठंडक पहुंचाए। वह लंबे कद का था नीला से एक दो इंच ऊंचा। इतना ऊंचा कि वह आराम से उसकी छाती पर अपना मुखड़ा लगा ले। लाज से झुकी हुई उसकी पलकें जरा ऊंची उठती तो उसे हर्षित पुलकित करने वाला डील डौल। भव्य आकृति। बस सब से अहम और आखिरी बात यह थी कि उसके सपनों में जो राजकुमार आता है, उसकी न दाढ़ी थी न मूंछ। सफाचट दाढ़ी बनाया हुआ चिकना, स्निग्ध, मासूम चेहरा।

उस युवक के साथ साथ सपनों में वह अपने जाने पहचाने और अनजाने अपरिचित स्थानों पर, बार बार घूमती फिरती थी। युगल जोड़ी के रूप में वे न जाने कितने सुंदर दृश्य देखते, बातें करते, आनंदित होते रहे। लेकिन सपनों का वह सुंदर युवक, जितना निकट का, आत्मीय-सा लग रहा था, उतना ही वह उससे दूर और उसकी पहुंच के बाहर भी लग रहा था। उसे इस बात का भी एहसास होने लगा कि वह जितना उसके बारे में जानने का दावा करती है, उतना ही अनजान है। लहरें मारते जल-विस्तार की सतह पर थिरकता टेढ़े मेढ़े आकार का बिंब है वह। फुर्र से निकलती बस की खिड़की में लक्षित

हुआ था वह मुखड़ा फिर झट से ओझल हो गया। उसने देखा भी था और नहीं भी देखा था।

नीला एक सरकारी दफ्तर में काम करती थी—क्लर्क थी। उसके दफ्तर में बहुत से नौजवान थे। क्यों उसी के अनुभाग में एक था। लेकिन उसकी दृष्टि में सभी बिल्कुल मामूली थे—"चीप फेलोज"। उसके जैसे अनमोल रत्न को पहचानने, उसके महत्व को समझकर संभाले रखने में असमर्थ हैं। ऐसे घटिया किस्म के लोगों से उसका उद्धार करने के लिए ही उसके सपनों के राजकुमार ने अवतार लिया है।

ओ ! मेरे प्रियतम ! तुम कहां हो? मैं जो गाने सुनती हूं, पत्रिकाएं पढ़ती हूं, फिल्में देखती रहती हूं, उन्हें तुम भी सुनते, पढ़ते देखते रहते हो? मेरे साथ सड़कों पर चलते, पोस्टरों पर नजर दौड़ाते, टैक्सी स्कूटर में सफर करते, बसों में चढ़ते उतरते, खुशबूदार तेल, टूथ पेस्ट का उपयोग करते, जो कोल्ड ड्रिंक मैं पीती हूं, तुम भी पीते रहते हो। मुझ पर आघात करती ध्वनियों, आत्मविभोर करने वाली सुगंध की लहरों, रोमांचित करने वाले दृश्यों को तुम भी अपने अंदर अनुभव करते हो। कड़ी धूप में पसीने से तर होते, ठंडी हवा में सिहरते, बरसते पानी में और छिटकती चांदनी में भीगते, मेरे ही समान सपनों का आनंद लूटते हुए, हे प्रिय, बताओ तुम कहां हो? आ जाओ न! आ जाओ! मेरे प्रिय! मुझे अपना बना लो। मुझे बचाओ। मेरे इर्द गिर्द, चारों तरफ घिरे हुए इन लोगों से, दम घोटने वाले इस माहौल से मुझे बचाओ। हां ! सच कहती हूं। मुझे, मुझे स्वयं अपने से बचा दो।

उत्ताल तरंगों सी उठती, गरजती भावनाएं। उद्वेलित सागर सा बलखाता हृदय।

हर दिन, सुबह बस स्टैंड पर एक लंबी क्यू का एक अदना सा अंश बन कर खड़े होते समय उसके हृदय को एक अकथनीय उदासी और अकुलाहट घेर लेती। मन में विचार उठते—"लो ! आज फिर बस स्टैंड पर आ खड़ी हो गई हूं। बस में दफ्तर जाने वाली हूं। हां ! उबा देने वाले जाने पहचाने इन्हीं चेहरों को देखते हुए।" सड़क पर तेज रफ्तार में चलती मोटरें, स्कूटर और बसों को उसकी विह्वल दृष्टि पीछा करती रहती। कुछ ढूंढ़ती, तलाशती, भटकती रहती। बस में सफर करते वक्त बस को ओवरटेक करने के लिए तेज रफ्तार से उड़ते वाहनों को, उनमें बैठे हुए व्यक्तियों को; उसकी दृष्टि, सहेजती, सहलाती। ये मोटरें, स्कूटर, उधर दिखने वाले वे पोर्टिको, पार्किंग स्थान, बहुमंजिली इमारतें और खिड़कियां—इनसे भरी दुनिया में ही उसके सपनों का राजकुमार निवास करता है। यही उसकी दुनिया है। यह दुनिया, इन बस स्टैंडों की क्यू की कतारों, टिफिन के डब्बों से दूर, कोई और दुनिया है। लंबी कतारों, खचाखच भरी बसों की भीड़ में वह, जो चिरकालीन बंदी बन चुकी है उसे न जाने वह सपनों का राजकुमार, कैसे, कब पहचान पाएगा? यह ख्याल आते ही वह ठंडी आह भर लेती।

कल दफ्तर के क्लब से एक पत्रिका ले आई थी। उसके आखिरी पृष्ठ पर छपे एक विज्ञापन में एक युवक, उसी की जैसी एक युवती के गले में एक हाथ डाले, दूसरे हाथ में सिगरेट लिए बड़ी शान से खड़ा था। देखने में यह भी उसके सपनों के राजकुमार से मिलता जुलता था। सिगरेट, शेविंग लोशन, खुशबूदार तेल इत्यादि के विज्ञापनों में आते शानदार युवकों से बातें करने का अवसर उसे मिलता तो कितना अच्छा होता! ये सब उसके सपनों के राजकुमार के दोस्त होंगे। शायद इनको उसका अता पता मालूम होगा।

फिर दफ्तर। दफ्तर में आते ही समाचार पत्र को कुप्पुस्वामी की मेज पर रखकर हाजिरी रजिस्टर पर हस्ताक्षर करती और अपनी सीट पर जा बैठती। सेक्शन में कुछ लोग उसके पहले ही आए हुए होंगे। दूसरे लोग एक एक करके आ बैठते। फिर उस दिन का काम शुरू होता। रात भर जो कमरा एकदम खामोश और नीरव-निस्तब्ध रहा, पर्दे के हटते ही सजीव और सक्रिय होने वाले रंगमंच की भांति सजग हो जाता। चहल पहल मच जाती। स्वर, आवाजें, पदचाप, चलने फिरने से उठती ध्वनियां—चलते, खड़े होते और बैठते हुए लोग। इन सबको एक दूसरे से जोड़ने वाली अचेतन वस्तुएं। खट खट करते टाइपराइटर, चरमराते कागज के पन्ने, इन कागजों पर, अपने सुनील रुधिर से, अक्षरों को अंकित करती लड़खड़ाती, घिसती, रगड़ती कलमें, ट्रिंग-रिंग-रिंग करते अपने अस्तित्व को बार बार बड़े गर्व से घोषित करने वाले टेलीफोन, घड़ाघड़ मेज पर पटके जाने वाले, फटफटाफट से खोले जाने वाले रजिस्टर, धड़ाम से खुलती, बंद होती मेज की दराजें, अलमारियां; फर्श पर चर्र चर्र...से घिसती कुर्सियों की चरमराहट, दीवारों पर चलती हवा में मर्मराते कैलेंडर के पन्ने, देश का नक्शा, इस तरह परस्पर टकराती, घुलती मिलती, बेमेल लगती, मेल खाती, असंगत लगती ध्वनियां, आवाजें।...

ऐसे नीरस माहौल में, इन्हीं आवाजों के बीच, बिना किसी बदलाव के, इन्हीं परिचित चेहरों के बीच वही रुटीन कामकाज में उलझती हुई..छिः, काम ऐसी मनहूसियत से भरा, तिस पर ऊपर से रोब दाब ! जल्दीबाजी ! "मिस नीला ! आर.वी. गोपलन के तबादले का आर्डर डिस्पैच हो गया?" "मिस नीला ! पि. एन. (पेंशन) की नई फाईल खोलनी है, अगला नंबर कौन सा है?" इस तरह के प्रश्न ! प्रश्न ! केवल प्रश्न ! जब वे लोग प्रश्न नहीं पूछते तब वह अपने आप से प्रश्न करती—मिस नीला ! अरी ! तुम अब तक पागल क्यों नहीं बनी? मिस नीला ! तुम किसलिए, क्यों, इस कमरे में, इस कुर्सी पर बैठी हो? मिस नीला ! तुम्हारा इन लोगों से क्या वास्ता है?

अलग अलग किस्म के लोग। रुचियां, व्यवहार, मनोभाव, काम करने का ढंग सब में भिन्न भिन्न। किसी निश्चित निर्धारित वृत्त में किसी खास स्तर पर चक्कर काटने वाले लोग...नीरसता और बोरियत ढहाने वाले लोग।

पूरे अनुभाग में सबसे बुजुर्ग थे दण्डपाणि। माथे पर विभूत। मुंह में तंबाकू। चेहरे पर स्थाई भाव के समान विराजती चिड़चिड़ाहट। लड़कियों का पढ़ना लिखना, दफ्तरों में काम करना आदि पर उनके अनुकूल विचार नहीं थे, अतः इस तरह बर्ताव करते थे कि दफ्तर में नीला नामक किसी लड़की की मौजूदगी का उन्हें भान ही न हो। सेक्शन के अन्य कर्मचारी दफ्तर में नारी की उपस्थिति का ख्याल करते हुए जिन शब्दों को मुंह में लाने से हिचकिचाते, जिन प्रसंगों की चर्चा करने से कतराते, ऐसे ऐसे 'टापिक' पर धड़ल्ले से, खुल्लमखुल्ला छानबीन करने से वे बाज न आते। नीला को लगता था कि जानबूझकर उसको नाजुक स्थिति में डालने के इरादे से बिना झिझक वे ऐसी बातें बोलते हैं।

कुप्पुस्वामी एक और किस्म के थे। वे अनुभाग में पत्रिकाओं का क्लब चलाते थे। दरअसल वे स्वयं चलता फिरता अखबार थे, आठों पहर 'मैटर' की खोज में मारा मारा फिरता अखबार। चपरासी परांकुशम की जोरू के पैरों में दर्द हो जाए तो उसके निवारण के लिए क्या करना है? गणपतिरामन के बेटे ने हाई स्कूल की पढ़ाई पूरी की है, अब आगे वह क्या करे? अमेच्यूर एक्टर श्रीनिवासन कौन कौन से यूरोपीय अभिनेताओं की नकल करे, अक्सर देर से दफ्तर आने वाले केशवन अपनी दिनचर्या में कौन कौन सा परिवर्तन कर ले इत्यादि बातों पर वे बिना मांगे ही सलाह देते रहते। नीला से भी वे बातें करते। लगता है, आज जरा पहले ही आ गई हो...यों बड़ी आत्मीयता से बोलने लगते। नीला मन ही मन झल्लाकर रह जाती। दण्डपाणि दब्बू किस्म के थे तो कुप्पुस्वामी मुंहफट व गुस्ताख थे।

गणपतिरामन, श्रीनिवासन, केशवन, परांकुशम, इन सब से उसे नफरत थी, अलग अलग बिना पर। गणपतिरामन हमेशा उसके काम पर गलती निकालता रहता, जैसे किसी छोटे बच्चे की उंगली पगड़ के 'अ, आ' लिखना सिखाते हैं, वैसे हर बात को 'अथ' से 'इति' तक समझाते रहना उसे पसंद नहीं था। दफ्तर के कामकाज के सिलसिले में श्रीनिवासन द्वारा 'मिस नीला !' का संबोधन और 'इफ यू डोंट माइंड' 'काइंडली' जैसे शब्द-प्रयोग में शिष्टाचार की अपेक्षा नाजुक व्यंग्य का पुट था। केशवन का बड़े आदमी जैसा रोब जमाना किसी की भी परवाह (इसमें नीला भी शामिल है) न करने का उसका रुख नीला को कतई पसंद नहीं था। चपरासी परांकुशम की बात भी कुछ ऐसी ही थी। वह अक्सर फाइलों और रजिस्टरों को जानबूझकर उसकी मेज पर जोर से पटक देता। नीला को लगता था कि वह फाइलों को उसके मुंह पर फेंक रहा है। बरामदे से गुजरते समय नीला को लगता था कि परांकुशम दूसरे चपरासियों को उसके बारे में कोई गंदी मजाक सुना रहा है।

अनुभाग का कोई भी व्यक्ति उसे पसंद नहीं था। इनमें से सबसे ज्यादा नापसंद कोई था, तो वह केशवन था। अनुभाग के लोगों द्वारा उसे 'लाड़ला' माना जाना, उन लोगों द्वारा

उसे यों सिर परा चढ़ा रखना और जरूरत से ज्यादा उसकी तारीफ का पुल बांधना उससे बर्दाश्त नहीं हो पाता था। उसका ख्याल था कि इन लोगों की लल्लो चप्पो भरी बातों से ही इसका दिमाग चढ़ गया है।

—"लकी फेलो सर, नो कमिट्मेंट्ज, नो वरीज (बड़ा भाग्यवान है, जी। कोई पारिवारिक जिम्मेदारी नहीं, कोई चिंता नहीं। मस्त है।)।"

—"केशवन, महीने में तुम कितनी फिल्में देखते हो?"

—"अकेले ही देखते हो या किसी स्वीट कंपनी के साथ?"

—"आज के नौजवानों का क्या कहना, सर! जब हम जवान थे, आप ही बताइए, हमने क्या एनज्वॉय किया था?"

केशवन की जवानी और स्वच्छंद प्रवृत्ति का प्रशस्ति-पाठ था यह। अपने अतीत के रूप को अब उसमें आरोपित करके आनंदित होने का प्रयत्न था यह। कभी कभी नीला को इस बात पर ईर्ष्या होती थी। जो आदर, स्नेह, और विशिष्ट स्थान उसे नहीं मिला था, वह सब केशवन को मिला है, यह बात नीला के दिल में खटकती। ऐसे मौकों पर अपने दिल की जलन और खीझ कहीं प्रकट न हो जाए, इस ख्याल से वह बड़ी मुश्किल से अपने चेहरे को बिल्कुल तटस्थ रख लेती, मानो यह जताना चाहती हो—मुझे इन सब बातों से कोई मतलब नहीं है।

एक दिन शाम को जब कुप्पुस्वामी केशवन से बातें कर रहे थे, नीला कुछ ऐसे ही लापरवाही जता रही थी।

कुप्पुस्वामी ने केशवन से पूछा, "अरे! अपनी भावी पत्नी किस तरह की हो, इसके बारे में तुम्हारा क्या विचार है?"

"किस तरह की हो माने?" केशवन ने पूछा।

"यही कि खूबसूरत हो...या..."

"बताइए, कौन ऐसा होगा जो न चाहे कि अपनी बीवी खूबसूरत हो।"

"बड़ी खूबसूरत हो तो फिर संभालना भी मुश्किल है, भई।"

केशवन खिलखिलाकर हंस पड़ा। बोला, "सर, मुझे इस बात पर आप जैसा अनुभव नहीं है।"

नीला को लगा कि यह कहते कहते केशवन की दृष्टि अपनी तरफ लगी थी। लेकिन इसे निश्चित रूप से जानने के लिए उसकी तरफ देखने का साहस भी उसमें न रहा।

उस दिन घर लौटते ही उसने सबसे पहला काम यही किया कि सीधे आईने के सामने जाकर खड़ी हो गई और अपने चेहरे को एक बार खूब देख लिया। हां! यह जानने के लिए कि केशवन की निगाह के सामने आया उसका शाम का मुखड़ा कैसा था। उस चेहरे

पर थकान थी। पसीने से वह तर था। हां...धूल की हल्की सी परत भी जमी थी उस पर। चमक और जोश से रहित निस्तेज था वह चेहरा।

यही उसका असली चेहरा है क्या? इसी मुखड़े को केशवन खूबसूरत समझ बैठा है?

लेकिन अगले ही क्षण सोचने लगी, छिः, मै काहे को फिक्र करने लगी। उसकी नजर में मेरा चेहरा जैसा भी रहे, इसमें मेरा कौन सा हर्जा हो रहा है? वह मेरे बारे में कुछ भी सोच ले, रत्ती भर भी परवाह नहीं करती।...वह उसे भूलने की कोशिश करने लगी।

किंतु अगले दिन दफ्तर जाने के लिए तैयार होते वक्त, अन्य दिनों के विपरीत बड़े ध्यान से अपने को सजाने लगी। अपने आप से कहा कि यह सब साज सज्जा उस केशवन के लिए नहीं है, उसके माध्यम से अपने आप को तृप्त करने के लिए है। सोचा—उसकी उदासीनता और बेरुखी के कवच को भेदकर, उसके चित्त को चंचल करके, उसके ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करके, अपनी विजय का सिक्का जमाने के लिए है यह सब। यह ख्याल आते ही उसके चेहरे पर मुस्कराहट चमक उठी। उस दिन बस में सफर करते वक्त उसके चेहरे पर मुस्कराहट की लहरें उठती और मिटती रहीं।

अनुभाग में प्रवेश करते समय उसने देखा, केशवन की कुर्सी खाली पड़ी थी। हाजिरी बही पर दस्तखत करने के बाद अपनी सीट पर बैठते हुए उसने सोचा कि क्या आज वह 'गोल' हो गया है।

लेकिन वह 'गोल' नहीं हुआ। पौने ग्यारह बजे आया। देर से आने के अपराध बोध से पीड़ित सा, कुर्सी पर बैठते ही, फाइलें खोलकर काम में लग गया।

नीला ने अपना हाथ ऊपर उठाकर केश पर सजाए फूलों को ठीक कर लिया। इस हरकत में उसकी चूड़ियां खनखना उठीं। लेकिन केशवन ने सिर न उठाया। तब उसने हाथ की पेंसिल को यों फर्श पर गिरा दिया कि वह मेज के उस तरफ चला जाए। उसे उठाने के बहाने वह कुर्सी से उठी। "चर्र चर्र" करती आगे बढ़ी , झुककर पेंसिल उठाई, "क्लिङ्...क्लिङ्"...ऊंहूं... फाइलों पर झुकी केशवन की नजर ऊपर उठी ही नहीं। नीला झल्ला उठी। आज अपनी तरफ उसका ध्यान आकर्षित करना नीला के लिए बेहद अहम बात हो गई थी और इज्जत का सवाल बन गया था। वह सोचने लगी, अब क्या करें? एक रजिस्टर को नीचे गिरा दूं? इतने में श्रीनिवासन ने आवाज दी, "मिस नीला ! इफ यू डोंट माइंड एक पत्र का मिलान करना है।"

नीला अपनी कुर्सी से उठी। केशवन की मेज से बिल्कुल निकट से, साड़ी को सरसराती हुई, चूड़ियां खनखनाती हुई, पाउडर की खुशबू बिखेरती (आज उसने जरा ज्यादा ही पाउडर लगाया था), गुजरती हुई श्रीनिवासन की मेज पर पहुंची। केशवन की कलम पल भर के लिए रुकी। नीला को महसूस हुआ कि वह सिर उठाकर उसकी ओर देख रहा है। "देख

लो ! अच्छी तरह देख लो" मन ही मन कहती हुई वह श्रीनिवासन के पास पड़ी खाली कुर्सी पर बैठी और उनसे चिट्ठी का मसौदा लेकर पढ़ने लगी। श्रीनिवासन टाइप किए हुए ओरिजनल लेटर को हाथ में लिए मिलान करने लगे। वह चिट्ठी पढ़कर सुना रही है, इसकी पूरी चेतना के साथ वह उसे पढ़ रही थी। उसकी मीठी, मधुर आवाज, सही लहजे के साथ शुद्ध उच्चारण रूखी सूखी दफ्तरी चिट्ठी को पढ़ने में यों व्यर्थ हो रहा था, यह बड़े दुर्भाग्य की बात थी। मगर केशवन सुन रहा है इसी ख्याल ने उसमें निराली मस्ती और उमंग भर दी थी। चिट्ठी पढ़कर सुनाने के बाद वह फिर से अपनी कुर्सी पर लौट आई और केशवन की तरफ देखा। ऐसा महसूस हुआ कि केशवन ने उसकी तरफ लगी अपनी नजर झट से हटा ली। तब तो...क्या वह इतनी देर उसी पर नजर लगाए बैठा था? वह गर्व से फूल उठी। उस दिन कोई खास काम न होने पर भी वह सेक्शन में इधर उधर चहलकदमी करती रही। केशवन की आंखों को बार बार अपनी तरफ खिंचते देखकर उसके दिल में बड़ी तसल्ली और आनंद का अनुभव हुआ। सालाना मालगुजारी और नजराना भेंट किए बिना कन्नी काटते किसी पड़ोस के सामंत नरेश को वश में लाकर उस पर अपना प्रभुत्व जमा देने की तृप्ति हो रही थी। और भी बड़े बड़े राजा महाराजाओं पर धावा बोलने की तैयारी में परीक्षण के तौर पर किए गए छोटे से धावे में प्राप्त विजय थी यह।

उस दिन शाम को कनॉट प्लेस कफे में अपने दोस्तों के साथ बैठे काफी पीते वक्त फिर एक 70 एम.एम. थिएटर में पैना विजन के बिंबों को स्टीरियोफोनिक पार्श्व संगीत के साथ देखते वक्त केशवन के दिल पर रह रहकर नीला की छवि उभरती रही। सोचा—आज तो लग रहा था बहुत ही ज्यादा कुलबुलाती रही...मुझे न जाने क्या क्या जताना चाहती थी...यह मेरा भ्रम तो नहीं है? शायद उसे मुझ से प्यार व्यार सा तो...?

यह ख्याल आते ही उसके चेहरे पर मुस्कराहट खिल उठी। दया और दरियादिली से भरी मुस्कान..."हाय बेचारी" जैसा भाव। सोचा—'इसमें उस बेचारी का क्या दोष?' मैं वाकई बड़ा आकर्षक हूं न? दैट इज द ट्रबल। सहसा उसे नीला के अंग्रेजी उच्चारण की याद आ गई। इससे उसकी मुस्कराहट और फैलती गई। मन में कहा—'सिली प्रॅनन्सिएशन!' उधर सामने पर्दे पर अभिनेत्री आड्री हेब्बर्न बड़े लुभावने ढंग से मासूम बच्ची की तरह मुस्करा रही थी। केशवन को उसे अपनी बांहों में भरकर चूमने की इच्छा हो रही थी। सिनेमा थिएटर से निकलकर, सिगरेट का धुआं उड़ाते हुए चलते वक्त वह केशवन नहीं रहा। इस देश में नहीं था वह। पीटर ओडूल के रूप में न्यूयार्क की सड़कों पर चल रहा था। सामने से निकलने वाली महिलाओं के मुखड़ों पर वह आड्री हेब्बर्न को ढूंढ़ता रहा। उसकी सबसे प्रिय अभिनेत्री आड्री हेब्बर्न थी। दूसरे स्थान पर 'सोफिया लॉरन्', उसके बाद 'शेर्ली मकलेन'...

अपनी भावी पत्नी का जो काल्पनिक रूप उसके हृदय पटल पर अंकित था, वह इन सब प्रिय अभिनेत्रियों की छवियों में से थोड़ा थोड़ा अंश निकालकर बुना गया था। साड़ी और टूथ पेस्ट के विज्ञापनों में आनेवाली रूपसियों के सौंदर्य का हल्का हल्का पुट भी उस काल्पनिक रूप में मिला था। कनॉट प्लेस के फुटपाथों पर देखे कुछ मुखड़े, कुछ मस्त भरी चालों की अदाएं, हंसी, मुस्कानें, चंद अभिनय आदि भी उसकी काल्पनिक रूपसी में घुला मिला था। इन विभिन्न छोटे मोटे अंशों की अस्पष्ट रेखाओं को मिलाकर एक अकार दिया जाए तो शाायद उसकी मनचाही रूपसी की झांकी उसे मिल जाए। लेकिन उसने अभी तक इसकी कोशिश नहीं की। हां, उसे अपनी अस्थिरता अच्छी लगती थी। जिंदगी के गुजरते हुए क्षणों में जो जो सौंदर्य आंखों के सामने आ जाते थे, उनकी उपासना में किसी बंधन के बिना स्वेच्छा से अपने आप को लुटा देने की उसकी स्वच्छंद प्रवृत्ति ने उसे खुला छोड़ दिया था। यह उसे अच्छा भी लग रहा था। एक विशिष्ट बिंब का क्रीत दास बनकर अपना नजरिया, अपने विचार और आदर्श आदि को सीमित करने की इच्छा नहीं हो रही थी। "मुहब्बत एक इंसान की जिंदगी भर की अटूट और अथक तलाश है" यह रोमांचकारी विचार उसे बेहद अच्छा लग रहा था। भले ही उसके मां बाप किसी ऐसी लड़की को जिसे थोड़ा बहुत गाना आता हो, दोसा का आटा पीसना आता हो, बहू मान लें। लेकिन उसके लिए जिंदगी केवल दोसा और कढी नहीं है। पुंसवन सीमंत और लोरियां नहीं है जिंदगी। वह तो इन सब से परे, इन सबसे कहीं ऊंची बात है। संभव है, ऐसे उन्नत शिखरों तक की पहुंच उसके वश के बाहर की बात हो सकती है; ऐसे शिखर जिन तक शायद वह पहुंच ही न पाए। वह अलग बात है। लेकिन उसे इन ऊंचाइयों तक पहुंचने की अपनी धुन को, अपनी अजादी को बचाकर सुरक्षित रखना है। यह सबसे बड़ी अहम बात है।

उसने मन ही मन कहा, "मिस नीला ! अगर तुम सचमुच मुझसे मुहब्बत कर रही हो तो लगता है तुम अपना समय बरबाद कर रही हो।"

अगले दिन से दोनों अपनी अपनी भावनाओं को छिपाते हुए परस्पर एक दूसरे पर तवज्जह देने में लग गए। अर्थात एक दूसरे की निगरानी करने लगे। केशवन मेरे सौंदर्य पर आकृष्ट हो रहा है क्या?—नीला यह जानने की कोशिश में थी। केशवन यह जानना चाहता था कि इस लड़की के मन में मेरे प्रति आदर है कि नहीं? असल में दोनों इस भ्रम में थे कि अपनी इस हरकत का अगले को कोई पता नहीं है। दोनों ही इस बहकावे में थे कि मैं जो निगरानी कर रहा हूं प्रतिपक्ष को इसका पता नहीं है और स्वयं को बचाकर सामने वाले पर असर डालने में मुझे कामयाबी मिल गई है। इस विचार से दोनों को हर्ष और उल्लास हो रहा था। अपने इस विजय-गर्व से उल्लसित नीला के पास कितने कितने रंग और डिजाइनों में साड़ियां है, इसे पहली बार केशवन ने ईजाद किया। केशराशि के

अंदर कानों को छिपाने की उसकी अदा, आंचल से उदर भाग को छिपाते हुए, किनारे को कंधे के साथ सटाए हुए साड़ी पहनने की नजाकत, उसकी बोली में बच्चों की सी हल्की सी तुतलाहट, उसकी आंखों की चमक में वह मासूमियत और नादानी आदि आदि को वह बड़ी बारीकी से देखने लगा था।

केशवन ने सोचा कि अपना ध्यान अकृष्ट करने के लिए नीला जी-जान से कोशिश कर रही है। मैं कहां ऐसे चक्करों में आने वाला हूं —यों मन में सोचता हुआ केशवन उसकी हर हरकत पर ध्यान देता हुआ गौर से उसे देखता रहा।

नीला ने सोच—"दिन में कम से कम बीसियों बार केशवन मेरी तरफ देखता रहता है।" अपनी खूबसूरती अैर मोहक सौंदर्य की तरफ आकर्षित एक अदना से भक्त की तरफ से अर्पित पुजापे के रूप में, इसका तिरस्कार किए बिना उसने मौन रूप से उसे स्वीकारा था। हां—अपने सपनों के राजकुमार से मिलते वक्त अपने इस छोटे से भक्त के बारे में बताकर हंसेगी वह। केशवन जितना उसकी तरफ देखता, घूरता रहा, उतना ही अपने सपनों के राजकुमार के प्रति उसकी आशा और विश्वास पक्के होते गए। अपनी खूबसूरती की धाक कैसी बंधती जा रही है, यह तो उसे साफ मालूम हो गया। हां ! एक बार उसकी तरफ आंख उठाकर देखने वाला, फिर से अपनी ओर खींचनेवाला, चकित करने वाला सौंदर्य है उसका। उसका यह अद्भुत रूप, शारीरिक सौंदर्य, मादक छवि सब कुछ उसका अपना है। उसके सपनों का वह राजकुमार कभी उसे ठुकरा न पाएगा। ओह ! वह कितना भाग्यवान है?"

अनुभाग के अपने सहकर्मियों के प्रति उसका गुस्सा धीरे धीरे कम होने लगा। क्योंकि उनके सवालों का जवाब देते समय, किसी न किसी काम पर उनके पास जाते समय वह सचमुच केशवन से ही बातें करती थी, उसी के लिए इधर उधर चलती फिरती थी। अपने चारों तरफ की दुनिया का यथार्थ एकाएक उसकी दृष्टि से ओझल हो गया। अपने सपनों के राजकुमार के साथ जिस दुनिया में वह विचरती रही, वही अब उसकी अपनी दुनिया बन गई थी।

हां...अब केशवन की दुनिया भी बदल चुकी है। सहसा उसे अपनी अहमियत का एहसास हुआ। अपने खास व्यक्तित्व का अनुभव हुआ। वह जो गैलरी में बैठे ताली बजानेवालों में एक था, किसी अभिनेत्री के असंख्य उपासकों में एक बना रहा था, फुटपाथों और सड़कों पर चलती हुई कोमलांगी परियों की तिरछी नजरों, बांकी चितवनों से बिखरती रंग रंगीली बूंदों को चुन चुनकर बटोरने वाले कमजोर दिलवालों में एक था। आज उसे ऐसा लग रहा था कि एकाएक वह उस गुट से अलग हो गया है। अब तो वह अपने दिल में महसूस करने लगा था कि केवल उसी एक के लिए, उसकी रसिकता को आनंदित करने

के लिए एक सौंदर्य, हर दिन उसकी आंखों के सामने खिलता रहता है। वह उसी के लिए रचित कविता है। अद्भुत ढंग से चित्रित रंगीन तस्वीर है, मधुर स्वर में गुंजित गीत है। हां, केवल उसी तस्वीर के लिए लिखित, निर्देशित, पर्दे पर दिखाए जाने वाली फिल्म है। ओह ! यह कितनी अपूर्व अैर निराली बात है, गर्व करने की बात है? कभी कभी उसे लगता था कि वह अपनी उमंग और उत्साह को दबा नहीं पाएगा। अपने को काबू में रखना उसे मुश्किल लग रहा था। जी में आ रहा था—सड़क पर जाते अनजान और अपरिचित लोगों को रोककर, सारी बात का बयान कर दे, उनके सामने अपना दिल खोलकर रख दे। किसी बड़ी इमारत की सबसे ऊंची मंजिल पर खड़े होकर आसमान पर थिरकते बादलों को अपने दिल की बात बता दे। अपने मन के अंतरंग रहस्य को उद्घाटित कर दे। हां, वह सब से निराला है, सबसे विलक्षण है। उसे ऐसा एक अनूठा मौका और गौरव प्राप्त है जो और किसी को नहीं मिला है—चाहे इस गौरव का, प्रतिष्ठा का मूल्य कुछ भी हो।

केशवन अब चिंतामग्न रहने लगा।

अनुभाग के दूसरे कर्मचारियों की नजर में वह एक आजाद पंछी था जो निश्‍िचत होकर गगन में विहार करता था। किंतु उसे अनुभव हुआ कि वह सहसा, अनजाने में ही एक निराले पिंजड़े में कैद हो गया है। उसे ऐसा महसूस होने लगा कि वह जो विशाल जलाशय पर स्वेच्छा से तरती, विचरती नौका के समान, उठती लहरों पर तैरता रहा, सहसा किनारे के एक छोर पर बांध दिया गया है। इस आकस्मिक परिवर्तन को वह पूरे दिल से स्वीकार करने में असमर्थ था। लेकिन इस बंधन से अपने को छुड़ाने में भी असफल था। एक दृष्टि से देखा जाए तो यह उसका घोर अंतःपतन और करारी हार लग रहा था।

लेकिन इस हार में एक तरह का आकर्षण भी था। उसमें एक रहस्यपूर्ण मार्मिकता और सौंदर्य था। इस हार का मुकाबला करने से घबराकर पीछे हट जाने का मन भी न रहा। केशवन बुरी तरह चकराया, परेशान हुआ। समझ में न आ रहा था कि क्या करे, क्या न करे।

एक दिन सिनेमा थिएटर में अपनी सहेलियों के साथ आई नीला को देखकर वह मुस्कराया। वह भी मुस्कराई। बस उसकी हिम्मत बंध गई। सेक्शन में काम करते समय जब कभी हंसी मजाक करने के मौके आते, उन दोनों की नजरें मिलतीं। मुस्कराहटें परस्पर टकरातीं और बिखरती रहीं। बिजली की लहर सी कोई चीज लगतार उन दोनों के बीच दौड़ती रहती थी।

नीला के देखने का, उसकी मुस्कराहट का बस एक ही अर्थ हो सकता है। फिर भी केशवन किसी निश्चय पर पहुंच न पाया। बाद में उसे ख्याल आया—अरे वह तो निश्चय पर आ चुकी है, फिर मैं क्यों बेकार माथा पच्ची करता रहूं? मेरी तरफ से भी उसी ने जब

निश्चय कर लिया तो मुझे क्या हर्ज है? उसे क्यों निराश करूं? एक युवती के मानसिक संतोष की अपेक्षा मेरी सौंदर्य-गवेषणा ज्यादा महत्व नहीं रखती। एक युवती के दिल को मसलने के पाप का बोझा अंतःकरण में ढोते हुए, मुझे अपराधी ठहराती उन बड़ी बड़ी आंखों की स्मृति को मन में उठाए हुए मैं कौन से सौंदर्य का आस्वादन कर पाऊंगा? किस बात में पूर्ण रूप से मन लगा पाऊंगा? हां, मैं फंस गया हूं। बुरी तरह फंस गया हूं। मेरा दिल जो बिल्कुल साफ था, निर्मल था, खाली पड़ा था, उसमें एक बिंब विशेष ने अपना अड्डा जमा लिया है। अब केवल एक ही काम है जो करणीय है।

हां, एक ही बात है। केशवन एक फैसले पर आ गया।

एक शाम नीला दफ्तर से बाहर निकली तो केशवन भी साथ निकला। इस पर नीला ने नाखुशी जाहिर नहीं की। इससे केशवन का साहस बंध गया।

"घर जा रही हो न?"—अर्थहीन, बेहूदा सवाल।

"हां।"

"चलो न कहीं जाकर कॉफी पी जाए।"

ऐसा लगा, नीला को इसकी अपेक्षा नहीं थी। उसके चेहरे का रंग सहसा बदल गया। फिर भी संभलकर बोली, "ना...मैं नहीं आ सकती।"

"क्यों?"

"कोई जरूरी काम है।"

"मुझे यकीन नहीं आता।"

वह बिना उत्तर दिये चलने लगी। केशवन से रहा न गया। इतने दिनों से सोचना ...सिर खपना। छिः, इसी के लिए था? इसी जवाब को पाने के लिए था?

"प्लीज।" भावावेश में आकर उसने नीला का हाथ पकड़ लिया। बस ! नीला ने एक झटके से अपना हाथ छुड़ा लिया, तीखी नजरों से उसे घूरा और फिर तेजी से कदम बढ़ा लिए।

केशवन उसे इस तरह चलते हुए देखता हुआ वहीं खड़ा था।

छिः, कितनी हिम्मत है उसकी ! बस स्टैंड पर बस की प्रतीक्षा में खड़े रहते समय, घर आकर कपड़े बदलते समय, हाथ में अखबार लेकर बैठते समय नीला को केशवन के दुस्साहस पर गुस्सा आता रहा। इडियट कहीं का ! अपने को क्या समझ रखा है उसने? मुझे शायद ऐसी वैसी लड़की समझ रखा है। चाहता है कि मैं कॉफी पीने चलूं...वह भी इसके साथ। यह लालसा ! ऐसी हिमाकत !... हाथ पकड़ने की जुर्रत !

छिः ! छिः ! यह जमाना नेक नीयत वालों का नहीं है। अपने कार्य स्थल के माहौल को रूखा और तनावपूर्ण रखने की बजाए अपनी सौंदर्यमय किरणों से उसने उल्लास का

मलयानिल बहने दिया, अंधेरे से भरे उस कमरे में उसने ज्योति और बिखेर दी और निस्स्वार्थ भाव से वह सबसे हिल मिलकर हंसती मुस्कराती बातें करती रही। इसका मतलब यह तो नहीं है कि कोई उसे गलत समझ ले और बदतमीजी से पेश आए। अपने उस भक्त को वह किसी भी सूरत में माफ करने को तैयार नहीं थी।

उसने सोचा कि केशवन के लिए उसने जो जो लक्ष्मण रेखाएं खींच रखी थीं, उन सीमाओं को उसने पार कर दिया। जिसे मंदिर के द्वार पर खड़ा रहना चाहिए था, उसका यों धड़ाधड़ गर्भगृह में प्रवेश करना अनुचित था। निर्मल अंतःकरण के साथ उसने अपनी खिड़कियां खोल रखी थीं। इसका मतलब यह तो नहीं था कि वह उस पर यों अधिकार जताते हुए खिड़कियों को लांघकर अंदर कूदने की कोशिश करे। उसके मन में जो भी विचार उठते थे वे सब केशवन को अपराधी और स्वयं को निरपराध साबित कर रहे थे।

हां, वही अपराधी है। उसकी सदाशयता से प्रेरित सहृदयता को केशवन गलत समझ बैठा है। वही गुनाहगार है।

अगले दिन दफ्तर के लिए निकलते वक्त नीला ने मन में ठान लिया कि अब उससे कभी बात नहीं करूंगी।

उस दिन केशवन दफ्तर नहीं आया।

हुंम्..अपनी करनी पर पछता रहा होगा। अथवा अपनी खाली कुर्सी के द्वारा अपना असंतोष जता रहा होगा। या मेरी सहानुभूति पाने के लिए ऐसा कर रहा होगा।...नीला इस तरह की कई बातें सोचती रही। उसके बारे में सोचे बिना, उसकी अनुपस्थिति से अप्रभावित रहने की, अपने को बिल्कुल स्वाभाविक रखने की उसने बड़ी कोशिश की। लेकिन मन की भावनाओं पर, विचारों पर किसका वश चलता है ! उस पर लगाम डालें कैसे? यह सोचो—यह न सोचो, यों कोई भला, अपने मन पर अंकुश चल पाता है। हृदय पट पर बार बार उभरती उसकी छवि को, बेकरारी से उसके ख्याल में भटकते मन को रोकने में वह असफल रह गई।

उस दिन शाम को घर में बैठे बैठे वह सोचती रही कि किन किन कारणों के आधार पर वह केशवन को नकार सकती है? पहले तो उसने केशवन को अनुभाग में काम करने वाले कइयों में एक माना था, उस पर उसने विशेष ध्यान नहीं दिया था। आज ऐसी ही भावना को फिर से अपने मन में लाने में वह असमर्थ रह गई। कोशिश कर करके हार गई वह। धीरे धीरे उसने अपने मन में केशवन का एक इमेज बना लिया कि वह औसत आदमियों से भिन्न है, उसकी रुचियां और विचार भी खास तरह के हैं, अलावा इसके उसके दिल में अपने प्रति श्रद्धा का भाव है। इस इमेज को वह मिटा नहीं सकी, तोड़ नहीं पाई। अपनी अलग पहचान से रहित, बिना चेहरे के, बिना नाम के हजारों लोगों की भीड़ में एक

के रूप में उसे अपने दिल से निकाल कर फेंक नहीं पाई।

क्या पता, वह भी अब मेरे बारे में सोच रहा होगा। हो सकता है। कौन जाने? यह भी कैसी अनोखी बात है जिससे बच पाना अपने हाथ में नहीं है। बिना उसकी अनुमति लिए, अनजाने ही, इस क्षण, पता नहीं कितने लोग उसके बारे में तरह तरह की उलटी-सीधी बातें सोच रहे होंगे। यह बेबसी नहीं तो क्या है कि हम उनके इन ऊलजलूल ख्यालों को जान नहीं पाते और उन पर रोक नहीं लगा पाते। इन ख्यालों से अपने को मुक्त करना भी अपने वश में नहीं है।

अब इस क्षण केशवन उसके बारे में क्या सोच रहा होगा? उसे घमंडी और हृदयहीन समझ रहा होगा। वह जो चाहे समझ ले। लेकिन, लेकिन...ऐसा तो नहीं है कि उसके दिल को बेहद सदमा पहुंचा हो। अपनी गलती पर खुद पछताता हुआ व्याकुल तो नहीं हो रहा है? इस तरह की कल्पना और आशंका ने नीला को डरा दिया। वह परेशान हो गई। "कोई मेरे बारे में चाहे जो कुछ भी सोच ले, मैं उसके लिए कहां तक जिम्मेदार हूं?" नीला ने अपने आप को समझाने की कोशिश की। रेडियो में सुने प्रेम गीत में, विज्ञापनों में छपे युवक की मुस्कान में दिल लगाकर अपने विचारों का रुख बदलने की कोशिश करने लगी। लेकिन एकाएक उसे यह सब बिल्कुल नीरस, बेजान, अर्थहीन व खोखला लगा। सजीव, साकार, मनोरम सच्चाई के रूप में उसने जिसे देखा था, जिसने उससे बातें की थीं, उसी केशवन के इर्द गिर्द मंडराने लगा उसका मन।

अगले दिन केशवन दफ्तर आया। मगर वह पहले वाला केशवन नहीं था। हंसता मुस्कराता चेहरा आज गंभीर था। उसने न किसी से हंसी मजाक किया न बातें कीं। बिना इधर उधर देखे, बिना मुस्कराए वह अपने काम में मग्न रहा।

नीला ने इस बदलाव को देखा। पर देखकर भी अनदेखी करती हुई बैठी थी। दिल में यह आशा पाल रही थी कि मौका मिलते ही "आई एम सॉरी" कहते हुए केशवन उससे माफी मांगेगा। लेकिन नीला को इस बात का पता नहीं था कि केशवन ने उस एक दिन के अवकाश में ही अपने को सख्त और कठोर बना लिया था। उन चौबीस घंटों में वह केशवन आत्मशोधन करके ऐसी एक विरक्ति सीमा पर पहुंच गया था जहां लड़कियां, उनकी तिरछी नजरें, उनकी मुस्कराहटें, संकेत और इशारों में ध्वनित अर्थ इत्यादि उसे बेमानी लगते हैं।

उस दिन लंच टाइम के बाद एकाध मिनट के लिए सेक्शन में वे दोनों अकेले रह गए थे। नीला ने उम्मीद की कि वह खुद उससे बातें करेगा। लेकिन वह गुमसुम बैठा था। अगले दिन और उसके बाद के कई दिनों में ऐसे बहुत मौके सामने आए। लेकिन केशवन ने ऐसे मौकों का फायदा नहीं उठाया।

नीला ने सोचा—लगता है, पारा खूब चढ़ा हुआ है। उसका कटा कटा सा रहना, दबे गुस्से की गरमी, दफ्तर के काम काज के सिलसिले में जब कभी उससे कुछ बोलना पड़े तो बड़े अदब से बिना उसकी तरफ देखे बातें करके चले जाना आदि नीला को दिलचस्प तमाशा सा लग रहा था। साथ ही उसकी रुखाई और गुस्से के पीछे छिपी निराशा और वेदना के बारे में सोचते समय उसके प्रति मन में ढेर सारी दया उमड़ आई। सोचने लगी—'पागल है अव्वल दर्जे का। लेकिन मेरी हालत उसकी समझ में क्यों नहीं आ रही है? समझता क्यों नहीं कि मैं आखिर एक लड़की हूं। इन बातों का मुझ पर क्या असर पड़ेगा? इनका क्या नतीजा होगा? लड़की को अपने चारों तरफ के लोगों की, समाज की दृष्टि और विचारों का ख्याल करना पड़ता है न? कोई कॉफी दिलाने का न्योता दे, वह उसके साथ कॉफी पीने के लिए झट क्यों तैयार हो जाए? यह क्या कोई फिल्म या नाटक है कि यों उसके पीछे चल दे।

बहरहाल, पहले वह जो सोचती थी कि केशवन ने मुझे कॉफी हाउस बुलाकर अक्षम्य अपराध किया था, अब वह इसके लिए तर्क ढूंढ़ने लगी कि मान लो उसका बुलाना सही था, लेकिन मैं किन कारणों से उस निमंत्रण को स्वीकार नहीं कर सकती थी। और फिर यह साबित करने की कोशिश में लगी कि मैंने जो किया ठीक ही किया। फिर भी दिल की बेकरारी और व्याकुलता पर रोक न लगा पाई। सोचने लगी, शायद उसे इतनी बेरुखी से पेश नहीं आना चाहिए था। कुछ और शब्दों में अपने दिल की बात प्रकट कर सकती थी। थोड़ी सी नरमी और स्निग्धता के साथ बातें कर सकती थी। उसे चोट पहुंचाए बिना और अपने को किसी प्रकार की बंदिश में डाले बिना स्थिति को थोड़ी चतुराई से संभाल सकती थी।

नीला इसी तरह जाने क्या क्या सोचती रही, परंतु केशवन को देखने पर ऐसा लगता था कि वह नीला की ओर से एकदम लापरवाह है, आजकल उसने उसकी तरफ ताकना भी बंद कर दिया है। यही नहीं, अपनी सीट पर बैठने के समय को भी उसने भरसक कम कर दिया। उसकी यह उपेक्षा और बेपरवाही ने नीला की नींद हराम कर दी हो, ऐसी तो कोई बात नहीं थी। फिर भी एक प्रकार का खालीपन जब तब उसे झकझोरता रहा। ऐसा लगा कि उसके दिल में प्रकाशमान दीप-सा जलता हुआ कोई बल्ब अब एकाएक फ्यूज हो गया। इस बल्ब के बिना भी उसका गुजारा हो सकता है। फिर भी थोड़ा बहुत फर्क तो अवश्य पड़ता था। कोई अभाव खटक रहा था।

अब नीला से अपने साज शृंगार में, बनने ठनने में पहले जैसा उत्साह लेते नहीं बन रहा था। उसे लगने लगा, यह सब खुद को धोखा देने का प्रयत्न है। वह अपने उस सौंदर्य पर आत्म विश्वास खोती जा रही थी जिस सौंदर्य से अभिभूत उसका सपनों का राजकुमार

हारकर घुटने टेक देता था। अपने सौंदर्य के मोहक आकर्षण और प्रभाव पर पहले के जैसे इत्मीनान से वह गर्व कर न पाई। जिस पक्की नींव पर उसने बड़ी ठाट से आलीशान महल खड़ा किया था वही नींव अब डगमगाने लगी। अनायास ही पछाड़ने लायक इतनी सारहीन थी उसकी शक्ति? तो क्या उसका सौंदर्य सचमुच इतना मादक नहीं था कि देखने वाले को दीवाना बना दे, उसमें ऐसा नशा भर दे कि चाहते हुए भी वह अपने को मुक्त नहीं कर पाए? केशवन उस पर अपना होश हवास जो भूल बैठा था, वह क्या एक आकस्मिक घटना थी? या नीला की यह धारणा थी कि वह मुझ पर आसक्त है, केवल उसका भ्रम था? वहम था? सहसा भावावेश में आकर पल भर के उद्वेग में उसने उसके पास आने की कोशिश की, पगली-सी उसने उस अमूल्य अवसर को निकलने दिया? न जाने फिर ऐसे मौके उसके जीवन में आएंगे या नहीं? क्या अब उसकी किस्मत में यही बदा है कि वह मां बाप और ज्योतिषी द्वारा चुने गए किसी के साथ...ओह ! कितनी भयंकर बात है?

मैं निरी बेवकूफ हूं—अहमक हूं... उसने अपने आप को जी भर कर कोसा। गालियां दी। केशवन ने मूंछ रखी है। रंग भी उतना साफ नहीं। लेकिन इससे क्या मतलब? वह तो उसका परिचित है, जाना पहचाना है। यह कह नहीं सकते कि घटिया किस्म का आदमी है।

हूं...ये लड़कियां भी खूब हैं ! बस में दफ्तर जाते वक्त केशवन मन ही मन मुस्कराया, मानो इस विषय में उसका व्यापक अनुभव हो और वह महिलाओं का बड़ा पारखी हो। अरे, इनकी तबीयत भी निराली है। मर्दों की तवज्जह चाहती हैं...ऐसा न हो कि कोई ज्यादा तवज्जह दे...सुविधाएं लेना चाहती हैं..इस तरह कि कोई महसूस न करे कि सुविधाएं वे ले रही हैं। चाहती हैं, खूब हवा चलती रहे, पर हवा में साड़ी का आंचल उड़े नहीं...

"ये लड़कियां ऐसी ही होती हैं, ये स्थिरमति नहीं होती; चंचल और छलिया होती हैं, बिचस कहीं की—इन पर कभी भरोसा नहीं कर सकते"—मन ही मन बुदबुदता हुआ केशवन ने सेक्शन में प्रवेश किया। दण्डपाणि ऊंची आवाज में श्रीनिवासन से कुछ विवाद कर रहे थे। गणपतिरामन कुप्पुस्वामी से अपना दुखड़ा रो रहा था और नीला !

केशवन ने बड़ी लापरवाही से उसकी तरफ जो देखा, सन्न रह गया। नीला ने आज वही साड़ी पहनी थी, जिस दिन उसे कॉफी हाउस चलने का निमंत्रण दिया था उस दिन जो पहनी थी ! केशवन ने उसके चेहरे पर नजर दौड़ाई। बड़ी बड़ी आंखों में शरारत और उल्लास नर्तन कर रहे थे। उसने ओठों को काटते हुए आंखें झुका लीं। तोबा, तोबा ! अब वह फिर धोखा नहीं खाएगा।

हाजिरी बही में छोटी सही करके वह सीधे अपनी सीट पर जा बैठा और फाईल में मशगूल हो गया। क्लिङ्. क्लिङ्.. चूड़ियों की खनखनाहट। लेकिन उसने सिर न उठाया।

मन में कहा, ''बड़ी महरानी जी हैं। चाहती है, उसकी शर्तों पर मैं हुम्...क्या मुझे नचाना चाहती है?" वह उसका ध्यान खींचने की कोशिशें करती रही, इधर वह मौन रूप से उसका प्रतिरोध करता रहा। चंद मिनट इसी दांव-पेंच में गुजर गए। सहसा चपरासी परांकुशम कॉफी के दो प्याले लेकर कमरे में घुसा। जब उसने एक प्याला नीला की मेज पर रखा तो नीला ने दूसरा प्याला केशवन की मेज पर रखने का इशारा किया। परांकुशम ने ऐसा ही किया।

केशवन ने अपना सिर उठाया—मानो पूछ रहा हो, "यह क्या है, भई?"

नीला ने कहा, "मैंने ही मंगवाई है।" फिर मुस्कराती हुई बोली, ''यू लाईक कॉफी, है न।"

केशवन अचकचा कर रह गया। यह चाल बिल्कुल अप्रत्याशित थी। उसे इसका जरा भी अनुमान नहीं था। यदि कभी ऐसा मौका आए तो क्या करना है, उसने इस पर विचार नहीं किया था।

परांकुशम ने कहा, "जी। कॉफी पी लीजिए न! ठंडी हो जाएगी।"

नीला कॉफी का प्याला हाथ में लिए उसे कंपनी देने के लिए तैयार बैठी थी। उन आंखों में कोई दृढ निश्चय था, विश्वास भी। केशवन को एहसास हुआ कि वह हार गया है। वह कॉफी पीने लगा। नीला से क्या क्या बातें करनी हैं, अपने दिल का उबाल किन किन शब्दों में प्रकट करना है, उस पर अपना गुस्सा कैसे उतारना है इत्यादि बातों पर उसने विस्तार से बहुत कुछ सोच रखा था। लेकिन अब इस क्षण में वे सब अनावश्यक और अर्थहीन लगे। यही मनःस्थिति उभर रही थी कि अब नीला का यही सामीप्य और सहज सौजन्य भाव मिलता रहे तो पर्याप्त है।

जी में आया, तीखा जवाब देकर मन का बुखार उतार लूं।

बोला, "कॉफी के लिए धन्यवाद।"

"आपने कॉफी कबूल कर ली—इसके लिए आभारी हूं।" नीला ने कहा। वह कुछ और भी कहना चाहती थी, मगर उसे इसका डर था कि कहीं उसके मुंह से गलत शब्द न निकल जाए। केवल एक मुस्कान बिखेर दी। बदले में वह भी मुस्कराया।

दोनों एक दूसरे को जीतना चाहते थे। अब तो एक दूसरे से हार कर बैठे थे।

पैरों की पीर

सवा छह बज गए। अभी तक चित्रा का पता नहीं है। गणेश का सब्र जवाब दे रहा था। खड़े खड़े पैर दुखने लगे। कहीं बैठने को मन हो रहा था।

मन में शंका हो रही थी, चित्रा और उसका छोटा भाई कहीं किसी और थिएटर तो नहीं चले गए। उसने अपनी याद्दाश्त को टटोला, मैंने स्पष्ट रूप से रिवोली थिएटर का नाम लिया कि नहीं। हां, बताया था। उसे ठीक याद है। उसने रिवोली थिएटर ही कहा था और चित्रा यही फिल्म देखना चाहती थी। एक हफ्ता पहले जब वे मिले थे, तब उसने बातों ही बातों में प्लाजा में जो फिल्म चल रही थी, उसका जिक्र किया था। कहा था कि उस फिल्म में, अफ्रिका के जंगलों के विविध वन्य पशु पक्षियों के जीवन, उनके खान पान, जीने के तरीके और आदतों का हू ब हू चित्रण हुआ है और यह भी सुझाव दिया था कि यही फिल्म देखें। लेकिन चित्रा ने बता दिया कि उसके बदले रिवोली में जो फिल्म चल रही है वह वही देखना चाहती है। वैसे यह भी अच्छी फिल्म है, विदेशी फिल्म। यह मानव जीवन पर आधारित है। कोई शादीशुदा इंसान जब अपनी बीवी के अलावा और एक औरत से मुहब्बत करने लगता है, उस समय उठने वाली समस्याओं को लेकर बुना हुआ इसका कथानक—

औरत, मर्द और मुहब्बत!

थकान के मारे गणेश की आंखें आप ही आप मुंद गईं। जब उसने आंखें खोली, देखा सामने वजन देखने की मशीन के पास वह लाल साड़ी वाली अब तक खड़ी थी। लगता है, वह भी उसी की तरह किसी के इंतजार में खड़ी है। जब कभी उसकी नजर उस लाल साड़ी वाली की तरफ खिंच जाती, उसकी दृष्टि भी उसकी तरफ कौंध उठती थी और पल-आधे पल ठिठकती थी। गणेश ने सोचा, अजनबी होने के नाते हम दोनों इस तरह आंखें मिलाते हुए हजारों हजार मधुर कल्पनाएं कर लेते हैं। उसके बारे में मेरी कल्पनाएं, मेरे बारे में उसकी कल्पनाएं। शाम की ढलती धूप में फुटपाथ से थिएटर के द्वार तक बिछी रोशनी की चटाई पर वह खड़ी थी। उस हल्की धूप में चमचमाती उसकी साड़ी और हैण्ड बैग, जरा सी बिखरी लटें, वजन देखने की मशीन पर अंकित उसकी छाया, बार बार घड़ी की ओर तिरछी नजर डालने की वह अदा, रह रहकर इधर उधर किसी को तलाशती उसकी

चंचल दृष्टि सब कुछ उसे एकदम मोहक लग रहा था। बेशक वह सौंदर्य निराला था, बेजोड़ था। उसकी भावना में नारीत्व की विशेषताओं के कई एक अपूर्ण अंश आकारहीन होकर डगमगा रहे थे जिन्हें रूप देने की बार बार कोशिश करके वह हार गया था—अब वे सब मिलकर मूर्तिमान होने के लिए लालायित लग रहे थे। वह पूर्ण रूप—हां, यही है वह। इसी की वह तलाश कर रहा था। उफ, प्रयत्न सफल हो गया। आखिर मिल गई स्वप्नों की प्रेयसी। पर हाय रे...

एकाएक थकान और मायूसी ने उसे घेर लिया। अब इस रूपसी को देखने से क्या फायदा होने वाला है? दो साल पहले, एक साल पहले, कम से कम एक महीने पहले देख लिया होता तो? तब चित्रा से उसकी शादी की बात पक्की नहीं हुई थी। तब वह आजाद पंछी था। लेकिन अब नहीं। एक हफ्ते के बाद तो बिल्कुल नहीं। उसकी और चित्रा की शादी होने वाली है। हां, अगले हफ्ते।

कोई व्यक्ति जीवन के हर पहलू का एक साथ उपभोग कैसे कर सकता है? इतने दिनों तक वह शादी की बात टालता रहा। किसी निर्णय पर आने से कतराता रहा। फिर एकाएक एक महीना पहले ही चित्रा से शादी करने का निश्चय किया। संभव है, वह जल्दबाजी में लिया गया निर्णय हो। संभव है, परिस्थितियों ने जबरन उस पर ऐसा निर्णय थोप दिया हो। जो भी हो, यह एक अंत है, एक शुरुआत है। एक अनिश्चित स्थिति से अपने आप को छुड़ाने का, स्वयं उसका जानबूझकर लिया हुआ निर्णय है। जीवन के लिए एक सुनिश्चित व्यवस्था है, प्रबंध है। अन्य व्यवस्थाओं की तरह इसमें कुछेक सुविधाएं हैं तो कुछ असुविधाएं भी हैं। वह सदा ही व्यवस्था का—अपने आप से किए जानेवाले समझौतों का—जबर्दस्त विरोध करता रहा है। लेकिन, अब वही एक और व्यवस्था में फंस रहा है। छोड़ो, दस के साथ ग्यारह... क्या इसे दस के साथ ग्यारह कहा जाए? यह अन्य कई बातों में एक है क्या? इसका उत्तर 'हां' भी है, 'नहीं' भी।

अपनी जिंदगी की कई एक व्यवस्थाओं में इसे भी एक मान कर स्वीकार कर लें तो यह दसवीं या ग्यारहवीं हो सकती है। मगर असल में यह तो उन सब से बढ़कर अहमियत रखने वाली है न? उसे उन सब से ज्यादा प्रभावित करने वाली है न? अलावा इसके, इस व्यवस्था में खास बात (या दुर्भाग्य की बात) यह है कि इसमें दस या ग्यारह की कोई गुंजाइश है ही नहीं। जिस समाज में वह जी रहा है, जिसका वह एक अंग बना रहता है, उसमें व्यक्ति के लिए जीवन में केवल एक बार इस किस्म की व्यवस्था को स्वीकार करने की अनुमति मिलती है। यह व्यवस्था सफल सिद्ध हो सकती है या असफल भी साबित हो सकती है। ज्ञान का विकास करने के उद्देश्य से स्कूल और कालेज में जाना, जीविका के लिए किसी संस्था में जाकर एक निश्चित प्रकार के काम को रोज करते रहना, नाश्ता और

भोजन करने के लिए होटलों में जाना, मनोरंजन के लिए रेडियो, सिनेमा, दैनिक अखबार, साप्ताहिक-मासिक पत्रिकाएं, यातायात के लिए सरकारी बसों और रेलों के भरोसे रहना आदि व्यवस्थाओं के प्रति जब हम अपना विश्वास खो बैठते हैं, इनसे अपना संबंध तुड़वा सकते हैं। इसकी हमें छूट है, सुविधा है। विवाह की व्यवस्था में ऐसी सुविधा नहीं है। हां, कानूनी तौर पर हो सकता है। सामाजिक रूप से भी शायद संभव है। लेकिन उसके रक्त में घुले मिले परंपरागत विश्वासों के तौर पर नहीं। ऐसी बात नहीं कि परंपरागत रूढ़ियों का उल्लंघन या उपेक्षा नहीं हो सकती मगर सवाल यह है कि यह उल्लंघन किस हद तक उसे चोट पहुंचाएगा या आहत किए बिना रहेगा? जिस वातावरण में वह पला था, उसके धार्मिक संप्रदाय और रूढ़िगत रीति रिवाजों और परिस्थितियों की कई बातों से बुद्धिवादी की हैसियत से वह नफरत करता था, फिर भी भावात्मक रूप से अनजाने ही वह उनसे जुड़ा हुआ था। जैसे बड़े होने की प्रक्रिया में कुछ बच्चे जहां अपनी मां के प्रति कभी असंतोष और घृणा की भावना को व्यक्त करते हैं, वहीं कई बार अपनी मां की ममता और वात्सल्य पाने के लिए विह्वल होते हैं, असुरक्षा की भावना उनके अंदर बीज रूप में रहती है। इसी तरह उसकी यह नफरत भी उन संप्रदायों के प्रति उसके लगाव से उत्पन्न नहीं हुई है, इसका क्या सबूत है?

हां, भावना और संवेदना की जड़ें बौद्धिक जड़ों से भी प्राचीन हैं, सनातन हैं, गहरी हैं। भावना ही कसौटी है। भावना ही पथप्रदर्शक है।

लेकिन भावनाओं को समझ लेना उतना सरल नहीं। विभिन्न अवसरों पर अलग अलग दिशाओं में प्रवाहित अपने प्रेम और घृणा को वह समझ नहीं पाता। कभी कभी तो उसे लगता है कि वह गलतफहमी से प्यार को घृणा और घृणा को प्यार तो नहीं समझ रहा है। अगर अपने ही हृदय की भावनाओं का यह हाथ है, तो दूसरों की भावनाओं के बारे में क्या कहना? जिनके बारे में उसने विश्वास किया था कि उस पर स्नेह और लगाव रखने वाला है, उसमें कई मित्रों ने एक एक करके, कई एक मौकों पर उसे धोखा दिया है। उनके साथ बेकार बिताए उन क्षणों के लिए पछताने को उसे मजबूर कर दिया है। बाद में वह निःस्वार्थ और पवित्र स्नेह की भी कड़ी परीक्षा करने वाले कायर के रूप में बदल गया, इस स्थिति की नींव डालने के लिए वे ही लोग जिम्मेदार थे। इस परवर्ती दशा के पहले की स्थिति भी उतनी आशाजनक न रही। उसमें हिम्मत का अभाव था। संकोच, हिचक और आत्मविश्वास का अभाव। कालेज के दिनों में उसे देखकर, मुस्कराने वाली लड़की के संकेतों को संभावनाओं में और संभावनाओं को साध्य और यथार्थ के रूप में बदलने का साहस और आत्मविश्वास उसमें न रहा। दैनिक समाचार पत्र-कार्यालय में साथ में काम करने वाली आकर्षक लड़की के सामने अपना दिल खोलने में हिचक या अहम ने रोक

लगा दी थी। एक शाम उसके इस संकोच को जब उस लड़की ने दूर करने की कोशिश की, उस क्षण न जाने क्यों उसका सारा जोश एकाएक ठंडा हो गया। वह स्वयं समझ नहीं पाया कि ऐसा क्यों हुआ? केवल एक शाम। अपने ऊपर उसका विश्वास कम हो गया। उसने महसूस किया, लगा, लड़की की आंखों के कोर पर भारी प्रतारणा का बीज है, फूटती हुई हंसी की हर रेखा पर बड़ी चतुराई से छिपाई ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध है।

उसे लग रहा था कि अब किसी लड़की से वह हार्दिक प्रेम नहीं कर पाएगा। अब कोई भी लड़की उसके अंदर ऐसी कल्पना का रूप नहीं ले सकती जिससे उल्लासपूर्ण और शाश्वत प्रणय बंधन का महल खड़ा हो जाए। कल्पना रहित शून्यता की तपिश उसकी सुहावनी संध्या और नीरव रातों को असहनीय बना देती थी। वह पूरे दिन, एक अंध और कृत्रिम जोश के साथ अपने को काम में व्यस्त रखता था। उस दैनिक अखबार में जितने उप संपादक थे, उनमें वही सबसे बड़ा होशियार समझा गया। चीफ साहब ने ज्यादातर 'कापी' उसी के लिए मार्क की। प्रकाशन योग्य खबरों की उचित ढंग से काट छांट करने, गलतियों को दुरुस्त करने और उचित शीर्षक देने में एक मशीन जैसी लाघवता और कुशलता थी उसमें। लगता था, चीफ साहब के लिए ही नहीं, बल्कि न्यूज रूम अन्य लोगों के लिए भी सुविधा की बात सिद्ध हो गई। हर जगह ज्यादातर ऐसे ही लोग रहते हैं जो काम से जी चुराते हैं, ऐसी हालत में कोई शख्स लगातार काम करते रहना चाहता हो तो वह इन बहुसंख्यकों का उद्धारक बन जाता है, उनकी कृतज्ञता का पात्र भी बनता है। क्राईम स्टोरी? गणेश तो है। हवाई जहाज की दुर्घटना? है गणेश? गेहूं के उत्पादन, इस्पात के निर्यात आदि आंकड़े जो आंखों में तेल डालकर देखने की बातें हैं। गणेश... है न?

गणेश, गणेश, गणेश!

उन लोगों ने जिस गणेश को अपने सामने देखा था, वह था एक त्रुटिहीन यंत्र था जिसमें न तो मानव-सहज तृषा, अभिलाषा-आकांक्षाएं थीं न ही मानव-सहज कोई दुर्बलता। अपने बारे में कार्यालय के साथियों ने जिस रूप की कल्पना कर रखी थी, उस काल्पनिक आकार में अपने को छिपा लेना उसके लिए हितकर और सुरक्षित लगा। राष्ट्रीय महत्व के मामले, विश्वविख्यात व्यक्तियों के संबंध में विशेष समाचार आदि को 'एडिट' करने का विशेषाधिकार प्राप्त होने के कारण उसे कभी कभी यह भ्रम सा हो जाता था कि विश्व के महान राष्ट्रनेताओं से भी वह शक्तिसंपन्न है। मगर अपने आप से स्वयं को छिपा लेना किसी के लिए कब तक संभव है? उसके आस पास चारों तरफ बैठे नौजवान उप संपादक, जो उम्र में उससे छोटे और अगली पीढ़ी के लगते थे, अपने साथ काम करने वाली लड़कियों को छेड़ते, उनके साथ प्रेमालाप करते और गप्पें लड़ाते रहते। लेकिन एक वह था जो तीस वर्ष की उम्र में ही पचास साल के अधेड़ व्यक्तियों की सहज अनासक्ति के साथ उनके

बीच में बैठा रहता। वे नौजवान कभी सहज भाव से और कभी शरारत से प्रेरित होकर उस पर टीका टिप्पणी करते, 'संत महात्मा', 'वेदांती बैरागी', 'नारी-शत्रु' वगैरह वगैरह। ऐसे मौकों पर उसके द्वारा अंतर में दबाकर रखी 'वह चीज' अपना फन उठाकर फुफकारती और उसे संकटपूर्ण अवस्था में ला खड़ा कर देती। उसे मार्गांतरित करने का कोई रास्ता न पाकर वह घुटन का अनुभव करता। एक बार उसने अपने आप को व्यक्त करने की कोशिश की थी, तब दूसरे लोगों ने उसकी अवहेलना की थी, उसके मर्म पर चोट पहुंचाई। अब वह अपने आप में सिमटने की कोशिश कर रहा है, तभी न जाने क्यों वे लोग उसे आहत करने पर तुले हुए हैं।

इस पर उसने अपनी ड्यूटी का समय सायंकालीन पारी में बदलवा लिया। शाम की ड्यूटी में वे ही लोग आना चाहते हैं जिन्हें अपने वैवाहिक जीवन से विरक्ति हो चुकी हो या उसके जैसे निपट ब्रह्मचारी हों। उनके बीच उसे चैन मिलने लगा। भुक्तभोगी गृहस्थ उसे सलाह देते थे, ''भई, कहीं शादी वादी के चक्कर में मत फंसो। दुखी बनोगे।''

ब्रह्मचारी मित्र, जो औरतों को कभी कभी नशे के लिए प्रयुक्त मादक वस्तु मानते थे, औरतों के संबंध में अश्लील भाषा में घटिया किस्म के लतीफों का विनिमय करते थे। विवाह, नारी, प्रेम इनको लेकर दूसरों के द्वारा लांछित और अपमानित गणेश को इन सब में एक प्रकार से वक्रतापूर्ण आत्मतोष और सुख मिलता था। इसके अलावा इस माहौल ने आत्मग्लानि और पश्चाताप से उसे बचाया। यही नहीं, इसी रीति से सारी जिंदगी बिताने का आत्मविश्वास और दृढ़ निश्चय उसके अंदर जम गया था। उसकी ड्यूटी खत्म होते वक्त आधी रात हो जाती। वह सीधे अपने कमरे में पहुंचता। वहां होटल वाले द्वारा कैरियर में रखा खाना खा लेता फिर सो जाता। कभी कभी कुछ रातों में मित्रों के साथ प्रेस क्लब या कहीं और जाकर खूब पी लेता। नशे में धुत होकर अंट संट बकता, रोता बिलखता और गाता रहता। उसकी यह हरकतें देखकर ऐसा लगता था, मानो वह अपने दिल की गहराई में उसके अनजाने में जमी हुई भावुकतापूर्ण कोमल भावनाओं की तृषा को शराब से साफ-सुथरा करके बाहर उड़ेलने का प्रयत्न कर रहा हो।

इस तरह के बहकावों से मन को धोखा दिया जा सकता है, शरीर को नहीं। शरीर के अंदर एक खास तरह की खुरच होती है। इसकी खुरच की अकुलाहट सही नहीं जाती थी। इसकी खुरच को मिटाने के लिए, कुछ ऐसी वैसी जगहों पर, कुछ मित्रों के साथ जो वहां जाने के आदी थे, एकाध बार हो आया था। लेकिन इन अनुभवों से उसे संतोष नहीं मिला, उलटे घृणा और आक्रोश के भाव उमड़ आए। अपने ऊपर, उसे जो लोग साथ ले गए थे उनके ऊपर और वहां जो लड़कियां थीं उन पर भी। संभव है, उसके गुस्से का कारण यह भी हो सकता था कि वह जड़ यंत्र नहीं था। ऐसा यंत्र नहीं था जो लड़की को स्पैनर,

पेचकश जैसी चेतनहीन जड़ वस्तु माने, और जरूरत पड़ते ही उन्हें काम में लाकर, फिर दूर फेंद दे और उसके बाद एकदम तटस्थ रहे।

वह यंत्र नहीं तो और क्या है? आखिर वह चाहता क्या है? उसकी समझ में नहीं आ रहा था। वह समझना चाहता था कि वह चाहता क्या है। साथ ही यह ख्याल भी आता था कि पहेली बने रहे तो वह भी सही है। नए परीक्षणों से गुजरने का मन हो रहा था। परंतु अब तक के अनुभव उसे ऐसे नए प्रयोगों को आजमाने का प्रोत्साहन नहीं दे रहे थे। असमंजस की स्थिति थी। वह मानसिक रूप से दूसरों के साथ, खासकर लड़कियों के साथ ऐसा समझौता करके अपने काम पर मन लगाए हुए जी रहा था, "अजी, न तो मैं तुम्हारे रास्ते पर आऊंगा। आप लोग भी मेहरबानी करके मेरे रास्ते पर न आएं।" उसे अपने काम से मतलब था, दुनिया की दूसरी किसी बात से नहीं।

जिंदगी के इसी मोड़ पर पहली बार चित्रा से उसकी मुलाकात हुई। हां, एक नाटकोत्सव में। मद्रास से आई एक नाटक मंडली तमिल नाटकों का मंचन कर रही थी। अपनी ड्यूटी के कारण वह केवल एक ही दिन जा पाया। यदि उसका दोस्त जबर्दस्ती उसे अपने साथ न ले जाता तो चित्रा से उसकी मुलाकात नहीं हुई होती। उससे परिचय बढ़ाने की कोशिश भी नहीं की होती। उसका विश्वास-पात्र न बना होता, चित्रा के भविष्य को अपनी जिंदगी से जोड़ लेने के लिए तैयार नहीं हुआ होता। भविष्य...

गणेश ने लंबी आह भरी। उस लाल साड़ीवाली के चेहरे पर सहसा मुस्कराहट खिल उठी। क्या वह उसी को देखकर मुस्कराती है? यह ख्याल आते ही उसका दिल जोर से धड़कने लगा। लेकिन वह तो उसके पार और किसी की ओर देख रही थी। गणेश ने मुड़कर देखा। सड़क पर अभी अभी जो आटो आ खड़ा हुआ था, उससे एक नौजवान उतर रहा था। आटो ड्राइवर की तरफ उसने दो नोट बढ़ाए। ड्राइवर ने कहा होगा कि उसके पास छुट्टे पैसे नहीं हैं। नौजवान ने लाल साड़ी वाली को इशारे से कुछ बताया और वह उसकी ओर बढ़ी, पूछा कि कितना पैसा चाहिए। फिर अपना बटुआ खोलकर उसने आटो वाले को पैसा दिया। फिर उसने उसकी कमर में हाथ डालकर अपने साथ सटा लिया, और दोनों गणेश को पार करके थिएटर की तरफ धीमी चाल से चलने लगे। गणेश को ईर्ष्या सी हो रही थी।

उस दिन भी कुछ ऐसा ही हुआ था। उसका दोस्त और वह, दोनों नाटक के शुरू होने से काफी देर पहले ही थिएटर पर पहुंच चुके थे। बाहर खड़े खड़े, सिगरेट का धुआं उड़ाते, आने जाने वाली लड़कियों पर नजर दौड़ाते रहे। उसी वक्त रामदुरै अपने परिवार सहित टैक्सी में आ उतरे। उन्होंने दस रुपए का नोट बढ़ाया तो टैक्सी वाले ने कह दिया कि उसके पास छुट्टे पैसे नहीं हैं। रामदुरै की आंखें तलाशती रहीं कि थिएटर के बाहर

खड़े लोगों में उनका परिचित कोई है क्या? सबसे पहले गणेश पर ही उनकी दृष्टि पड़ गई।

वे उसके पास आए। 'हेलो' के साथ दोनों ने हाथ मिलाया। किसी काम से वे एक बार उसके कार्यालय में आए थे, तब उनसे उसका परिचय हुआ था। उसके बाद जब कभी वे मिलते, एकाध शब्द बोलते। आज उन्होंने उससे अठन्नी मांगी। कहा, "बाद में लौटा दूंगा।"

"कोई बात नहीं, सर।" गणेश ने औपचारिकता निभाई।

वे टैक्सी वाले की तरफ बढ़े। गणेश की आंखें उनका पीछा करने लगीं। ठीक इसी वक्त टैक्सी की तरफ से दो आंखें उसकी ओर घूर रही थीं। वे आंखें चित्रा की थीं।

तभी पहली बार उनकी आंखें चार हुईं।

इंटरवेल के समय वह अपने दोस्त के साथ काफी स्टाल में खड़ा था, तब चित्रा अपने भाई के साथ वहां आई और एक अठन्नी उसकी ओर बढ़ाई।

"ओ! इट इज ऑल राईट।" गणेश ने अठन्नी लेने से इनकार किया।

"नहीं-नहीं, प्लीज। यू मस्ट हैव इट।" चित्रा ने जबर्दस्ती वह अठन्नी उसे पकड़ा दी।

तभी पहली बार उसने उससे बातें कीं।

संभव है, उसकी आवाज, और व्यवहार में जो खुलापन, दृढ़ता और जिद थी, इन सब ने उसी क्षण उसे मुग्ध कर दिया। सत्रह साल की लड़की का वह निःशंक और निर्भीक निश्चय उसे जंच गया। हफ्ते भर वह उसी की यादों में डूबा रहा। इतवार का दिन आया। उनके दैनिक के इतवार के संस्करण में उस तमिल नाटकोत्सव पर प्रोफेसर रामदुरै ने एक लंबी समीक्षा लिखी थी। उस लेख के पहले ही अपने मन में जो जो भावनाएं और विचार उठे थे, उन पर रामदुरै से विचार विमर्श करने के बहाने वह उसी दिन शाम को उनके यहां चला गया।

प्रोफेसर साहब! जिस दिन मैं पहली बार आपके यहां आया था, असल में आप से चर्चा करने नहीं, चित्रा के लिए आया था, आपने उसी दिन इसका अनुमान किया या नहीं, यह तो मैं नहीं जानता। लेकिन बाद में आप को पता लग गया। आपकी पत्नी को भी पता लग गया। बाबू ने भी पहचान लिया। क्यों? आप के घर के कुत्ते ने भी समझ लिया। जब मैं आप के साथ बौद्धिक स्तर पर बहस करता रहता, वह कुत्ता एक कोने में अपनी जीभ निकालता, खीसें निपोरता, धीरे धीरे सिर हिलाता बैठा रहता, मानो मेरा परिहास करता हुआ बता रहा हो, "अरे बाबा! ये सब बेकार का बकवास क्यों करते रहते हो! क्या मुझे मालूम नहीं है कि तुम यहां किसलिए आते रहते हो।" कभी कभी उस कुत्ते से अपनी तुलना

करने लगता हूं तो मुझे अपने ऊपर हंसी और दया आती है। उसे तो बेकार एक्टिंग नहीं करनी पड़ती, बातें नहीं बनानी पड़ती। एक कुतिया पर वह आसक्त होता तो उस कुतिया के बाप को अपनी प्रतिभा से प्रभावित करने की कोशिश भी नहीं करनी पड़ती। उसे इन बातों की फिक्र करने की जरूरत नहीं है कि मेरी प्रेयसी जीवन भर मुझे प्यार देती रहेगी या नहीं, मेरे स्वभाव और रुचियों के अनुरूप साथ देती रहेगी या नहीं। वह एकदम रूढ़िग्रस्थ अंधविश्वासी न रहे, रूढ़ियों, सामाजिक रीति नीति व संप्रदायों पर थूकने वाली भी न हो, ऐसी वैसी बहुत सी बातों को लेकर सिर खपाने की भी उसे जरूरत नहीं। समस्त जीवप्राणियों में अकेले मनुष्य की उम्र लंबी होती है। लेकिन हम मानव क्या करते हैं? अपनी उम्र का अधिकांश समय मन की भावनाओं को छिपाकर बनावटी, ढोंग भरी, बेमतलब की बातों में लगा देते हैं। प्रोफेसर साह! जैसे आपने एक बार कहा था, लेखा जोखा करके देखें तो लगता है, अपनी कम आयु में कई जीव जितना ठोस काम कर लेते हैं, मनुष्य की जीवन भर की उपलब्धि संभव है उसकी अपेक्षा कम हो।

हां, उस कुत्ते से गणेश को ईर्ष्या सी हो रही थी। ऐसे दिन भी होते थे जब उसे देखते ही वह तैश में आ जाता था। लेकिन कुछ एक दिन ऐसे भी थे कि उसके प्रति उसके दिल में कृतज्ञता का भाव जग जाता था। उदाहरण के तौर पर, जिस दिन वह पहली बार उनके यहां गया था, मिस्टर रामदुरै घर पर नहीं थे। उनकी पत्नी और बेटी चित्रा ही घर में थीं।

"आइए! बैठिए... वे अभी आ जाएंगे।" उन दोनों ने उसकी आवभगत की थी। वह कुत्ता जो उसके दरवाजा खटखटाते ही भूकने लगा था, अब उसके अंदर आकर बैठते ही, उसके हाथ, पांव आदि को सूंघने लगा।

"उश्-श्-टॉमी! चुप रहो।" मां, बेटी, दोनों ने कुत्ते को डांटा, कुत्ते को उसे तंग करने से रोकने की कोशिश की।

"कोई बात नहीं।" अपनी अरुचि और नफरत को दबाकर वह उस कुत्ते का गला, मुखड़ा और पीठ को सहलाता रहा। वह भी उसके इतने प्यार और स्नेह से अभिभूत सा होकर मौन खड़ा था। गणेश कुत्ते को सहलाता रहा। वह अपने को कुत्तों से स्नेह-ममता रखनेवाले सहृदय युवक के रूप में दिखा रहा था। इस तरह वह उनकी सद्भावना का पात्र बन गया। कभी कभी सहज साधारण क्रिया भी ऐसा कमाल दिखाती है जो लंबे चौड़े शब्दों से नहीं हो पाता, और ऐसा सहज सौजन्यपूर्ण वातावरण निर्मित नहीं हो पाता।

टॉमी ने ही उनके बीच में वार्तालाप का बीज बोया था। वह बोला, "हमारे घर में भी ऐसा ही एक कुत्ता था।"

"क्यों? अब नहीं है?" चित्रा ने पूछा।

"एक दिन अचानक वह कहीं भाग गया।"

"हाय रे! ऐसा कैसे हुआ?"

तब उसने उनको विस्तार से समझाया कि वह कुत्ता असल में उनका नहीं था, उसके पिता के एक मित्र का कुत्ता था। दिल्ली से जब उनकी बदली हुई, वे उस कुत्ते को उनके यहां छोड़ गए थे। पहले सब ठीक ठाक था। बाद में एकाएक दो तीन दिन वह लापता हो जाता था। न जाने दिल्ली में कहां कहां का चक्कर लगाता रहता। आखिर एक दिन हमेशा के लिए लापता हो गया।

"हाय! बेचारा। अपने पुराने मालिक की याद आई होगी।" चित्रा की मां बोली।

"शायद आपके घर ही में किसी ने उससे बेरुखी का व्यवहार किया होगा... मतलब आप नहीं, आपके घर में कोई..." चित्रा ने कहा।

गणेश ने सोचा, यह कितनी चतुराई से मेरे घरवालों के स्वभावों की नोंक झोंक करने की कोशिश कर रही है। बोला, "ऐसी कोई बात नहीं। हमने बड़े लाड़ प्यार से ही पाला था उसे। शायद हमारे प्यार से तंग आकर वह भाग गया हो। मेरी बहन हमेशा उसके गले में बांहें डालकर उसे पुचकारती रहती। मेरी मां तो मंदिर का प्रसाद विभूत-कुंकुम तक उसके माथे पर लगा देती।"

चित्रा हंस पड़ी। गणेश को इस बात पर गर्व हुआ कि चित्रा को उसने हंसा दिया है। शायद टॉमी को अचानक पता लगा गया कि मेरा प्यार उसके प्रति नहीं है, इसलिए उसके सहलाने का तिरस्कार करते हुए नीचे फर्श पर जाकर लेट गया।

मामी (चित्रा की मां) बोली, "अब मैं सोचने लगी हूं कि टॉमी को किसी और के यहां छोड़ दें तो वह क्या करेगा?"

"हम उसे कहीं नहीं छोड़ेंगे। हम जहां भी जाएंगे वह हमारे साथ आएगा। है न टॉमी?" चित्रा फर्श पर टॉमी के पास बैठ उसे दुलारने लगी।

"सुना है, अंग्रेज लोगों को जब शहर छोड़ना पड़ता अपने कुत्ते को गोली मार देते थे। पता नहीं, उनसे यह कैसे संभव होता है।" चित्रा की मां सिहर उठी।

"हां, बड़ी क्रूरतापूर्ण प्रथा है।" गणेश ने मामी की हां में हां मिलाया। मेरी ही तरह यह भी भावुक है, इस ख्याल से मामी ने बड़ी संतृप्ति के साथ उसे देखा। चित्रा ने फौरन अंग्रेजों का पक्ष ले लिया, मानो उसे संकट में डालना चाहती हो, आजमाना चाहती हो कि वह उसका पक्ष लेगा या मां का।

लेकिन उसने अपने पहले वाले विचार को ही फिर से दुहराया, उसी पर अड़ा रहा। वह साबित करना चाहता था कि मैं कोई बुद्धूराम नहीं हूं जो हवा का रुख देखकर विचार बदलता रहूं। इस तरह वह उसके आदर का पात्र बन गया।

अब यहां पर खड़े खड़े सोचते वक्त वह सारी बातें गलत लगीं। पहले-पहल वह जब

उनके यहां गया था, उस दिन जिस ढंग से उनके सामने पेश आया था, जो कुछ बोला ...सारी बातें गलत हैं। उस दिन उनको प्रभावित करने के लिए अपने स्वभाव के खिलाफ ऐसे ढोंग रचाने की जरूरत नहीं थी। लेकिन कौन सी बात ढोंग है और कौन सी सच? कौन सी बात उसकी प्रकृति के खिलाफ है? हम तो न जाने कैसे जोश और उमंग में आकर, हर पल, हर क्षण, किस किस रूप में अपने को पेश करते रहते हैं। हर मौके और हालातों में कोई एक सच लगती है, महत्वपूर्ण लगती है और हमें संचालित करती है। हमें संचालित करने वाली हर सच्चाई झूठी होती है, इसका एहसास आखिर एक दिन हमें होता है और हम एकदम निराश हो जाते हैं। उन क्षणों में कुछ और बातें जो सच्ची लगती हैं उनकी शरण ले लेते हैं। मानव जीवन की, उसकी जिंदगी की गतिशीलता, उसकी कोशिशों की बुनियाद, आखिर इस तरह के मायामय और आभासी भ्रम ही तो हैं।

गणेश ने एक बार जोर से सिर हिला लिया मानो इन विचारों के उधेड़बुन से अपने को बचाना चाहता हो। इस तरह के चिंतन और विचार दिन ब दिन कितने पैने, प्रखर बनते जा रहे हैं! ये विचार उसे तथा उसके जीवन से ताल्लुक रखने वाले लोगों को चीर फाड़ करके उनकी छानबीन करते रहते हैं। मेरी विचारधारा के इतनी पैनी होने में और आगे बढ़ती रहने वाली उसकी यात्रा में, प्रोफेसर, आप का भी बड़ा हाथ है।

लेकिन अब तो कभी कभी ऐसा लगता है कि यदि वह इस यात्रा को न अपनाता तो कितना अच्छा होता।

साढ़े छह बज गए। अब तक चित्रा का पता नहीं। उसे गुस्सा आया। लगा थिएटर के द्वार पर खड़ा दरबान उसे विचित्र ढंग से देख रहा है। 'स्पेयर टिकट है, सर?' यों पूछकर कुछ लोग जले पर नमक छिड़क रहे थे। उससे रहा न गया तो पास बैठे 'शू' पालिश करनेवाले लड़के के पास जाकर अपना शू पालिश करवाने लगा।

उसने पूछा, "टिकट नहीं मिला, साब?" फिर कहा, "बड़ी अच्छी फिल्म है, साब।"

"तूने देख लिया?"

"तीन दफे, साब!"

"उतनी अच्छी फिल्म है?"

"मुझे वह हीरोइन बड़ी अच्छी लगती है, साब।"

गणेश को उस छोकरे से ईर्ष्या होने लगी। हालीवुड की अभिनेत्री से उस छोकरे को जो गुदगुदी और मानसिक संतृप्ति मिली है, यह ईर्ष्या का विषय था। ऐसी मस्ती और तृप्ति उसे अब कभी नहीं मिलेगी। क्योंकि इस अभिनेत्री से उसका मोहभंग हो गया था, उसके भ्रम चूर चूर हो गए थे। इस अभिनेत्री पर वह मोहित था, आसक्त था। वह जिस नारीत्व की जिंदगी की प्रतीक बनी रही, उस नारीत्व व जिंदगी पर उसका वह भ्रम अब न रहा।

आजाद स्त्री, आजाद पुरुष, मुक्त खुला प्रेम, बंधन रहित जीवन, ये सारी बातें, उन दिनों थिएटर में बैठे रहते समय लगता था कि उसके जीवन में भी संभव हैं। वह अपने को मां बाप, भाई बहन से भिन्न विशिष्ट व्यक्तित्व वाला समझने लगा था। उसके दिल में उनके प्रति नफरत और अवहेलना की भावना उमड़ती रही। उनकी प्रश्न रहित, मूर्खतापूर्ण तृप्ति पर, उनकी नकली बैसाखियों पर वह बौखला उठा। गला फाड़कर चिल्लाने का मन हो रहा था कि ऐसे झूठे रिश्ते क्यों पालते हो? इस व्यवस्था को जड़ से उखाड़कर धराशायी करके उनको चौंका देने के लिए वह आतुर हो उठा। जो लोग उसे अपने जैसे सामान्य आदमी मानते थे, उनको चकित करने को मन कर रहा था। लेकिन वह ऐसा कर क्यों नहीं पाया? कहां, किसने उसकी कोशिशों को भंग कर दिया? या उसी के अंदर उसी का एक अंश हर क्षण उसके खिलाफ काम करता रहा?

बूट पालिश करते हुए बैठे उस छोकरे की ओर देखते समय उसे लगा कि अब तक जिंदगी में उसके किए सफर, उसके द्वारा अपनाए गए मार्ग, उसकी हार और जीत, सब कुछ अर्थहीन हैं। सोचा—अरे छोकरे! तू मुझसे हजारों गुणा पवित्र है। इस क्षण में तू बूट पालिश करने वाला छोकरा है और मैं उस बूट को पहनने वाला आदमी हूं, इसे मैं न्याय-संगत ठहरा नहीं पाता। तकदीर? सामाजिक व्यवस्था? जो भी हो, इस व्यवस्था को अपने लिए सुविधाजनक माना। तभी तो इसके खिलाफ मैंने आवाज नहीं उठाई, क्रांति का परचम नहीं उठाया। समाज की अन्य कुछ और व्यवस्थाओं के विरुद्ध जैसे मैंने विद्रोह नहीं किया था, ठीक वैसे ही।

'टप' छोकरे ने अपनी लकड़ी वाली पेटी पर थाप लगाई। इसका मतलब था ''पैर बदलिएगा''। गणेश ने अपना दूसरा पैर पेटी के ऊपर रखा।

प्रोफेसर साहब! उस दिन आपके घर में कुत्तों के बारे में चर्चा करने के बाद हम लोग नाटकों पर चर्चा करने लगे थे। चित्रा ने पूछा था कि मुझे वे नाटक पसंद थे कि नहीं। मैं बोला, ''केवल एक ही दिन गया था। उस दिन तो नाटक निरा बकवास लगा।'' तुरंत वह बोली, ''स्टुपिड मेलोड्रामा।'' इस तरह के अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग की शुरुआत एक दो साल पहले हुई होगी। बच्चे के हाथ में जब नया खिलौना आ जाता है, पुराने खिलौने से ज्यादा वह उससे प्यार करने लगता है, उस पर गर्व करने लगता है। अंग्रेजी शब्दों के प्रति चित्रा का मोह इसी भावना की याद दिला रहा था।

मैं शब्दों से ऊब गया था। शब्दों से मेरा दिल उचट गया था। शब्दों के सागर में गोता लगाते रहना ही तो मेरा धंधा है। चित्रा को जितने शब्दों का ज्ञान था उतना उसकी मां को नहीं। मगर उन नाटकों ने हम दोनों से ज्यादा भावात्मक रूप से उसे प्रभावित कर दिया था। चित्रा ने मां का मजाक उड़ाते हुए बताया था कि उनमें से एकाध नाटक देखते

वक्त उसकी मां ने रोते रोते दो तीन रूमाल गीले कर दिए। लेकिन मुझे वह रुदन और आंसू प्रशंसा और आदर के योग्य लगे। मैंने कहा, "मेरी मां भी ऐसी ही है। सिनेमा, नाटक देखते समय वह भी रो पड़ती है। क्या पात्रों का दुख इनसे सहा नहीं जाता।" चित्रा को इस बात पर गर्व था कि वह इस कदर भावुक नहीं है। लेकिन मुझे संदेह होने लगा कि क्या सचमुच यह गर्व करने की बात है?

इसके बाद आप आए। हमारी बातचीत में आपने भाग लिया। आपकी गैरहाजिरी में मेरा आना, आपकी पत्नी और बेटी से घुल मिलकर बातें करते रहना, आप को उतना अच्छा नहीं लगा, इसे मैंने ताड़ लिया।

"तुमने इन दोनों को उल्लू बनाया होगा मगर मुझे नहीं बना सकते।" शायद मन में यही सोचकर, मेरी हर बात का आपने जानबूझकर विरोध किया। मेरे तर्कों में से गलतियां निकाल कर मेरा मुंह बंद करने की कोशिश की। हां, उस दिन और उसके बाद कई बार आपने बड़ी सावधानी से मुझे जरा फासले पर ही रखा था। लेकिन इस बात पर मैं आप को दोषी नहीं ठहराता। शायद आप ने इसकी परीक्षा लेना उचित समझा होगा। वह कौन सी बात थी जो मुझे आपके पास खींच लाई थी? वह वास्तविक ज्ञान-पिपासा थी या नहीं। आप से बातें करने पर स्वयं मुझे भी ऐसा संदेह हुआ था। क्या वह ज्ञान-पिपासा थी अथवा...?

उस दिन मैंनें आपके समक्ष इन नाटकों के समर्थन में दलील रखी थी। मैंने कहा, "केवल बौद्धिक धरातल पर इनके गुण-अवगुण का विचार करना युक्तियुक्त नहीं होगा। क्योंकि ऐसे नाटकों से आम जनता को एक तरह की संतृप्ति और सांत्वना मिलती है। इसलिए मैं इसी संतृप्ति को महत्व देता हूं, न कि बौद्धिक खुराक को।"

आप ने पूछा था, "वह संतृप्ति निरी भ्रमात्मक रहे तो भी?

मैंने कहा, "रहने दीजिए—जिंदगी खुद एक भ्रम है।"

आप बोले, "मैं जो कह रहा हूं वह निकृष्ट और निचले स्तर के माया-मोहों की बात है।" शायद आप के शब्दों में श्लेष था।

"कौन सा स्तरीय है और कौन निम्नस्तरीय इस बात पर हर व्यक्ति का दृष्टिकोण अलग अलग हो सकता है?" मैंने तर्क दिया।

आपने कहा था, "हमें अपने आप से संपर्क कर लेने में जो भी चीज काम नहीं आती वह स्तरीय नहीं कहला सकती। अर्थात जो अपने आप को समझने में बाधक है।"

"ऐसी बाधा का बोध सबको होना है न?"

"इसका जरूर एहसास होगा। हम में से हर एक व्यक्ति के अंदर बारीक कसौटी है। खाद्य-पदार्थ की रुचि जताने के लिए जिस तरह जीभ होती है, उसी तरह भावना और संवेदना

का अनुभव कराने के लिए एक विशिष्ट जिह्वा होती है। हमें इस जीभ को साफ सुथरा रखना है। उसके विचारों को समझकर उसका आदर करना हमें जानना है। जो पौष्टिक नहीं है, कॉफी, चाय, सिगरेट आदि उनकी आदत पड़ जाती है। लेकिन इन्हीं को भोजन के रूप में नहीं ले सकते। केवल पौष्टिक पदार्थों का ही आहार करें तब भी उसमें कोई रस नहीं रहेगा, फीका लगेगा। हमें अपनी रुचि के लिए भी खाना पड़ता है। कुल मिलाकर खाद्य-पदार्थों का विवेचन करना, हम क्या खाएं, कितना खाएं, कैसे खाएं इन सब का इल्म होना चाहिए। इसके लिए अभ्यास और अनुभव की जरूरत है। बच्चों को जिस तरह शिक्षा दी जाती है, वैसे यह शिक्षा हमें न घर में दी गई है न स्कूल में।''

आप बोलते जा रहे थे, और मैं सुनता रहा था। बीच में कुछ नहीं बोला।

इसके बाद जब कभी मैं आपके यहां आता था, अपने मन के उलझे तारों के साथ ही आता था। आपने हर बार बड़े सब्र से काम लिया और मेरे मन के तारों को स्वर और लय में बांधने की बड़ी कोशिशें कीं। हमारे संवाद को कई बार आप चरम सीमा तक ले गए हैं।

किन किन बातों पर हमने चर्चा की थी, इस पर विचार करके देखने समय लगता है, ऐसा कोई शीर्षक न रहा जिसके बारे में हमने चर्चा न की हो। कुत्तों के बारे में, देश, परिवार, विवाह इत्यादि के सिलसिले में उनकी व्यवस्था पर...

लोगों से मेरे नाते-रिश्ते, मेरा प्यार, जिनमें मैं हार चुका था, अब उन सब बातों को नए दृष्टिकोण से विवेचना करने लगा। हां, अपनी तरफ से नहीं। विपक्षी के स्थान से। मुझे लगता है कि मैं इतने दिनों से एक ऐसी सहचर व साथी की तलाश करता रहा जो मेरे वैयक्तिक एकाकीपन में बाधा नहीं डाले, और एक ऐसी व्यवस्था जिसमें साधन रूप में मेरा प्रयोग न किया जाए बल्कि मैं उसका संचालन करूं, इसी की मुझे तलाश थी।

मनुष्यों पर से मेरी आस्था उठ गई थी। आपने फिर से उस आस्था को, विश्वास को जगाया। कभी किसी की पकड़ में न आने वाले निरंकुश घोड़े के समान मैं अंधाधुंध दौड़ रहा था। मुझे कभी कभी ऐसा महसूस होता था कि आप ने बड़ी लाघवता से उसे पकड़कर लगाम चढ़ा दी, नाल भी ठोंक दी। लेकिन कभी तो यह सोचता हूं, यह सब क्या बकवास है; निरंकुश घोड़ा, उसका किसी की पकड़ में आना! छोड़िए इन बातों को। हां, इतना तो संभव है, अपनी इस अंधाधुंध दौड़ से मेरा थकना और आप का परिचय, दोनों एक साथ घटित हुए हों।

यह भी तो संभव है!

मनुष्यों पर से मेरा विश्वास उठ गया था और आपने फिर से मेरे हताश दिल में विश्वास को जगा दिया था। मुझे किसी से न कोई मतलब था, न श्रद्धा, न लगन, ऐसा मैं विरक्त

हो चुका था। आपने मेरे आहत दिल को आश्वासन दिया कि इस दुनिया में ऐसे भी लोग हैं, जिनके दिलों में औरों के प्रति भी ममतापूर्ण श्रद्धा है। दस साल पहले आपसे मेरी मुलाकात हुई होती तो मेरा ख्याल है कि मेरी जिंदगी का रुख बदल गया होता।

लेकिन दस साल पहले, चित्रा दस साल की भी नहीं रही होगी।

जिंदगी न जाने कितनी विचित्र घटनाओं को रूप देती है। किसी एक की तलाश में भटकते वक्त कुछ और दिला देती है। पहले चित्रा की ओर आकर्षित होकर आपके यहां आया, बाद में आपसे मिलने के लिए भी आता था।

फिर एक चरण के बाद क्या मैं केवल आप से मिलने नहीं आया था?

इस समय का मेरा शक यही है।

चित्रा की वजह से भी कई बार हमारे बीच में अनबन हुआ है। फिर से बातें करने की कोशिश में जब हम हार जाते, ऐसी तनावपूर्ण खामोशी में मुझे आप से जल्दी जल्दी विदा लेना पड़ता था। असल में मेरा आने का उद्देश्य ही क्या है, इस पर आप को शक होता था। मुझे तो अपने आप पर संदेह होता था।

"चित्रा! सुपारी है क्या? चित्रा! आज का अखबार कहां है?" यों किसी न किसी बहाने से आप उसे मेरे सामने बुला लेते थे। अर्थात उससे बातें करने के लिए मुझे मौका देते थे। कभी कभी हम दोनों को अकेले में बातें करने के लिए छोड़कर आप चले जाते थे।

आप शायद यही मुझे समझाना चाहते थे, अरे भाई! ये बहाने और बेचैनी क्यों बेकार पाल रहे हो? अगर तुम केवल चित्रा के लिए आए हो तो या तो सीधे उसे बता दो या मुझे बता दो।

हम दोनों के बीच मतभेद का कारण यही तो था। इस लिहाज से मैंने उस समस्या का समाधान ढूंढ़ने की कोशिश की होती। अपने विचार को शब्दों का जामा पहनाया होता। आपके संदेह को उसके पैदा होने के तीन साल बाद पुष्ट किया होता। अपने मां बाप से आप की मुलाकात का इंतजाम कराता। लेकिन यह सब कुछ झटपट, कितनी जल्दी घटित हो गया।

अगले हफ्ते हमारी शादी होने वाली है।

लेकिन??

चित्रा का शंका रहित दृढ़ निश्चय ही मेरे लिए सहारा बना था। लेकिन हम दोनों जिस गठबंधन में बंधने वाले हैं, उस व्यवस्था में स्थायित्व का जो तत्व है, इस भय की वजह से उसका वह निश्चय डांवाडोल हो रहा है। इसे मैं साफ देख पा रहा हूं। मुझमें इसका ज्ञानोदय अभी हो रहा है कि उसकी वह दृढ़ता अनुभवहीनता पर आधारित थी। पहले

ही वह मेरे परिवार वालों के बारे में काफी गहराई से प्रश्न कर चुकी है। मेरी मां के बारे में, मेरी बहन के बारे में वह पूछताछ किया करती थी। अब उन लोगों से मिलने के बाद भी प्रश्न का तांता निरंतर बना हुआ है। लेकिन अब उसकी पूछताछ से एक तरह का भय और चिंता सिर उठा रही है। उसका यह भय मेरा दिल दुखा रहा है। मैं अपने आप को उस बहेलिए के रूप में देखता हूं जो आजादी से उड़ानें भरती कोयलिया को पिंजड़े में बंद करने पर तुला हुआ है। यह भय और यह अपराध बोध! क्या इन्हीं की बुनियाद पर हम अपनी जिंदगी शुरू करने वाले हैं।

मैं अपने परिवार वालों के बारे में, एकाध शब्दों में उसे क्या समझा पाऊंगा? क्या क्या बताऊंगा? आपके बारे में कहिए या चित्रा के बारे में, मैं अपने परिवार वालों से या अन्य जनों से क्या बता सकता हूं? चार साल पहले मेरे परिवार वाले मद्रास में मेरे भाई के साथ रहने चले गए, तब तक हम सब लोग दिल्ली में, एक साथ एक ही छत के नीचे रहे। एक ही घर में रहे मगर उनके बारे में ज्यादा कुछ जानकारी नहीं है। प्रोफेसर साहब! मैं अपने को ही पहचान नहीं पा रहा हूं, ऐसी हालत में औरों के बारे में किसी से क्या कहूं?

स्वयं चित्रा को शादी की इस व्यवस्था से... इसमें उसे जो भूमिका अदा करनी है (पत्नी-बहू के रूप में) इसका विचार करके इतना डर लगता है तो उन दिनों भाभी कितनी भयभीत रही होगी, मैं यही सोच रहा हूं। वही घर की बड़ी बहू थी, इस नाते उसी को सास, ससुर के साथ हमेशा रहना था न? लेकिन उस बेचारी को ऐसे प्रश्नों को पूछने या तहकीकात करने का मौका नहीं मिला था। उनकी जन्मकुंडलियां मिली थीं। एक दिन बड़े भैया, मां, बाप और बहन उनके यहां गए। मुंह मीठा किया। सूजी का हलवा और पकौड़ियां खाईं, लड़की की चाल-ढाल, आवाज और नाक-नक्शे की जांच करके घर लौट आए। यह सब दस मिनट में हो गया। मां की राय थी कि लड़की बड़ी सुशील है, घरेलू है। पिताजी ने कहा, "मुझे लगता है कि लड़की के पिता जरा ऊंचा सुनते हैं। यह परंपरागत रोग तो नहीं?" मेरी बहन की राय में लड़की स्नेह करने वाली लगती थी। भैया ने कहा, "उसकी मुस्कराहट मुझे अच्छी लगी। (हाय! भाभी! इतनी परेशानियों के बीच में तुम कैसे मुस्करा पाई?) मेरे ख्याल में दस मिनट की उस अवधि में तुम्हें वह कठिन भूमिका निभानी पड़ी होगी, बड़ी बड़ी नामी गरामी अभिनेत्रियों ने अपने संपूर्ण फिल्मी जीवन में जिसका अभिनय नहीं किया होगा। मैंने एक बार तुमसे कहा था न भाभी, "अगर मैं तुम्हारी जगह पर होता तो यही कहता, मुझे कुछ नहीं चाहिए। सब चले जाएं यहां से! भाड़ में जाए यह शादी।" तुमने तब मुस्करा कर कहा था, "धत, हट जा पगले। तुम औरत नहीं हो। तभी तो यों बोल रहे हो।"

अभी चित्रा की समस्याएं गणेश की समझ में आ रही हैं। चित्रा में घटित होने वाले परिवर्तनों का विश्लेषण करने पर वह पाता है कि उसके (गणेश के) परिवार वालों को प्रसन्न करने के लिए उसे कैसे कैसे वेश धारण करने होंगे, क्या क्या करने पड़ेंगे इनका विचार करके वह घबरा रही है। गणेश को उसकी समस्याएं अभी समझ में आती हैं। चित्रा में जो परिवर्तन नजर आ रहे हैं, उन्हें देखते वक्त लगता है कि चित्रा इस बात पर चिंतित हो रही है, उसके भ्रमजाल कटने लगे हैं। जिंदगी एक सुहावनी शाम का मधुर वार्तालाप नहीं है, सिनेमा, ड्रामा देखना या सैर करना और रेस्तरां में कॉफी पीना मात्र नहीं है। रोज सुबह उठना, हाथ मुंह धोना, ब्रश करके नहाना, कपड़ा पहन कर बस के लिए दौड़ना, दफ्तर जाना, शाम को फिर से बस पकड़ कर घर लौटना—यह जिंदगी है। कॉफी बनाना, सब्जी काटना, खाना पकाना, दोसा का आटा पीसना, कपड़ा धोना, झाडू पोंछा करना, बर्तन मांजना, दुकान पर जा कर सौदा लाना, राशन ले आना, ज्वर होने पर डाक्टर के पास जाना, बच्चा पैदा करना, उसका पालन करना, जरूरत पड़ने पर उसे डाक्टर के पास ले जाना, न जाने कहां कहां खड़े होकर इधर उधर मारा मारा फिरना, भटक कर कहीं बैठकर आखिर थका मांदा घर लौटना, पांव पसार कर लेट जाना, अगले दिन पौ फटने तक सोते रहना—यही है जिंदगी। ऊबन और थकान से भरी होती है जिंदगी। भूख लगती है इसलिए खाना पड़ता है। खाने के लिए पकाना होता है। पकाने के लिए कई सामग्रियों की जरूरत पड़ती है। उन्हें खरीदने के लिए पैसा चाहिए। पैसा कमाने के लिए काम करना पड़ता है। फिर से भूख लगती है। फिर से यही चक्कर लगा रहता है। एक और भूख लगती है, इसके लिए शादी करनी पड़ती है। शुरू शुरू में नौकरी करने का उसका भी मन न रहा। मगर करें क्या? हर कोई यही करते हैं।

सब लोग नौकरी पर, काम पर जाते हैं। शादी ब्याह करते हैं। वह भी उनमें से एक है। चित्रा भी नौकरी करना चाहती है। पूछती है कि इस पर मेरी क्या राय है। मुझे इस चीज से क्या मतलब है? वह चाहे तो नौकरी करे। बस के लिए वह भी क्यू में खड़ी रहे, 'नारी स्वतंत्रता' की दुहाई देते हुए सुबह दस बजे से शाम के पांच बजे तक किसी दफ्तर में जाकर बैठी रहे या खड़ी खड़ी करे, और शाम को लौट आए। मुझे क्या पड़ी है? हुम... नारी की आजादी! यह क्या खाक है? प्रिये! इस दुनिया में आजादी जैसी कोई चीज नहीं है। तुम्हारी मां ने जो गलती की थी, उससे तुम बचना चाहती हो, और अपने पिता की गलती से मैं। लेकिन एक बोरियत से बचकर हम एक दूसरी बोरियत में फंस जाते हैं, बस और कुछ नहीं। बचाव नाम की कोई चीज नहीं। न जाने किन किन मुसीबतों से बचने की कोशिश करते, मारे मारे फिरते, भाग दौड़ लगाते रहते हैं। आखिर इन सब से प्राप्ति पैरों के दर्द को छोड़कर कुछ नहीं है।

'टक।'

पालिश का काम पूरा हो गया।

उस छोकरे को दस पैसा ज्यादा देकर वह थिएटर के द्वार की ओर बढ़ा। चित्रा अभी तक नहीं आई है; उसके पैर बेहद दुखने लगे। लगा, अब खड़ा रहना संभव नहीं। गणेश वहीं थिएटर के द्वार पर सीढ़ियों के निकट के चबूतरे पर बैठ गया। पैरों को आराम से पसार लिया। वाह, कितना आराम मिल रहा है। थिएटर के अंदर यों पांव पसारे आराम नहीं कर पाते। सोचने लगा, चित्रा और थोड़ा विलंब कर ले। गणेश को इस फिल्म में ज्यादा दिलचस्पी नहीं थी। वह तो जानवरों पर की वह फिल्म देखना चाहता था। वन्य जीवन पर बनी वही फिल्म उसे दिखाना चाहता था वह। लेकिन चित्रा के विचार में ऐसी फिल्म वह इसलिए दिखाना चाहता है कि मुझे अभी बच्ची समझ बैठा है।

तुम्हें नौकरी की क्या जरूरत है? यदि वह ऐसा पूछता तो शायद चित्रा उसे प्रतिक्रियावादी कह देती।

यदि वह नाराज हो जाए कि क्यों इतनी देर प्रतीक्षा कराई तो इसका अर्थ वह यही निकालती कि वह तिल का ताड़ बना रहा है।

चित्रा की आदतें, उसके विचार, उसकी रुचियां, इच्छाएं, आदि बहुत सी बातों पर उसकी सहमति न होने पर भी उसे उसका साथ देना पड़ता है; समझौता कर लेना पड़ता है।

जो फिल्म अपने को पसंद नहीं थी, उसे देखने के लिए अपने से दस साल छोटी चित्रा की इंतजारी में आधे घंटे से अधिक उसे बैठा रहना पड़ा था, जब यह ख्याल आया तो उसे अपने आप पर तरस आने लगा, हंसी आने लगी। इसी तरह अपने को इंतजारी में बिठाए रखने के कारण उसने पहले एक लड़की का तिरस्कार किया था।

एक और लड़की से एक बार उसे अलग होना पड़ा था। वह अपने आप को ज्यादा चतुर मानती थी, जज्बात की बनिस्बत बातों की धनी लग रही थी, इसलिए मन खट्टा हो गया था और हट जाना पड़ा। एक अन्य लड़की मिली जिसे हमेशा उसे इंतजारी में रखने में मजा आता था। इसीलिए उससे मिलना छोड़ दिया था।

लेकिन अब यह चित्रा भी कैसी लड़की है! क्या यह भी अपने आपको बहुत मानती है? यह भावुक है या बुद्धिवादी? नहीं, बिल्कुल नहीं। जैसे भी हो वह इन सब को ही नहीं, बल्कि और भी कितनी ही बातों को सहने का, झेलने का आदी बनता जा रहा है।

लगता है, इस तरह का समझौता यदि पहले कर लिया होता तो अच्छा होता। पांच साल पहले, तीन साल पहले। अब भी क्यों समझौता करता है? क्या वह ऐसा किए बिना नहीं रह सकता था?

एकाएक उसके मन में आया, वहां से उठकर भाग जाए। प्रोफेसर से और अपने मां बाप से कह दे कि यह शादी रोक दी जाए। प्रोफेसर साहब! आइ एम सॉरी। मैं व्यवस्था का विरोधी हूं। आप पूछना चाहते हैं कि फिर क्यों मैं ऐसा दिखावा करता रहा कि आप के विचारों से सहमत हूं? मुझे मालूम नहीं था, सचमुच मालूम नहीं था—शायद...

यह तो सही है; लेकिन आप व्यवस्था के पक्ष में क्यों बोलते रहे? आप को उन पर पूरा भरोसा था या...

या मुझे उसमें फंसाने का इरादा था आपका?

आपने मुझे धोखा दिया है। नहीं-नहीं, मैंने अपने आप धोखा खाया है...

आज ये पैर क्यों इतने दुखते हैं? अब तक वह जितना चलता भटकता रहा, वह सब एक साथ मिलकर आज इतना दर्द दे रहे हैं क्या? लगा, उसकी सारी दौड़धूप इकट्ठी होकर दुख रही है। लड़कियों के पीछे जितना फिरता रहा, चक्कर काटता रहा, लड़कियों से मुंह मोड़कर कितनी ही बार दौड़ लगाई थी, ओह! लगता है, अब नए सिरे से किसी के पीछे दौड़ न पाएगा। हां, अब किसी का पीछा छोड़कर भी वह भाग नहीं सकता।

कुछ दूरी पर चित्रा और उसके भाई आते दिखाई दे रहे थे। उस क्षण वह समझ न पाया कि उसके मन में जो घटित हो रहा है वह खुशी है या रंज।

पुराना बुड्ढा और नई दुनिया

फुर्र...र्र... से पूरी रफ्तार में आती मोटरसाइकिल की घड़घड़ाहट से धरती की छाती दहल उठी, नागराजन हड़बड़ाते हुए फुटपाथ की ओर लपके। हां, यह वही नौजवान था। उसकी मोटरसाइकिल दिमाग को सन्न कर देने वाली भयंकर आवाज के साथ उन्हें पार करती हुई गुजरी तो लगा वह घड़घड़ाहट अभी उन्हें नीचे गिराकर छिन्न भिन्न कर देगी।

बस, पल भर की बात है। वह नौजवान और उसकी मोटरसाइकिल दोनों आंखों से ओझल हो गए।

दिल की धड़कनों के शांत होने में कुछ क्षण लगे। उनके दिल में उस युवक के प्रति फिर एक बार ढेर सारी घृणा उमड़ आई। इस क्षण ने साबित कर दिया कि वह युवक जानबूझकर ही ऐसा कर रहा है। जब भी वे अपने घर से बाहर कदम रखते उसकी मोटर-साइकिल कहीं से उनका पीछा करती हुई आ धमकती। लगता है, उन्हें इस तरह आतंकित करने, परेशानी में डालने से उसे कोई क्रूरतापूर्ण आनंद मिल रहा होगा। आजकल के इन छोकरों को न किसी से लगाव है न किसी विषय की पकड़। किसी गंभीर विषय के साथ अपने को संबंधित करते हुए उसकी गहराई तक पहुंच कर परिणामों का सामना करने का साहस इनमें बिल्कुल नहीं है। स्वयं अपने द्वारा बुनी एक स्थाई 'बोरियत' में उलझते रहने वाले इन छोकरों को ऐसे लुच्चेपन में ही 'थ्रिल' मिलता है। बुजुर्ग की घबराहट उसके लिए एस.एस.डी. का नशा है, जीवन रूपी 'उपमा' (दलिया) के लिए जैसे चटपटा अचार मिल गया हो।

नहीं, अभी सही रूपक नहीं बंधा है। वह तो पंजाबी नौजवान है। उसके लिए 'उपमा' का यह उदाहरण सही नहीं है। क्योंकि 'उपमा' (सूजी का नमकीन हलवा) नागराजन के लिए नीरसता का प्रतीक हो सकता है, उस नौजवान के लिए ऐसा होना जरूरी नहीं है। चाहे तो 'रोटी' कहिए या पूड़ी या समोसा कह लीजिए।

नागराजन जब सैलून पहुंचे, बाहरी बरामदे की कुर्सी के साथ पीठ टिकाए शान से बैठा एक युवक कच्ची मूली को चाकू से काट काट कर खा रहा था। उनके अंदर प्रवेश करते ही उसने उनकी ओर लापरवाही से देखा। चुनौती भरी नजर।

रोटी या समोसा या पूड़ी... इसी सिलसिले में अब उन्होंने 'कच्ची मूली' जोड़ ली।

मूली को दांतों से कुतरता हुआ वह ऊब गया होगा शायद। इसीलिए चाकू से काट काट कर चबा रहां है। उस मूली वाले लड़के के अलावा सैलून में और चार पांच लोग बैठे थे, उनमें दो एक अधेड़ उम्र के थे। दो व्यक्ति उनके जैसे साठ की दहलीज पर थे। इन लोगों को देखकर उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ मगर अचरज हुआ उस मूली वाले लड़के पर, और सिगरेट फूंकते, फिल्म फेयर के पन्नों को उलटते बैठे युवक पर। उस मूली वाले लड़के से यह लड़का दो तीन बरस बड़ा होगा। उनके घने, बिखरे बाल ऐलान कर रहे थे कि उन्हें सैलून में आए छह महीने से ज्यादा हो गए होंगे। इस उम्र के नौजवानों से किसी भी दृष्टि में ये भिन्न नहीं हैं। फिर आज एकाएक ये क्यों सैलून में टपक पड़े हैं? शायद कहीं अपने बालों की बाजी लगाकर हार गए हों? या हो सकता है, ये लड़के भी सड़क पर आवारागर्दी करने वाले गुंडों में शामिल हों, उस मोटरसाइकिल वाले जवान की तरह। हो सकता है, ये छोकरे सवेरे से लेकर रात तक बस स्टैंड, फल और चाय की दुकानें, सैलून—यों हर जगह जाकर बैठ जाते, आने जाने वालों को छेड़ते छाड़ते रहते। दुकानदार भी चुप रहते, इन्हें कुछ कहने का साहस नहीं कर पाते। यह मानो उनके दैनंदिन जीवन का अंग सा बन गया है। जिनके अंदर रोष था, वे भी ठंडे पड़ गए। न जाने किस घर के लाड़ले हैं? किनके सुपुत्र हैं? कौन जाने? शायद इनके पिताजी का बड़े बड़े आदमियों से संपर्क रहा होगा। बड़ों बड़ों तक पहुंच होगी। अनावश्यक झंझट क्यों मोल लें?

हां, आजकल गुंडागर्दी एक अनोखा संस्कार बनी है, और मान मर्यादा का अधिकारी हो गई है न?

'फिल्म फेयर' वाले लड़के के पास उस दिन का दैनिक पड़ा था। अपने घर में वह दैनिक मंगवाते नहीं हैं, लेकिन असल में यही उनका प्रिय दैनिक अखबार था। उसे हाथ में लिए नागराजन बेंच पर बैठे हुए पढ़ने लगे।

दिल्ली आने के बाद पिछले पच्चीस सालों से रोज सुबह यही अखबार पढ़ा करते थे। अर्थात नौकरी से अवकाश प्राप्त करने तक। लेकिन अब रिटायर होकर, बेटे के साथ उनके घर में रहते वक्त, बेटा अपनी मर्जी से जो दैनिक मंगवाता है, उसे ही उन्हें भी पढ़ना पड़ता है। यदि वे चाहें तो उनकी पसंद का दैनिक भी मंगवाने को वह तैयार था, मगर उन्होंने ही मना कर दिया। एक घर में दो दैनिक क्यों? नतीजा यह हुआ कि आजकल उन्हें वह दैनिक पढ़ने से पहले जैसी तृप्ति नहीं मिलती।

आज बहुत दिनों के बाद अपना वह पुराना मनपसंद अखबार मिला तो एक सांस में बड़ी दिलचस्पी से पढ़ डाला। उन्हें अनोखे आनंद की अनुभूति हुई। इस दैनिक के संपादकीय लेख, शीर्षक, खबरें देने के अंदाज में एक मर्यादापूर्ण संयम और शालीनता थी। घर में जो दैनिक मंगा रहे हैं, उसमें इन खूबियों का सर्वथा अभाव था। लेकिन उनके बेटे

को वही दैनिक पसंद है। सनसनीदार खबरें, चटपटे हेडलाईंस यही अच्छे लगते हैं। हां, जैसे उसकी पत्नी का बनाया तीखा गरम खाना उसे बेहद पसंद आता है वैसे ही। यह सब अपनी अपनी रुचि की बात है, और क्या?

उनको अपनी बहू के हाथ का खाना पसंद नहीं है। क्या करें? पसंद आए न आए उन्हें अब वही खाना पड़ेगा। कल्याणी उन्हें छोड़कर सदा के लिए चल बसी। अपनी शांति और सात्विक प्रकृति के अनुरूप उसकी बनाई रसोई सात्विक रहती थी; नीरस-फीकी नहीं, बल्कि एकदम स्वादिष्ट। जब तक वह जीवित रही, पति के बाल कटवाने के दिनों को उत्सव के समान वैभव से मनाती थी। उस दिन कोई न कोई खास चीज बनाती थी। सैलून से लौटते ही उन्हें कॉफी का दूसरा गिलास पेश करती थी। मालिश करने के लिए तेल और स्नान के लिए गरम पानी तैयार मिलता था। वह बेचारी पुराने जमाने की महिला थी, नारी-स्वतंत्रता आंदोलन से एकदम अप्रभावित। पति की सेवा टहल करने में ही जीवन की पूर्णता का अनुभव करने वाली। एकाएक उन्हें अपने मृत पत्नी के प्रति गुस्सा आया। जब तक वह जिंदा रही उनका बेहद ख्याल रखती और लाड़ प्यार दिखाती रही, इसी कारण आज उनको इतना कष्ट उठाना पड़ रहा है। 'पावलोव' के कुत्ते की तरह व्याकुल होना पड़ रहा है। बाल कटवाने के दिन पर स्वादिष्ट और चटपटे नाश्ते के लिए जीभ तरसती रह जाती है।

आज सवेरे से उनके पेट में चूहे दौड़ने लगे हैं। लेकिन घर में डबल रोटी तक नहीं है। सुना है, डबल रोटी के कारखाने में पिछले एक हफ्ते से हड़ताल है। इसलिए उनकी बहू ने अपना खासमखास उपमा बनाया था। उनके लिए ही नहीं, सबके लिए। छात्रों की हड़ताल और दंगे के कारण युनिवर्सिटी पिछले दो हफ्तों से बंद थी। उनका बेटा, बहू दोनों युनिवर्सिटी में लेक्चरर हैं। अब इस बोनस छुट्टी का आनंद ले रहे हैं। इसलिए अब कुछ दिनों से रोज सुबह नाश्ते का क्रम चलता है। फिर देर से दोपहर का भोजन। नाश्ता माने—डबलरोटी या उमपा। बहू के हाथों बने उपमा को खाने से पहले उन्हें मालूम नहीं था कि 'उपमा' इतना 'घटिया' भी बन सकता है। हर दिन के जैसे किसी तरह उसे निगल लिया, बहू का दिया हार्लिक्स पिया और सैलून आए थे।

वह मूली वाला छोकरा, मूली खत्म करके, अब अमरूद खाने लगा था। उन्होंने पल भर उसकी ओर ईर्ष्यालु आंखों से देखा। अमरूद को भी वह चाकू से छोटा छोटा टुकड़ा करके खा रहा था। लगा, अमरूद खाने से ज्यादा उसे उस चाकू का उपयोग करने में आनंद का अनुभव हो रहा था।

हेयर कटिंग का काम चालू था। बाल कटवाने के बाद दो आदमी चले गए। इंतजार में बैठे लोगों में से दो जने उनकी जगह बैठ गए। नागराजन की बारी आने में अभी देर

थी। थोड़ी देर तक वे नाइयों की उस्तरेबाजी का तमाशा देखते रहे। फिल्म फेयर वाले लड़के ने भी उस पत्रिका को नीचे नहीं रखा था, उसे छोड़कर वहां कोई और पत्रिका भी नहीं थी। नागराजन को उस पर तरस आया। इतनी देर तक एक ही जगह पर बैठे हुए पत्रिका का पारायण करते रहना, चाहे वह फिल्म फेयर ही क्यों न हो, उनकी दृष्टि में बिल्कुल अस्वभाविक था। कैसा दुर्भाग्य है! उस अभागे की बदकिस्मती देखिए, आज इस फिल्म फेयर को ध्यान से पढ़ना अनिवार्य हो गया है। वरना कल कोई राजेश खन्ना के बारे में किसी सनसनीखेज बात पर उससे बहस करने आए तो उसे बगलें झांकनी पड़तीं। काश! इस पढ़ाई से उसे छुटकारा मिला होता।

हर कोई बिना पढ़े ही बुद्धिमान बन जाना चाहता है, सभी पढ़ाई से बचना चाहते हैं, पढ़ने को टालना चाहते हैं, पुस्तक की पढ़ाई ही नहीं, जिंदगी की पढ़ाई से भी जी चुराते हैं। उनको लगता है कि एम.ए. की डिग्री प्राप्त उनकी बहू में कल्याणी की बुद्धिमत्ता का एक चौथाई अंश भी नहीं है। लेकिन क्या वे इस बात को खुलकर कह सकते हैं? रिटायर होते समय अपने एक साथी को उन्होंने देखा है। वह फाइलों को आदि से अंत तक पढ़ना अपनी शान के खिलाफ मानता था। सरसरी नजर दौड़ाकर उलटी सीधी कुछ लिख लेता था। हाल ही में सुना कि उसका प्रोमोशन हुआ है। खुद उनका अपना बेटा क्या कर रहा है, वह दैनिक जिसमें सनसनीखेज शीर्षक और गरमागरम संपादकीय लेख निकलते हैं, उन्हें सवेरे घोलकर पी लेता है, फिर दिन भर जो भी आते जाते रहते हैं, उनके सामने इन विचारों को अपने निजी विचारों की तरह पेश करता रहता है। लेकिन असल में किसी भी विषय पर, उसका अपना किसी प्रकार का दृढ़ अभिप्राय है ही नहीं, इस बात को वे बहुत दिनों से जानते हैं। नहीं तो क्या इतने सालों से अपनी पत्नी के बनाए फीके भोजन को चुपचाप खाता रहता? अहमक कहीं का? ऐसे लोग छात्रों को क्या पढ़ा पाएंगे? कौन सा पक्का रास्ता उन्हें दिखा पाएंगे।

आखिर उनकी बारी आई। वे कुर्सी पर जा बैठे। नाई ने उनके गले के नीचे सफेद कपड़ा ओढ़ा दिया। एकाएक उन्हें शांति और आराम का एहसास हुआ। लगा कि वे एकदम छोटे बालक बन गए हों, जिम्मेदारियों से रहित बालक, लाड़ प्यार का पात्र। अब नाई सब कुछ संभाल लेगा। उन्हें कुछ करने की जरूरत नहीं है। एक अच्छे पिता, मां व पत्नी की तरह उनका ख्याल रखेगा वह। हर किसी नाई के पास वे ऐसी तसल्ली नहीं पा सकते थे। एक साल पहले इस नाई का पता लगाने तक उन्हें कितनी मुसीबतें उठानी पड़ी थीं।

वर्षों तक वे कनाट प्लेस की किसी खास दुकान के विशिष्ट नाई से ही अपने बाल कटवाते थे। एक दिन अचानक सुना कि वह बूढ़ा मर गया है। उस दिन किसी और नाई ने उनके बाल काटे थे। उसका स्पर्श, सिर पकड़कर घुमाने का ढंग, कंघी करने का तरीका,

उस्तरा चलाने की अदा, कनपटियों के केश तराशने का तरीका आदि हर बात से उन्हें घृणा सी हुई। उसके बाद वे उस सैलून में गए नहीं। नाई के साथ हमारा जो रिश्ता होता है वह केवल शब्दों का रिश्ता नहीं होता। वह एक ऐसा स्पर्श का रिश्ता होता है जो हमारा अपनी पत्नी के साथ होता है। इस तरह का सुख देने वाले एकाध से ही हम नाता जोड़ते हैं, वे ही हमें आकर्षित करते हैं। कुछ लोगों का स्पर्श हमें आराम देता है, हमें उससे आश्वासन मिलता है। जो हमें आकर्षित नहीं करते उनकी बातों को तो सह सकते हैं, मगर स्पर्श को नहीं। वह नाई उनको पसंद नहीं आया, इसमें उसका कोई दोष या कमी नहीं थी। इसे उनका अपना दुर्भाग्य ही कह सकते हैं। बदनसीबी का यह सिलसिला कई महीने तक चलता रहा। न जाने कितने सैलूनों का चक्कर काटा, कितने नाइयों से बाल कटवाए, कोई उनको संतुष्ट कर न पाया। आखिर एक साल पहले उनके घर के पास यह सैलून खुल गया। इस सैलून के मालिक अधेड़ उम्र के इस नाई के स्पर्श में और उस सैलून की कुर्सी में ही उनका चिर प्रतीक्षित आश्वासन लंबे अरसे के बाद उन्हें प्राप्त हुआ। उनकी उम्र पैंतीस साल के लगभग होगी, फिर भी उसकी हर अदा में हाथों की वही सफाई, परिपक्वता, स्नेहमय स्पर्श का एहसास उन्हें मिला जो उस बुजुर्ग नाई के संग उन्हें मिलता था। असल में वह एक कलाकार था, अपने काम पर अभिमान करने वाला; हीन भावना उसे छू तक नहीं गई थी।

कल्याणी के पास भी ऐसे ही गुण थे जिनके कारण वे उस पर मुग्ध रहते थे। उनके प्रति दिखावे का आदर-भाव नहीं था उसमें। आत्मविश्वास के अभाव तथा कमजोरियों के कारण उत्पन्न ईर्ष्या, द्वेष व झगड़ालू प्रवृत्ति उसमें नहीं थी। अपनी परिस्थिति, परिवेश', अपना काम, अपने रिश्ते इत्यादि पर उसकी दृढ़ आस्था और विश्वास था, प्यार था और लगन थी। शर्तों के बिना संपूर्ण समर्पण। उसकी मानसिक दृढ़ता ने उनको मनोवांछित स्थिरता और सुरक्षा उसे प्रदान की। उसकी दुनिया एकदम सुलझी हुई थी। बिल्कुल सरल, सीधी सादी दुनिया। उसकी यह सादगी और सरलता को नादानी नहीं कह सकते, विवेक-पूर्ण कहना उचित होगा। वह ऐसा विवेक था जिसमें परिपक्वता अंतर्निहित थी। इस नाई की सरलतापूर्ण सादगी की तरह; उसके गंभीर मौन के समान।

इसे अपने इस पेशे के कारण ही ऐसी परिवक्वता मिली होगी। इस नाई से बाल कटवाने के लिए आने वाले लोगों में कुछ उसे हुक्म देते हैं, 'इस तरह काटो, वैसा मत काटो।' ऐसे अवसरों पर वह उन लोगों की अहंता और स्वाभिमान का नौसर्गिक दर्शन करता था, उनके आत्मसम्मान को जरा भी ठेस पहुंचाए बिना अपनी खुदी और आत्माभिव्यक्ति को परीक्षण में डाल कर उन्हें कुछ बनाने का अभ्यास करना सीखा होगा। कुछेक साड़ी विक्रेताओं, जौहरियों और दर्जियों में उन्होंने ऐसी परिपक्वता देखी है। लेकिन कल्याणी के व्यक्तित्व

को रूप देने वाला कारखाना कौन सा था, इसे आज तक ढूंढ़ नहीं पाए हैं। क्या उनका वह शुरू शुरू का गुस्सा इसके मूल में था या उनके शराबी पिता की नालायकी अथवा उसकी ननद—अपनी विधवा दीदी की मूर्खतापूर्ण ईर्ष्या और क्रोध?

'हेयर कट' हो गया। ओढ़ाई हुई सफेद चादर को नाई ने हटाकर उसे झाड़ा, फिर तौलिए से उनका चेहरा, गला आदि को अच्छी तरह पोंछा। फिर उनकी कमीज को झाड़ा। काम इतनी जल्दी पूरी होने से नागराजन उदास हो गए। कुर्सी से उतर कर पांच रुपए का नोट उसके हाथ में रखा। नाई ने इंतजार में बैठे अगले व्यक्ति को कुर्सी पर बैठने का इशारा किया। फिर उस कमरे के एक कोने में पड़ी मेज की दराज खोली (वही उसका गल्ला था) और नागराजन को बाकी पैसे दिए। नागराजन ने गिनकर नहीं देखा, उसे वैसे ही जेब में डालने के बाद, जैसे उसको धन्यवाद देने की मुद्रा में मुस्कराते हुए बाहर आए। यह पैसा देना और लेना उन दोनों को हमेशा एक तरह के पसोपेश में डाला करता था। उन दोनों का संबंध केवल अपने अपने काम से संबंधित है, ऐसा इस पैसे का लेन-देन महसूस कराता था। क्या यही सच है? उनका बेटा भी उनका इतना ख्याल न करता है जितना यह नाई उनके प्रति ममता दिखाता है? ऐसा उनका सोचना भी केवल भ्रम है?

जैसे वे सैलून के द्वार तक पहुंचे, वह मूली वाला लड़का जो बगल वाली चाय की दुकान के रेडियो पर आ रहे फिल्मी गीतों पर आकर्षित होकर थोड़ी देर पहले वहां से चला गया था, अब अंदर आ गया। आते ही ऊंची आवाज में चिल्ला उठा, "यह क्या है, भई! जो लोग मेरे बाद में आए उनका काम कर दिया। इधर मैं दो घंटे से बैठा हूं। क्यों बे! क्या तुमने यह दुकान बुड्ढों के लिए खोल रखी है?

नागराजन को बात लग गई। वे सैलून के द्वार पर वैसे ही खड़े रहे, बोले नहीं। नाई ने उस छोकरे को शांत करने की कोशिश की। इतने में वह फिल्म फेयर वाला लड़का बोल उठा, "यह नाई... साला भी बुड्ढ़ा ही है रे।" इस पर दोनों जोर का ठहाका मार कर हंस पड़े। फिर उसकी मर्दानगी पर छींटाकशी करते हुए दोहरे अर्थ देने वाले अश्लील शब्दों में कुछ बकवास करते हुए निकल गए। 'फिल्म फेयर' वाले लड़के ने अश्लील गाना गाते हुए नाई का आलिंगन करने की कोशिश की। यह सब सैलून के मालिक के साथ हो रहा था। उसके अलावा वहां पर दो और नाई थे। वे चुपके से अपना काम करते रहे। मानो कुछ भी नहीं हुआ हो। नाई ने भी निश्चल भाव से इतना ही कहा, "मेहरबानी करके यहां शोर मत मचाइए!" सैलून में बैठे दूसरे लोग भी इन युवकों के व्यवहार पर झल्ला उठे। मगर अपनी झल्लाहट को व्यक्त करने का साहस उनमें नहीं था, इसलिए शायद चुप बैठे थे।

नागराजन से रहा न गया। उस नाई के पक्ष में खड़े होकर कुछ कहने या करने के

लिए वे व्याकुल हो उठे। लेकिन उन्हें इस बात का संदेह था कि उनका हस्तक्षेप नाई के लिए सचमुच सहायक सिद्ध होगा या नहीं। वे यहां के नहीं थे, संभव है, उनका हिंदी उच्चारण उन शोहदों के हंगामे को और भी भड़का दे और उनके मजाक और तानों से उन्हें बचाने की भी जिम्मेदारी बेचारे नाई पर आ पड़े। उनमें न बाहुबल था न कोई अन्य बल। वे चुपचाप वहां से चलने लगे। इसके लिए उन्होंने अपने आप को कोसा और धिक्कारा। अपनी गलती और अक्षमता के लिए कोई न कोई कारण ढूंढ़ लेना उनके लिए आसान काम है। किंतु उनका यह तर्कवाद कोई अंतिम उत्तर नहीं हो सकता। उनकी कायरता इससे क्षम्य नहीं हो सकती। हां, यह भी एक प्रकार की कायरता ही है। उस नाई की कार्य-कुशलता, नजाकत और कलात्मक कारीगरी के वे आराधक रहे हैं। प्रत्येक बार वे मन में सोचते, उसकी तारीफ में दो शब्द कहें, उसे कोई 'टिप्' दें, किंतु हरेक बार अपने इस विचार को कार्यरूप दिए बिना जो छोड़ देते हैं, वह भी एक तरह की कायरता ही है। उन्होंने कल्याणी की कार्यकुशलता की एक बार भी दिल खोलकर प्रशंसा नहीं की है, ननद की ईर्ष्या की ज्वाला में जब वह जल भुन रही थी, उन्होंने खुल्लमखुल्ला यह प्रकट नहीं होने दिया कि वे अपनी पत्नी के पक्ष में हैं। यह भी तो कायरता ही थी न? उनकी यह दलील कि वह मेरे मन को भली भांति जानती है, आज बीती बातों की जुगाली करते समय उन्हें संतोषजनक नहीं लगती है।

सड़क पार करने के लिए अभी पांव बढ़ा ही रहे थे कि, न जाने कैसे वह युवक आसुरी वेग से अपनी मोटरसाइकिल पर निकला, फुटपाथ के निकट से उसके किनारे से सटा सटा सा, चलाता हुआ निकल गया। नागराजन ने हड़बड़ाकर अपने पांव पीछे हटा लिए। वे गुस्से से लाल पीले हो उठे। उस मोटरसाइकिल वाले छोकरे पर जो गुस्सा उमड़ा, वह थोड़ी देर पहले, सैलून पर देखे उन शोहदों की तरफ फिर गया। सोचने लगे—सैलून लौट चलूं? इतने में उनकी पोती की आवाज आई, "दादाजी! ओ दादाजी!"

नागराजन ने सामने के फुटपाथ की ओर देखा। उनकी पोती अनु अपने पिताजी की उंगली पकड़े खड़ी थी और उसका पिता अर्थात उनका बेटा पान का बीड़ा चबा रहा था। वह बीड़ा लेने के लिए आया होगा। सैलून लौटने का इरादा छोड़कर नागराजन सड़क पार करके उनके पास पहुंचे। उनके पास पहुंचते ही फूट पड़े, "उफ! जंगली कहीं का। हैवान की तरह साइकिल चलाते हैं।" नागराजन ने अपने दिल में उमड़ते घुमड़ते गुस्से को बेटे से बांट लेना चाहा।

पल भर तक बेटा कुछ नहीं बोला। फिर पान की पीक 'क्लिच' करके थूकी। (अनु आश्चर्य से पल भर जमीन पर गिरी पान की पीक को देखती रही)। बेटे ने कहा, "जाने भी दीजिए, इन लोगों के पास और कोई काम नहीं है; समय नहीं कटता, क्या करें?" नागराजन

समझ नहीं पाए कि असल में उनका बेटा, उन छोकरों की आलोचना कर रहा है, या उनके प्रति हमदर्दी प्रकट कर रहा है। उन्होंने कुछ और सख्ती से कुछ कटु शब्दों को उगलने के लिए मुंह खोला कि पोती अनु दौड़ी आई और उनका कुर्ता पकड़कर खींचती हुई बोली, "दादाजी! आप भी 'स्पिट' कीजिए न?"

वह क्या पूछ रही है, इसे समझने में उन्हें एकाध क्षण लगे, फिर बोले, "मैंने पान नहीं खाया है, बेटी।"

"आप भी पान खाइए न?"

"अभी नहीं। भोजन के बाद।"

"देखिए न? खाना खाने के पहले ही पिताजी पान खा रहे हैं।"

"अरी! बक बक किए बिना चुप नहीं रह सकती?" माघवन ने बेटी को डांटा। जब उसके डैडी थोड़े आगे निकल गए अनु ने पीछे से मुंह बनाकर उनकी नकल उतारी, जिसे केवल दादाजी देख पाए।

'हुश'—नागराजन ने इशारा किया—कहीं बच्ची का पिता उसे देख न ले। दादाजी और पोती हमेशा ऐसे बहुत से रहस्यपूर्ण क्षणों को आपस में बांट लिया करते थे। पोती ने अपने पिता का हाथ छोड़ कर दादाजी का हाथ थाम लिया। "दादाजी!"

"हूं... बोलो न!"

पोती ने उन्हें जरा झुकने के लिए इशारा किया, फिर कान में फुसफुसाई, "आप खाना खाने के बाद पान चबाकर 'स्पिट' करेंगे न?"

उत्तर में वे भी फुसफुसाए, "ठीक है, बेटा।"

अनु अगर उस घर में नहीं रहती तो दम घोटते मौन की घड़ियों में, तनाव से पूर्ण परस्पर मतभेदों के टकरावों में वे तीनों उलझते रहे होते। अनु की उपस्थिति ऐसे क्षणों को हल्का कर देती है। जब एक दूसरे से मन उकता जाता, या परस्पर विचारों का संगर्ष सा हो जाता, एक दूसरे को सह न पाते, समझौता न हो पाता... ऐसे क्षणों में वे लोग अनु से बोलने लगते। उस मासूम बच्ची को क्या मालूम था कि उम्र में बड़े ये लोग उसका किस तरह उपयोग करते हैं?

घर पहुंचते ही अनु आगे दौड़ी और कॉल बेल दबाया। उसकी मां ने आकर दरवाजा खोला।

नागराजन ने अंदर आकर कमीज उतारी। लेकिन तुरंत स्नान करने न गए। थोड़ी देर बिजली के पंखे के नीचे बैठे ताकि पसीना सूख जाए। रेडियो पर कोई गीत धीमी आवाज में आ रहा था। साथ ही उनकी बहू दया उस फिल्मी धुन का सुर गुनगुना रही थी। पान थूककर माधवन ने सिगरेट सुलगा दी। अनु एक पेंसिल को मुंह में रखकर सिगरेट की

तरह उफ उफ करती हुई धुआं उड़ाती अपने पिता की नकल उतार रही थी। खाने की मेज पर भोजन तैयार रखा था। बिलकुल शांत स्निग्ध पारिवारिक वातावरण। नागराजन के शरीर में हल्का सा कंपन हुआ। पसीने से तर शरीर पर पंखे की हवा लगने से हल्की सी कंपकंपी लगी होगी। सैलून की वह घटना फिर से उन्हें याद आई। एकाएक उस कमरे की शांति और वहां पर व्याप्त खामोशी उनको अखरने लगी। वह शांति एक भ्रम सी, माया सी प्रतीत हुई। बाहर आवारा छोकरा और गुंडे इस दुनिया की शांति को तहस नहस कर रहे हैं।

नहा धोकर खाना खाने के बाद तक अनु के साथ थोड़ी देर खेलते रहे कि वैसे ही उनकी आंख लग गई। सुबह से बाहर घूमते रहने की थकान। जब आंख खुली तो चार बज चुके थे। कॉफी की महक आ रही थी। नल से पानी गिरने की आवाज भी। शिकार को उदरस्थ करने के बाद चित पड़े अजगर की भांति दोपहर को जो दुनिया स्तंभित रही अब फिर से संचालित होने लगी। हाथ मुंह धोकर आए। मेज पर कॉफी तैयार रखी थी। एक घूंट पी ली। आज कॉफी उतनी बुरी नहीं थी। जहां तक सुबह की कॉफी का सवाल है, वे ही सब से पहले बिस्तर छोड़ते हैं, इसलिए खुद कॉफी तैयार कर देते हैं। लेकिन शाम के समय उन्हें वही कॉफी पीनी पड़ती है जो उनकी बहू बनाती है।

बैठक से जोर जोर से बोलने की आवाज आ रही थी। ज्यादातर दोपहर ही इस घर में बातें करने का वक्त होता है। उनके 'सामाजिक प्राणी' होने का समय है यह। ''मैं निरा जानवर नहीं हूं,'' इसे स्वयं को और दूसरों को जताने के लिए आदमी का बच्चा क्यों इतना व्यग्र हो रहा है? बाहर से इस वक्त कोई आए न आए, वे तीनों कुछ न कुछ बतियाते रहते हैं। लगता है, आज कोई आया है। उनके बेटे और बहू की आवाज के अलावा एक और पुरुष और नारी का कंठ स्वर सुनाई दे रहा है। वे आवाजें उन्हें परिचित सी लग रही थीं। ओह! वह हंसी। रूस जाकर लौटे प्रोफेसर मोटवानी की हंसी जैसी लगती है? हां, वे अपनी बीवी के साथ आए हैं। मोटवानी उसी मोहल्ले में एक और ब्लाक में रहते हैं। विश्वविद्यालय के सर्कल में चर्चा हो रही थी कि वर्तमान वाइस चांसलर के बाद इनका चांस अधिक है।

बहू की आवाज ही सब से बुलंद थी। हां, हंसी भी। वह दूसरी जो आवाज आ रही थी, इसका पता लगाने में वे जुट गए। उनका ध्यान कॉफी से हटाने में यह बात काम आ रही थी। उनके बेटे की आवाज कभी कभार ही सुनाई देती थी। इसलिए उन्होंने सबसे पहले उसे किनारा कर दिया।

ड्राइंगरूम सभ्यता को निभाने में बहू उन सभी लोगों से ज्यादा कुशल थी। यह तो अभ्यास की बात थी। उसके पिता द्वारा दिया गया प्रशिक्षण। असलियत चाहे कुछ भी

हो, एक तीव्र सिद्धांतवादी के रूप में पेश आना है। जोश के साथ किसी सिद्धांत या पक्ष का समर्थन या खंडन करना है। अपने तईं या दूसरों की ओर से किसी चीज को पवित्र समझे बिना, हर बात को रंजक बनाना है, नाटक बनाना है। किसी भी चीज को नाटकीय ढंग से पेश करने की कला आनी चाहिए—अपने ड्राइंगरूम के श्रोताओं-दर्शकों के लिए। बहू के पिताजी नागराजन के सिद्धांतों के कायल नहीं थे। लेकिन अपने को आदर्शवादी के रूप में पेश करना उन्हें आता था, कुशल अभिनेता के समान। अपनी वाकपटुता के बल पर वे ऊंचाई तक पहुंच गए। उनकी बेटी उनकी इन खूबियों की सही उत्तराधिकारिणी साबित हुई है।

ऐसे मौकों पर जैसा कि अमूमन होता है, आज भी उनके मन में अपने बेटे के प्रति सहानुभूति जगी। सोचा—हाय बेटे, इन लोगों ने तुम्हारी आंखों में धूल झोंकी है। ये लोग आज से नहीं दया बेटी के दादाजी के जमाने से यहां रहते आए हैं। हम तुम तो कल के आए हैं। उनके यहां का ड्राइंगरूम कल्चर, वह माहौल, वह कुशल नाटकीयता इनसे तुम बहक गए। बेटे, तुम्हारे बाबूजी की प्रकृति के विपरीत उन्होंने तुम्हारे साथ बैठकर सिगरेट की कश ली। उनकी लाड़ली बेटी और बीवी ने तुम्हें जाम भर भर कर दिए और अपनी मीठी बोली से तुम्हें नई दुनिया से परिचित कराया। तुमने भी समझा कि वह दुनिया सचमुच निराली है। तुम्हें अपनी बेटी से खुलकर मिलने जुलने की अनुमति देकर उन्होंने तुम्हारे सामने साबित कर दिया कि जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण और मूल्याकन कितना उदार है। इस तरह तुम्हें उन्होंने आकर्षित कर लिया। तुमने भी सोचा, वह सचमुख एक अनोखी और अद्भुत दुनिया है। अपनी बेटी से खुलकर मिलने जुलने और बोलने दिया। साथ ही उनकी बेटी के साथ इतना हेलमेल बढ़ाने के बाद उसका तिरस्कार करने का साहस तुम नहीं करोगे, तुम्हारे मूल्य तुम्हें ऐसा न करने देंगे, यह जानकर तुम्हें फंसा दिया। बेटे... जीवन के मूल्यों पर तुम्हारे दिल में जो उलझन रही उसी ने तुम्हारी आजादी छीन ली। जिन अस्त्रों से तुम अपरिचित रहे, उन्हीं का प्रयोग करके उन्होंने तुम्हें बंदी बना दिया। नैतिकता को परे रखकर यह कैसा अवैध, बेईमानी का खेल है?

उनका, अर्थात दया के पिताजी का हरेक खेल अवैध होता है। उनके घर में टेलीविजन था, कई कीमती खिलौने थे। इन्हीं का लालच दिखाकर वे अनु को अपने साथ ले जाते हैं, दो तीन दिन रख लेते हैं। इसमें इनकी कौन सी होशियारी है? अगर वे नेक आदमी हैं तो जिस तरह मैं उसे कहानियां सुनाता हूं उसी तरह की कहानियां सुनाकर दिखाएं। बच्ची के मानसिक स्तर पर उतर कर उससे बात करके दिखाएं, उसके साथ मसखरी करके हंसाएं। तब देखें, अनु किसके पक्ष में होती है? जापान और जर्मनी के आकर्षक खिलौनों का सहारा क्यों ले रहे हैं?

कल भी वे आए थे। थोड़ी देर मुझसे भी बतिया कर गए, कोई और चारा नहीं था। वही विश्वविद्यालय में बंद, छात्रों की मनमानी, हंगामा, युवा पीढ़ी का आज का रुख... वगैरह की कड़ी आलोचना करते रहे। कह रहे थे, "गुंडागर्दी आज के नौजवानों की जीवन शैली बन गई है...।" मानो ये बड़े दूध के धुले हुए हों।

नागराजन ने कल उनके विपक्ष में बोलने के लिए, उनके विचारों का विरोध करने के इरादे से जानबूझकर छात्रों का पक्ष लिया। कहा था, "बड़े लोग नौजवानों के विषय में दिलचस्पी नहीं लेते, उन्हें समझने की कोशिश नहीं करते। बेचारी युवा पीढ़ी क्या करे? यह उम्र ही कुछ ऐसी होती है, भावुकता में पड़ कर वह सही गलत की ठीक परख नहीं कर पाती। यह तो बड़े लोगों का फर्ज बनता है कि उन लोगों का मार्गदर्शन करें और उन्हें सही रास्ते पर ले आएं।"

अब उन्हें कल की अपनी बातों की याद करके हंसी आ रही थी, शरम भी। छि छि! कभी कभी हमारी अभिव्यक्ति कैसी गलत धारणाओं से प्रेरित हो जाती है? क्षण भर की उत्तेजना कैसी उलटी सीधी बातों को उगलवा देती है? अगर समधी के स्थान पर कोई और होते, नागराजन की दलीलें कुछ और ही होतीं।

कॉफी पीने के बाद भी वे वहीं बैठे थे। बगल के कमरे में जाकर उनके वार्तालाप में शरीक होने का मन न रहा। इसका डर था कि कहीं उनकी विचारधारा फिर से लगाम तोड़कर भागने न लगे।

तब, क्या अपनी मनोवृत्ति पर उनका कोई नियंत्रण नहीं है?

आखिर अकेले बैठे बैठे उनका मन उकता गया। सोचा, उनकी बातों का मजा लेंगे, मगर अपने को संयमित रखेंगे। नागराजन उस कमरे में दाखिल हुए। क्या उन्हें भी उस मोटरसाइकिल वाले छोकरे की तरह थ्रिल की तलाश थी?

आज भी युनिवर्सिटी में बंद के बारे में ही बहस हो रही थी। यह सब क्यों हो रहा है, गलती किसकी है, इसी की छानबीन हो रही थी। नागराजन को देखते ही मोटवानी दंपति ने हाथ जोड़े, "नमस्ते जी।" नागराजन ने भी नमस्ते किया और एक खाली कुर्सी पर बैठ गए।

"सो रहे थे?" मोटवानी ने पूछा।

"हां।"

"इस मौसम में और कुछ भी कर नहीं पाते।"

"शायद इसीलिए युनिवर्सिटी भी सो रही है।" नागराजन ने चुटकी ली। लोग हंस पड़े। उन्हें लगा, वह खोखली, औपचारिक हंसी थी। आजकल नागराजन के साथ यही समस्या थी कि कोई उनकी बातों को गंभीरता से नहीं लेता। अपनी उम्र के कारण उन्हें कई बार

अपनी प्रकृति के विरुद्ध ऊंची आवाज में बोलना पड़ता था, विपक्षी को चुनौती देने वाले शब्दों का प्रयोग करना पड़ता। तीनों चुप बैठे थे। खुद नागराजन फिर बोले, "अच्छा! तब विश्वविद्यालय को कब खोलने का इरादा है?"

"मुझसे पूछ रहे हैं? मैं कुलपति तो नहीं हूं।"

"अटलीस्ट, अभी तक नहीं।" मर्दों के अहम को उकसाने में समर्थ दया नारी सुलभ चातुर्य से बोल उठी। मोटवानी होठों के अंदर मुस्कराए। बस, नागराजन के मन में उनके अहम पर करारी चोट करने की इच्छा जगी।

बोले, "छात्रों के भविष्य के बारे में सोचता हूं तो बड़ा भयंकर लगता है।" यह आमतौर पर कही गई टिप्पणी थी कि किसी व्यक्ति विशेष की ओर इशारा था, यह बता पाना मुश्किल था। उनके बेटे के मुंह पर घबराहट छा गई "राजनीतिज्ञों के खेल के लिए विश्वविद्यालय भी अखाड़ा बन चुके हैं।" नागराजन ने अपनी बातें जारी रखीं। यह भी अर्थपूर्ण व्यंग्य था। मोटवानी एक राइटिस्ट राजनैतिक दल से जुड़े हुए व्यक्ति हैं, यह खुला रहस्य था।

अब मोटवानी से रहा नहीं गया। देवी-देवताओं के चित्रों में उनके देव आधारों पर 'वत्स, तेरे समस्त अपराध क्षम्य हैं' वाली करुणापूरित जो मुस्कराहट विराजमान रहती है वैसी मुस्कान अब मोटावानी के अधरों पर खिल उठी। बोले, "यह एक जानी पहचानी दलील है, मिस्टर नागराजन! लेकिन मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। आप यह आशा क्यों करते हैं कि विश्वविद्यालय राजनीति से अछूता रहे? हमारा जनतंत्र आज बालिग हो गया है। देश के कोने कोने में, जिसमें विश्वविद्यालय भी शामिल है, राजनैतिक बोध और विविध विचारों की गोष्ठियों का होना बिल्कुल स्वाभाविक है न? छात्रों को अपने चारों तरफ के परिवेश और बाहरी हवा लगने से 'इंसुलेट' करने पर मैं सहमत नहीं हूं। ऐसे बंद परिवेश में पलते छात्र बाद में बाहरी संसार में अपने को फिट नहीं कर पाएंगे। जैसे सालों तक चिड़ियाघर में पले जानवरों को खुले जंगल में छोड़ दिया गया हो।"

"आदर्श तो बहुत उम्दा है... इसे सीधे अमल में लाकर दिखाइए न?"

"समझा नहीं मैं।"

"हड़ताल, हिंसा, घूसखोरी, गोष्ठियां, गुटबंदी, टकराव वगैरह पर कक्षा चला सकते हैं अर्थात पढ़ा सकते हैं। पार्टी-नेताओं के भाषणों को संकलित करके उनका अध्ययन करना अनिवार्य बना सकते हैं।"

"मेरे विचारों को बहुत संकीर्ण परिप्रेक्ष्य में ले रहे हैं।"

"हो सकता है। आप ही विस्तृत रूप से व्याख्या कीजिए न?"

मोटवानी ने बड़ी सावधानी से नपे तुले शब्दों में अपने दृढ़मूल विचारों को, दूसरे लोग उनसे जिन विचारों की अपेक्षा करते हैं, उन्हें लच्छेदार भाषा में प्रस्तुत किया। नागराजन

ने फिर दलील दी, "यह सब आपने निजी स्वार्थलाभ के लिए अपनाया है।"

मोटवानी ने हताश होकर कहा, "आप मुझे समझना नहीं चाहते।" (कैसा नाटकीय अंदाज है)।

"शायद हमारे बीच में उम्र का जो फर्क है वही इसका कारण हो सकता है? जेनरेशन गैप।" नागराजन ने श्रीमती मोटवानी की ओर दृष्टि डाली, मगर उसने अपनी दृष्टि फेर ली। अभी हाल ही में मिसेज मोटवानी ने एक प्रसिद्ध वामपंथी पत्रिका में एक गरमागरम लेख लिखा था और विश्वविद्यालयों में व्याप्त अशांति का पहला कारण 'जेनरेशन गैप' बताया था। इस बात पर उसने बहुत सी दलीलें पेश की थीं। कहा था, 'हमारी आज की मांग है ऐसे तरुण, युवा, प्राध्यापक जो ज्यादा से ज्यादा छात्रों के वेवलेंग्थ और मानसिक स्तर पर चिंतन करने में समर्थ हों।' उसने यही ललकार की थी। मिसेज मोटवानी के आकर्षक व्यक्तित्व का एक चौथाई भाग भी मिस्टर मोटवानी में नहीं था। मोटवानी को देखते समय उनकी श्रीमतीजी की यह ललकार समझ में आती थी कि वह क्यों विश्वविद्यालय में तरुण प्राध्यापकों की मांग कर रही है। उस वामपंथी पत्रिका में वह अक्सर लिखा करती थी, और उसके संपादकीय मंडल से भी उसका संपर्क था। यही संपर्क कई विशिष्ट प्रभावशाली (वी.आई.पी.) व्यक्तियों से उसके परिचय का कारण बना था। हाल में विश्वविद्यालय की तरफ से जो प्रतिनिधि मंडल रूस गया था, उसमें श्री मोटवानी को उसी की बदौलत जगह मिली थी, इसकी जोरों की चर्चा है। केवल राजनैतिक दबाव नहीं, बल्कि चालीस साल की उम्र में भी उन्होंने जो सुडौल, सुगठित देहयष्टि पाई थी वह भी इसमें सहायक रहा। कुल मिलाकर उसके दाएं बाएं, आगे पीछे, किसी भी दिशा में देखें तो मोटवानी का भविष्य उज्ज्वल था। "देखिए सर! आप मुझे ठीक तरह से समझने की कोशिश कीजिए।" मोटवानी ने फिर से बोलना शुरू किया।

अब उनकी आवाज और बोलने के ढंग, दोनों एक हद तक संतुलित थे, यह बात नागराजन ने नोट कर ली।

"मैं एक आदर्श को , बुनियादी सिद्धांत को मन में लेकर कहता हूं, व्यावहारिक रूप से हमारी राजनीति और विश्वविद्यालय, इस आदर्श से कोसों दूर पिछड़ गए हैं, यह तो मैं जानता हूं।"

"इतना हम जान लें सो तो पर्याप्त है।" नागराजन ने प्रकट रूप में कहा। लेकिन मन ही मन गुर्राए। (मक्कार कहीं का। कैसे बातें बनाता है!)।

"हमारे व्यवहार में जो कमियां हैं, वे स्वस्थ प्रजातंत्र की प्रवृत्तियों के खिलाफ हमें पूर्वग्रह से ग्रस्त न कर दें, इस बात पर भी हमें सावधान रहना है।"

"उदाहरण के लिए, आपकी बातें हमें पसंद नहीं आतीं, क्या इसलिए हम हर बूढ़े

आदमी से बोलचाल बंद कर दें?" इतना कहकर श्रीमती मोटवानी ने माधवन की ओर देखा। माधवन के मुखड़े पर एक निराली चमक कौंधी... केवल उसको प्रसन्न करने के लिए। कुछ दिनों में उसे अपनी थीसिस सबमिट करनी है। ऐसी परिस्थिति में वह मोटवानी जी के पालतू कुत्ते से भी दुश्मनी मोल लेने को तैयार नहीं था। उस मुस्कान ने नागराजन को उत्तेजित कर दिया। फूट पड़े, "हां, ठीक कहती हैं, श्रीमती मोटवानी। बूढ़े लोग हरगिज आपको पसंद नहीं आ पाते।" यह सुनकर मिस्टर मोटवानी के चेहरे पर मुर्दनी छा गई। दया जल्दी से उठकर अंदर चली गई, किसी काम के बहाने। उस सुहावनी संध्या का मजा जो किरकिरा होने लगा, उसके इरादे से स्थिति को संभालते हुए माधवन हड़बड़ाकर बोला, "अजी, यह क्या हो रहा है? क्या हम लोग आपस में झगड़ा करने लग गए?"

झट नागराजन ने कहा, "ना... ना... ऐसी कोई बात नहीं है। मैं कुछ बातों को साफ साफ समझना चाहता था। बस। और कोई बात नहीं है। मिस्टर मोटवानी, अगर मैंने कुछ गलत कह दिया हो तो माफ कीजिएगा।"

"छिः छिः। कैसी बातें कर रहे हैं आप? इसमें गलती की कौन सी बात है? यह तो सौजन्यता से भरी बहस थी।" मोटवानी बोले।

इस तरह उनकी बहस पंक्चर हुई मोटरकार की तरह आधे रास्ते में रुक गई। उसे 'कृत्रिम श्वास' देकर जीवित करने के अंदाज से दया ट्रे में ड्रिंक्स से भरे गिलासों के साथ आ गई। नागराजन को छोड़कर बाकी ने एक एक गिलास ले लिया—चीयर्स-चीयर्स।

नागराजन को बड़ी सफाई के साथ किनारे कर दिया गया। लगा, उस कमरे में फैली 'जिन' की महक उन्हें चिढ़ा रही है, मजाक उड़ा रही है। उनकी बहू ने उनको "चैक मेट" कर दिया। शराब न छूने वाले उनको उनके उसूलों सहित नालायक सिद्ध कर दिया। नई दुनिया के संवेगों और स्पंदनों को वे क्या जानें?

दया अब यूनिवर्सिटी के कुलपति मराठी भाषी बुजुर्ग की नकल उतार रही थी। उसे देख कर सब लोग हंसी से लोट पोट हो रहे थे। इतना हंसे कि आंखों में पानी आ गया था। वे बुजुर्ग कुलपति, जिनका छीछालेदर किया जा रहा था, नागराजन की दृष्टि में आदरणीय विद्वान थे, सज्जन थे। उनकी बहू उनके इस श्रद्धाभाव से परिचित थी। जानबूझकर उन्हें चिढ़ाने के लिए ऐसा कर रही थी। नागराजन कुछ नहीं बोले। थोड़ी देर चुप बैठे रहे, फिर 'यू कैरी ऑन' कहते हुए उठ गए। सवेरे सैलून से बाहर आते समय मन की जो हालत थी अब फिर वही हो गई।

अच्छा हुआ, उस मकान के ऊपर एक खुली छत थी। ऐसे मौकों पर वही उन्हें शरण देती थी। नागराजन ऊपर चले गए और मुंडेर का सहारा लिए नीचे गली का दृश्य देखने लगे। बाहर बगीचे में, निचली मंजिल के लड़के के साथ अनु खेल रही थी। उसने सिर

उठाकर उन्हें देख लिया तो हाथ हिलाया। उन्होंने भी हाथ हिलाया। फिर छत पर चहलकदमी करने लगे। नीचे मालिक मकान सपरिवार रहता था। ये लोग पहली मंजिल पर थे।

चहलकदमी करते करते आज की अपनी अभिव्यक्तियों की मन ही मन छानबीन करने लगे। क्या वे सचमुच मर्यादा लांघ गए। ज्यादा कुछ बोल दिया? सवेरे सैलून में अपना आक्रोश प्रकट किए बगैर गुमसुम जो रह गए थे, वह उन्हें खटकता रहा होगा। शायद उसी का ऐसा विस्फोट हो या अपने बेटे-बहू की जीवन शैली, रहन सहन, और उनके मूल्य आदि के प्रति उनके अंतर में जो नफरत की भावना भरी हुई थी, इस वार्तालाप के दौरान वही तो नहीं उमड़ पड़ी? वही तो नहीं छलक पड़ी? अथवा उनके अंतर्मन में यह हीन भावना घर कर गई होगी कि वे केवल मैट्रिक हैं, किंतु अपने से कहीं ज्यादा पढ़े लिखे अपने बेटे बहू की जमात कितनी उथली है, उनमें कोई गहराई नहीं है, वे इस तथ्य को स्वयं अपने मन में सिद्ध करते हुए सांत्वना तो नहीं पाना चाहते थे?

हमेशा की तरह आज भी अपने दिल की गहराई में दबे हुए क्रोध और द्वेष आदि भावनाओं पर वे लज्जित हो उठे। उन्हें ग्लानि सी हो रही थी। सोचा, थोड़ी देर पहले मैंने जिस रूप में अपने को पेश किया, अपने विचारों को व्यक्त किया वह बिल्कुल बेहूदगी से भरा है। नहीं, मेरी अभिव्यक्ति का ढंग उतना बेहूदा नहीं था, असल में मेरी नीयत शर्मनाक थी। पिछली शाम को सिनेमा थिएटर में हुई घटना उन्हें याद आई। अमूमन, जब बेटा बहू फिल्म देखने निकलते तो वे उनसे कहते, "मैं नहीं चल रहा हूं, तुम लोग हो आओ।" लेकिन कल काफी अरसे के बाद वे भी उनके साथ चल पड़े। बेम्पिर पैर की कोई हिंदी फिल्म। देखते देखते सिर दुखने लगा। इंटरवेल से जरा पहले बाहर निकले और कॉफी स्टाल में कॉफी का आर्डर दिया। एक घूंट पी। ओह! कितनी घटिया थी? इसके लिए पचहत्तर पैसे? कैसी बेईमानी है यह। साथ बैठे कुछ और लोग कॉफी पी रहे थे। उनके चेहरे पर अरुचि का, प्रतिरोध का कोई भाव नहीं था। नागराजन को लगा, यह सारा संसार रोष और आवेशहीन हो गया है। इसीलिए ऐसी फिल्में देखते हैं, ऐसी फीकी कॉफी पीते हैं।

टङ्क... से उन्होंने कॉफी का प्याला काउंटर पर रखा और बैरे को आवाज दी। वह पास आया।

"यह कॉफी है?"

"हां, साहब!"

"नहीं, यह कॉफी नहीं है।"

वह चुप खड़ा था।

उन्होंने फिर कहा, "यह कॉफी नहीं है।"

आसपास खड़े लोगों का ध्यान उनकी ओर गया।

"यह कॉफी है, साब!"

"नहीं।"

"इतने लोगों ने पिया। किसी ने कुछ नहीं कहा। सिर्फ आप ने..."

"उनमें दम नहीं है। तुम्हें शरम नहीं है। कॉफी के नाम पर पानी पिलाकर पैसा लूटते हो... बेईमान कहीं के।"

"जरा तमीज से बातें कीजिए।"

"तमीज! यह तुम कहते हो? बदतमीज कहीं के।"

बस, उस बैरे ने उनकी कमीज पकड़ ली। इतने में इंटरवेल हो गया और वहां भीड़ जमा हो गई। कई लोगों ने बीच बचाव करके मारपीट होने से रोका। इतने में उनका बेटा उन्हें खोजता हुआ आ गया।

अब कल की घटनाओं की याद करने पर उन्हें अपने व्यवहार पर गर्व हुआ, साथ ही दुख भी। कारण, लोगों ने बीच बचाव तो किया। मगर किसी ने उस फीकी और घटिया कॉफी के खिलाफ आवाज नहीं उठाई। इस विषय में उनका साथ नहीं दिया। इस पर क्या कहा जाए। लोगों की रुचि बदल गई, या रुचि की परिभाषा ही बदल गई?

जो भी हो, उनकी अभिव्यक्ति साहसपूर्ण थी, सत्य पर आधारित थी। आज की अभिव्यक्ति की भांति मोटवानी जैसों के प्रति नफरत, बहू से असंतोष जैसी भावनाओं के धब्बे उसमें नहीं लगे थे। उन्हें अपने को और भी परिपक्व कर लेना है। अपनी अभिव्यक्ति को निर्मल बनाना है। नहीं तो उनमें और उनकी बड़ी बहन में क्या फर्क रहेगा जो छोटी उम्र में ही विधवा होकर उनके साथ रहने को आई थीं और उनके दांपत्य जीवन के शुरू के सुनहले दिनों को नरकतुल्य बना दिया था। उनकी विधवा बड़ी बहन हमेशा कल्याणी के दोष निकालने की ताक में रहती थी, इस तरह अपना महत्व साबित करना चाहती थी।

छिः छिः।

वह जमाना अब नहीं रहा। जिस तरह उनकी पत्नी कल्याणी अपनी ननद को झेलती, सहती रही, वैसे उनकी बहू आज नहीं सहेगी। उससे इसकी अपेक्षा करना भी उचित नहीं है। उनकी बहू नहीं सहेगी। उनको खिलाती पिलाती है, इतना तो सह लेती है न? बस! इसके लिए उन्हें कृतज्ञ रहना है। उनसे अलग होकर वे नहीं रह सकते। अनु को छोड़कर रहना हरगिज संभव नहीं। अपने अकेलेपन को भुला देने के लिए, वे उन्हीं के भरोसे पर हैं न? अकेलापन उन्हें पसंद नहीं है। कल थिएटर में उतनी भीड़ के बीच में उन्हें अपनी तनहाई साफ महसूस हुई। वहां पर उनके प्रतिरोध को कोई सहारा न मिला, किसी ने उनकी आवाज में अपनी आवाज न मिलाई। शायद इसी से आज सैलून में वे गुमगुस रह गए,

निष्क्रिय रह गए। हां, अकेलापन का भय ही आखिर मनुष्य की उमंगों को नियंत्रित कर देता है। उसे समझौतों के लिए मजबूर करता है।

अगर वे उम्मीद करें कि केवल उनका बेटा और बहू अपने वर्ग के लोगों से कटकर अलग रहें तो उनकी यह उम्मीद कहां तक न्यायसंगत है?

संभव है, इसी प्रतीक्षा और उम्मीद के माध्यम से वे बेटे बहू के साथ अपने बने रहने को उचित साबित करना चाहते हैं।

वाह रे स्वार्थी बुड्ढे!

नागराजन ने फिर से मुंडेर के पास जाकर नीचे देखा। बहू, बेटा, मोटवानी दंपति चारों जने घर से बाहर निकलकर सड़क पर आ गए हैं। न जाने किस बात पर मोटवानी इतने जोर से हंस रहे हैं। उनकी बहू ने कोई चुटकुला सुनाया होगा।

बहू ने उनके बेटे का दिल तो जीत लिया है। लेकिन बहू के संस्कार बेटे के संस्कारों से एकदम भिन्न हैं। तब... क्या वह इस दृष्टि से कल्याणी की विलोम है?

कल्याणी की निःस्वार्थ प्रकृति, सीधा स्वभाव, स्पष्ट अभिव्यक्ति, प्राचीन संस्कारों के प्रति गहरी आस्था और इनकी रक्षा लिए लड़ने का साहस।

नीचे अनु अभी तक उस लड़के साथ खेल रही थी। मकान मालिक आराम कुर्सी पर लेटा जो आकाश की तरफ घूर रहा था, नागराजन पर दृष्टि पड़ते ही इशारे से उन्हें नीचे बुलाया।

नागराजन सीढ़ियां उतर कर नीचे आए और उनके पास पड़ी खाली कुर्सी पर बैठ गए।

"सुना आपने? कहते हैं, उस सैलून के नाई की किसी ने चाकू मारकर हत्या कर दी है।" मकान मालिक ने कहा। सीढ़ियां उतरने से दिल जो धक धक कर रहा था, अब उसकी धड़कन और बढ़ गई। कौन सा नाई? इस प्रश्न के साथ उन्होंने अपने परिचित उस नाई का हुलिया बताया। मकान मालिक ने हामी भर दी। मन में आया, कहीं अगला यह न सोचे कि मैं इस समाचार की प्रतीक्षा में था। उन्हें अपने आप पर ग्लानि सी हुई।

फिर अपने को संभालकर हल्की सी उम्मीद के साथ पूछा, "जान का खतरा तो नहीं है?

मालिक ने होंठ भींच लिए। बोले, "अस्पताल ले जाते वक्त रास्ते में ही प्राण निकल गए। छुरा भोंकनेवाला कौन है, जानते हैं? अठारह साल का एक लड़का।"

हां, वहीं लड़का होगा जो मूली और अमरूद को चाकू से टुकड़ा टुकड़ा करके खा रहा था। वे कुछ नहीं बोले। शायद इस दुर्घटना को वे रोक सकते थे। उन्हें लगा, उस नाई के खून से उनके हाथ रंग गए हैं।

बाहर सड़क पर उनके लिए सुपरिचित मोटरसाइकिल की धीमी आवाज दूर से आई, धीरे धीरे तेज होकर, घड़घड़ाती हुई पास आई और उनके कानों को बहरा करती हुई फिर से दूर हटते हटते हवा में विलीन हो गई।

"दादाजी! घर चलें?" अनु ने पास आकर उन्हें बुलाया।

उस मासूम बच्ची के पवित्र स्पर्श से, जैसे अपने को धो लेना चाहते हों, नागराजन ने हठात उसे कसकर अपने आलिंगन में भर लिया।

अपर बर्थ

आखिरी वार एक लंबी सी कश खींची। आखिरी घूंट का धुआं। रेल की खिड़की के बाहर उसने सिगरेट की जो टुकड़ी फेंकी थी, उसे सामने की तरफ से आई हवा का एक झोंका चुग कर ले गया।

रात के सवा आठ बजे थे। लगातार तीन सिगरेट फूंकने पर भी अब तक केवल पंद्रह मिनट ही खपा पाया है और दो दिनों का लंबा सफर कटेगा कैसे? वह भी तीसरे दर्जे के इस डिब्बे में, इतने लोगों के बीच। हाय बाबा! चिदम्बरम ने घृणा से नाक-भौंहें सिकोड़ ली और करता भी क्या? दिल्ली से उसे तुरंत प्रस्थान करना था, इसलिए पहले दर्जे का टिकट नहीं मिला। उस दिन के सभी टी.टी.आर. उसके अपरिचित निकले। न जाने क्यों विभाग टिकट चेकरों को अक्सर बदलता रहता है। अकेला एक आदमी कितने टी.टी.आर को वश में कर सकता है?

दिल्ली स्टेशन पर जो जो उसे विदा करने आए थे उन सब की उसने याद की। शान्ता, बेबी, रत्ना, अपर्णा—हां, सब से पहले अपर्णा का नाम लेना चाहिए। श्री और श्रीमती मुखर्जी, मिसेज मुखर्जी की वह मुस्कान—लगता है, मुझ जैसे नौजवानों को वह अपने निजी वेवलेंग्थ में कोई संकेत देती रहती हैं।

जाली मित्रों के उस झुंड में केवल अपर्णा के पास उसके प्रति सच्ची स्नेह-ममता थी। स्टेशन पर उसके उदास झुलसाए मुखड़े को देखकर उसके दिल को भी कुछ होने लगा था। मन कर रहा था, उसे प्यार से गले लगा लूं और उसके कान में फुसफुसाऊं, ''अपर्णा प्रिये, तुम्हारे दिल को मैं जानता हूं।'' फिर वहां पर मौजूद दूसरे लोगों के सामने जोर से ऐलान करूं, ''यही मेरी सच्ची प्रेमिका है, समझे?'' फिर रेल को जानबूझकर 'मिस' कर दूं और उसी के साथ बना रहूं।

मगर मानव मन में अच्छे और सच्चे विचार कितनी देर तक टिकते हैं? रूमाल हिलाती खड़ी उसकी वह सूरत ही अब भी आंखों के सामने थी। साथ ही उसके साथ बिताए उन दिनों की, उन अमूल्य क्षणों की धूमिल यादें, बेहद शांत और ममता भरी, उन क्षणों की खूबसूरत स्मृतियां शेष रहीं। अपर्णा को अपनी जीवनसंगिनी बना ले तो जिंदगी में हमेशा हमेशा के लिए स्वर्गीय आनंद और शांति बनी रहेगी। लेकिन उसकी आकांक्षाएं? उसके

सपने? इनका क्या होगा? वह कभी नहीं चाहता था कि वह एक मामूली, औसत आदमी की तरह अपनी जिंदगी गुजारे। चाहता था कि चाहे जब भी हो इस संसार का बड़ा आदमी, गणनीय व्यक्ति बन जाए। बुद्धिमत्तापूर्ण विवाह द्वारा वह इसकी नींव डाल सकता है। उसके सामने दो विकल्प थे–प्रेम और जीवन में तरक्की। काफी सोच विचार के बाद उसने दूसरे को चुन लिया था।

सहसा रबड़ का एक गेंद उसकी गोद में आ गिरा और उसकी विचारधारा टूट गई। सिर उठाकर देखा तो सामने की सीट पर बैठा एक बालक मुंह में उंगली डाले भय और लज्जा मिश्रित नयनों से उसकी ओर देख रहा था। गेंद उस बालक की रही होगी। 'लो' मुस्कराते हुए उसने गेंद उसकी ओर बढ़ाया। वह बालक हिचकता हुआ आया और गेंद लेकर जल्दी जल्दी अपनी सीट पर चला गया।

सामने वाली सीट पर लगभग तीस साल का एक दुबला पतला युवक बैठा था जो बालक का पिता था। उसने चिदम्बरम को देख कर कहा, "बड़ा चंचल है, पल भर के लिए भी चुप नहीं बैठ सकता।"

चिदम्बरम ने सहानुभूति के साथ सहमत होते हुए कहा, "बच्चा है न? डिब्बे के अंदर बंधन सा महसूस करता होगा।" इसे सुनकर वह भी मुस्कराई–उस बालक की मां। उस युवक की पत्नी। चिदम्बरम को उसकी मुस्कराहट अच्छी लगी। उसकी काली काली आंखें, सुघड़ नाक, गाल, कंठ क्या उसका अंग-प्रत्यंग मुस्कराता नजर आया।

बालक के पिता ने पूछा, "आप भी मद्रास जा रहे हैं?"

चिदम्बरम ने कहा, "हां।"

"मद्रास में नौकरी कर रहे होंगे।"

"नहीं, दिल्ली में एक कंपनी का सेल्समैन हूं।"

"ओहो। तो आप भी दिल्ली वाले हैं?"

"पक्का दिल्ली वाला।" चिदम्बरम हंस पड़ा।

वह शख्स दिल्ली में कहां नौकरी करता होगा? चिदम्बरम ने इसका अंदाजा लगाने की कोशिश की। किसी सरकारी दफ्तर में कलम घिसता होगा शायद। चेहरे पर, और भावों में जरा भी चुस्ती या उत्साह नहीं दिखता। सामने वाले ने जब कहा, "मिनिस्ट्री में काम कर रहा हूं।" चिदम्बरम का अनुमान सही निकला।

उसकी पत्नी सुंदर है, सममुच! खासकर इस पति की तुलना में। उसने जितने बेमेल जोड़ियों को देखा है, उनमें एक यह भी है। इस युवती में इससे सुंदर पति को पाने की योग्यता विद्यमान है। गोरी चिट्टी, तराशे हुए नाक नक्शे, सुंदर, सुडौल, ओह! इसका हाथ पाने के लिए एक से बढ़कर एक योग्य वर होड़ लगाते। लेकिन इस छोकरे की किस्मत अच्छी है।

जो इसके लिए भाग्य की बात है, वही उसके लिए दुर्भाग्य। हाय, बेचारी! अंदर ही अंदर तरसती रही होगी। व्याकुल रही होगी, अपने जोड़ का पति न मिलने का रंज, छटपटाहट, उसके अंदर जरूर होगी। चोरी छिपे चिदम्बरम उसी की ओर निहारता रहा। जैसे उसके दिल की भावनाओं को जानना चाहता हो, उसके भीतर की भावनाओं का लेखा जोखा करना चाहता हो, उसके अंतर्मन में छिपे रहस्य को टटोलना चाहता हो। जब तब उसकी आंखें उसकी नजरों से मिलती और परे हटती रहीं। उसकी नजर अपनी ओर खिंची हुई है, इसका एहसास होते हुए भी उसने इसकी परवाह नहीं की। एक हल्की मुस्कान उसके मुखड़े पर छलक रही थी। उसकी इस हरकत की स्वीकृति तो नहीं दे रही है यह मुस्कान?

उस बालक ने अपने पिता के कानों में धीमी आवाज में कुछ कहा। तुरंत उस युवक ने मुस्कराते हुए चिदम्बरम की तरफ देखकर कहा, "अपर बर्थ में बैठना चाहता है यह।" ऊपर के दो बर्थों में एक चिदम्बरम का और दूसरा पास में बैठे एक बुजुर्ग का था। "ओह! श्योर"—चिदम्बरम हंसता हुआ धीरे से उस बालक को उठाकर ऊपरा के बर्थ पर बिठा दिया और प्यार से उसके गाल पर हल्की चपत लगाकर अपनी सीट पर बैठ गया।

ऊपर से बालक ने आवाज दी, "मां।" उसके चेहरे का भाव ऐसा था मानो उसने कोई किला जीत लिया हो। उसकी मां उसे देखकर मुस्कराई और वहीं लेट जाने का इशारा किया। कितनी सुंदर मुस्कराहट! कैसे मनोहर भाव हैं चेहरे पर! चिदम्बरम खिड़की के शीशे पर झलके उसके प्रतिबिंब को अपलक निहारता बैठा था। थोड़ा समय इसी में कटता जा रहा था। इतने में वह टिफिन कैरियर उठाकर खोलने लगी।

"सर, इडली खाइए न!"

चिदम्बरम "ना" कहना ही चाहता था, लेकिन चूड़ियां खनखनाती, अपनी कोमल और लंबी पतली उंगलियों में जब उसने इडली उठाकर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, "लीजिए" तब वह इंकार नहीं कर पाया। पत्तल को हाथ में लेते वक्त उसने उसकी उंगलियों को जानबूझकर छू लिया था। लेकिन उसका चेहरा निश्चल था, कोई परिवर्तन नहीं था। शायद उसने सोचा होगा, अनजाने में छू लिया होगा। ना.. ना..। बगल में पति महोदय विराजमान हैं, इसीलिए चेहरे पर कोई भाव आने नहीं दिया होगा। इडली के बाद, 'ना.. ना..' करने पर भी, उसने उसकी पत्तल पर दही भात परोसा। उसी मुस्कान के साथ। उस मंद हास को निहारता हुआ उसने दही भात भी खा लिया। बोला, "खाना बढ़िया था।" उसकी इस तारीफ के बदले में वही मंद हास उपहार के रूप में मिला, मानों खुदरा दे रही हो।

ऊपरी बर्थ पर बैठा बालक खाना खाकर वहीं सो गया था। निचले बर्थ पर चादर बिछाकर उसने ऊपर सोए बालक को नीचे सुला दिया। सिगरेट का धुआं उड़ाते हुए चिदम्बरम जो शीशे की ओर ताकता बैठा था, अब अपने अपर बर्थ पर जाकर लेट गया।

अब उसे कुछ राहत सी लगी। तसल्ली महसूस हुई कि वह अपनी जगह पर आ गया है। पहले दर्जे का टिकट न मिला तो सही, कम से कम यह अपर बर्थ तो मिल गया है न? यही बहुत है। नहीं तो इन सामान्य लोगों के साथ, उनके बराबर बैठे हुए... हूं। गनीमत है कि यह खूबसूरत औरत सामने बैठी है। इससे तीसरे दर्जे के इस सफर को एक हद तक बर्दाश्त कर पा रहा हैं। बत्ती बुझने तक वह ऊपर से उस युवती पर नजर लगाए रहा। बत्तियां बुझ जाने पर उसे मद्रास में अपने इंतजार में बैठी इन्द्राणी की याद आई। इन्द्राणी उसकी भावी पत्नी, उसकी होने वाली बीवी।

इन्द्राणी... इन्द्राणी... इन्द्राणी.... अब कैसी होगी वह? मोटी हो गई होगी या थोड़ी सी दुबली? जरूर दुबली हो गई होगी। पिछली बार मिलते वक्त बता रही थी न? "डायट में हूं मैं, स्लिम होना है।" जरूर स्लिम हो गई होगी। पंछी के पंखों से बनी जैसी हल्की हल्की... मेरी छाती पर छा जाएगी। कहीं चलती हवा में वह उड़ न जाए, इस तरह घबराता हुआ मैं कसकर उसे अपने आलिंगन में भर लूंगा। हल्की सी, कोमल... मुलायम... इन्द्राणी...

हां... बिल्कुल हल्की, बिना वजन की। लेकिन? एकाएक उसके दिल में घबराहट छा गई—इन्द्राणी का मन? वह भी बिल्कुल हल्का रहेगा न? उसकी गैरहाजिरी में उससे भी जोरदार, बलवती हवा के झोंके कहीं उसे बहाकर ले न गए होंगे? अब मैं तो उसकी याद कर रहा हूं, वह किसकी याद कर रही होगी? मेरे बारे में? या...? इस समय वह घर में होगी या कहीं बाहर चली गई होगी? अकेले ही या किसी और के साथ?

दूर से इंजन की कान फोड़ने वाली चीख हवा में तैरती आई। झुंझलाहट और पीड़ा से झल्लाया चिदम्बरम बुदबुदाया "ओ माई गाड!" उसने आंखें बंद कर लीं। उसने स्वयं को कोसा, मैं बड़ा बेवकूफ हूं।

छह महीने से वह उसके पास, उसके साथ न रहा। न उसे देखने गया है। हजारों मील की दूरी पर निश्चिंत बैठे रहना कितनी बड़ी बेवकूफी की बात है? प्रेम क्या बैंक में जमा किया धन है जो अपने आप ही सूद सहित बढ़ता जाए? वह तो खेत की फसल जैसी है। हमेशा उसके साथ रहकर, समय पर सिंचाई करते, खाद डालते, निराते, पानी देते, चारों तरफ निगरानी करते कि कोई जानवर आकर चर न ले, यों सुरक्षित रखने की चीज है वह। तिस पर इन्द्राणी तो सोने की फसल है, हीरों की खान है। प्रेम का बीज बोकर लहलहाती फसल उगाना, ठन ठन खनखनाते रुपयों और सरसराते नोटों की फसल काटना, फिर शाही ठाट बाट से ऐशोआराम की जिंदगी गुजारना कौन नहीं चाहेगा? स्पर्धा करते, होड़ लगाते कितने लोग नहीं आएंगे? वह जिस धनी मानी उच्च वर्ग की लड़की थी, उस स्टेटस और प्रतिष्ठा का भागीदार बनने के लिए चाहे कितनी भी पूंजी लगानी हों, या दांव रखना हो

हर कोई तैयार रहेगा। ऐसा अमूल्य और अप्राप्य इन्द्राणी का वह प्रेम, वह मुहब्बत चिदम्बरम को मिली थी।

क्या वह विश्वास कर सकता है कि छह महीने की इस लंबी अवधि के बाद भी उसके प्रति इन्द्राणी का प्रेम उसी तरह बना रहेगा?

छह महीने!

"बुद्धू, बुद्धू कहीं का," बुदबुदाते हुए चिदम्बरम ने करवट बदल ली। एकाएक किसी स्टेशन का हो हल्ला, शोर-शराबा सुनाई देने लगा। क्रीच...की खरखराती आवाज उठाती हुई गाड़ी रुक गई। "पूड़ी सब्जी—गरम चाय—पान बीड़ी सिगरेट... युवर अटेंशन प्लीज... जैसी ध्वनियां, जैसे सपने में सुनाई दे रही हों, उसके कानों से टकराती रहीं। उन आवाजों के सहारे वह उस प्लेटफार्म के दृश्य की कल्पना कर सकता था। कई एक मौकों पर देखे कई एक प्लेटफार्म के दृश्य उसकी आंखों के सामने बिछ गए। उसने आंखों को कसकर मूंद लिया। उसे लग रहा था कि दुनिया भर के प्लेटाफार्म को जोड़कर एक लंबा सा प्लेटाफार्म सामने है और उस पर वह खुद कदम बढ़ाता चलता जा रहा है। बीच बीच में गाड़ियां आती जाती रहती हैं, लेकिन वह एक ऐसी जगह की ओर कदम बढ़ा रहा है, जहां पर कोई गाड़ी न हो। वह प्लेटफार्म इतना लंबा था कि मानो जिसका कोई अंत ही न हो। चलते चलते वह दो साल पीछे चला गया। हां, दो साल के पहले दिल्ली स्टेशन के प्लेटफार्म पर वह खड़ा था। हां, किसी के इंतजार में।

सर्दी का मौसम था। दिसंबर महीने की कड़ी सर्दी उसके ऊनी कपड़ों को बेधकर उसके शरीर को कंपा रही थी। ठंडी ठंडी हवा में कांपता हुआ वह खड़ा था। बंबई से उसकी कंपनी के डाइरेक्टर आने वाले थे। उस कंपनी की दिल्ली शाखा की तरफ से उनका स्वागत करने के लिए वह प्लेटफार्म पर खड़ा था। उन दिनों ऐसे काम उसी के सिर पर थोपे जाते थे। तब तो दफ्तर में कुल मिलाकर तीन व्यक्ति थे। मैनेजर राघवाचारी, डिसपैच क्लर्क जोसफ और चिदम्बरम।

उस समय वह स्टेनो था। असल में प्यून, टेलिफोन आपरेटर, रिसेप्शनिस्ट, कार ड्राइवर सब कुछ वही था। मैनेजर राघवाचारी ने कहा, "चिदम्बरम! आज क्लब में ब्रिज टूर्नामेंट है। आइ कांट मिस इट। तुम स्टेशन जा सकते हो? प्लीज। डाइरेक्टर से बता देना कि मेरी तबीयत ठीक नहीं है।" 'येस सर' कहकर चिदम्बरम रात की उस कड़ी सर्दी में प्लेटफार्म पर खड़ा था।

रेल के आते ही, आदत के मुताबिक उसके पैर तीसरे दर्जे के डिब्बे की तरफ बढ़ गए, फिर एकाएक याद आते ही पहले दर्जे के डिब्बे की तरफ दौड़ता गया। आज भी उस घटना की याद ताजा है। अच्छा हुआ, स्टेशन के लिए निकलने से पहले डायरेक्टर की फोटो

देख ली थी। और काला सूट पहने पाइप से चुरुट का धुआं फूंकते हुए वे भी उसके इंतजार में डिब्बे के बाहर खड़े हुए मिले। चिदम्बरम ने उन्हें पहचान लिया। बोला, "एसक्यूज मी, सर, आप ही मिस्टर पट्टाभि हैं न?" उन्होंने हामी भर दी। तुरंत उसने उन्हें अपना परिचय दिया।

"वैरी ग्लैड टु मीट यू।" उन्होंने हाथ मिलाया और अपने पास खड़ी युवती की ओर इशारा करके बताया, "यह मेरी बेटी इन्द्राणी है। चिदम्बरम सोचता रहा कि हाथ जोड़ूं या मिलाऊं, इतने में उसने मुस्कान के साथ हाथ बढ़ाते हुए कहा, "हाव डु यू डू?"

कार जब स्टेशन छोड़कर थोड़ी दूर आगे बढ़ी तो उन्होंने पूछा, "राघवाचारी क्यों नहीं आए?" चिदम्बरम ने कहा, "उन्हें बुखार है, सर।"

"आज दफ्तर आए थे कि नहीं?"

"आए थे।"

"हूं।"

शायद उन्होंने कुछ अनुमान लगा लिया हो। थोड़ी देर तक मौन रहे। फिर पूछा, "आप बहुत दिनों से दिल्ली में रहते हैं?"

"येस सर! आठ साल से।"

"मैं पहली बार आ रहा हूं। दिल्ली अच्छा शहर है न? आप की क्या राय है?"

"मुझे तो अच्छा लगता है, सर।"

"इसका कोई विशेष कारण है?"

"क्यों अच्छा लग रहा है, यह तो बता नहीं पा रहा हूं। दिल्ली के खुले मैदान, दोनों तरफ पेड़ों की कतारों से सजी सड़कें, किलों के खंडहर, पुरानी टूटी फूटी इमारतें, बार बार बदलती आबो हवा, दौड़धूप और शोरगुल से रहित धीमी, मंद गति से गुजरती जिंदगी—यह सब मुझे बेहद अच्छा लगता है, सर।"

"रियली? लेकिन मिस्टर चिदम्बरम! मुझे यह धीमी गति बिल्कुल पसंद नहीं। मेरे लिए चाहिए—रफ्तार—तेज—रफ्तार।"

चिदम्बरम ने अक्सिलेटर को दबाया। कार तेज रफ्तार से चलने लगी। पार्लियामेंट, सचिवालय इत्यादि से गुजरते वक्त मिस्टर पट्टाभि सड़क के दोनों तरफ की ऊंची ऊंची इमारतों को गौर से देख रहे थे।

चिदम्बरम ने कहा, "दिल्ली द्रुत गति से विकास करती रहती है।"

इण्डिया गेट से गुजरते वक्त, तीन मूर्ति भवन को पार करके, चाणक्यपुरी की तरफ चलते समय, सड़क के दोनों तरफ फैले पड़े विशाल और खुले मैदानों को देखकर वे चकित रह गए।

"दिल्ली अलग अलग जगह पर अपनी अलग अलग छवि दर्शाती है" चिदम्बरम ने कहा।

पट्टाभि ने सिगरेट की राख झाड़ते हुए कहा, "इतनी तरक्की और परिवर्तनों के बीच इस दिल्ली में अकेली हमारी कंपनी का जैसे का तैसा बिना उन्नति व परिवर्तन के रहना भी एक उपलब्धि है, न? एक रेकार्ड है, न?"

चिदम्बरम स्तब्ध रह गया। आगे अशोक होटल में जाने तक चुप्पी साध ली। अशोक होटल में उनके ठहरने का सारा इंतजाम करने के बाद, फौरन उसने फोन पर राघवाचारी से बातें कीं।

अगले दिन सवेरे राघवाचारी और वह दोनों अशोक होटल में जब उनसे मिलने गए, वे नहा रहे थे। इन्द्राणी ने कहा, "बैठिएगा। अभी आ जाएंगे।" फिर उसने दिल्ली के बारे में बड़ी उत्सुकता से कई सवाल किए। कहा, "आप लोग कंपनी और बिजनेस की बातें करते रहेंगे, मुझे बोर-सा लगेगा।"

"मैं आपको दिल्ली दिखाने ले जाऊंगा।" चिदम्बरम ने कहा।

इस पर प्रसन्न होकर वह मुस्कराई। दोनों को परस्पर मिलाने में पुल का काम कर रही थी उन दोनों की नई नई जवानी और मोहकता। वे दोनों उस पुल पर एक दूसरे को आमने सामने देखते हुए कदम बढ़ाने लगे।

राघवाचारी के स्वर ने उस मादकता में खलल डाला। वे बोलने लगे, "दिल्ली की चप्पा चप्पा जमीन से मैं वाकिफ हूं। ऐसे भी स्थानों का मुझे पता है जिन पर अभी तक किसी की निगाह नहीं गई है। पिछले बीस सालों से यहां रहता हूं न? एक दिन आप लोगों को घुमाने ले जाऊंगा।"

पट्टाभि इसे सुनते हुए आ गए बाथरूम से। कमर पर एक तौलिया था, बस। छूटते ही बोले, "लेकिन, राघवाचारी। आप से यह सब संभव है? सुना था, आप की तबीयत ठीक नहीं। बुखार है आपको।"

राघवाचारी घबराए से उठकर खड़े हो गए।

"आज तबीयत कैसी है? ठीक है?"

"येस सर!"

'हूं' पट्टाभि अंदर गए और लुंगी और ड्रेसिंग गाऊन पहने, ऊपर से शॉल ओढ़े बाहर आए। बोले, "लगता है। यह मौसम बड़ा खराब है। मुझे भी जरा सावधान रहना होगा।"

"हां! हां! सर! यह मौसम बड़ा छलिया है।"

"आप जो दिल्ली के पुराने नागरिक हैं, इसने आप को भी ठग लिया।" पट्टाभि की बात सुनते ही सब हंस पड़े।

"दिन में भी सर्दी महसूस होगी क्या?"

"घर के अंदर ठंड लगती है। बाहर धूप बड़ी सुहावनी लगती है, सर।" राघवाचारी ने कहा।

"ओह! तब तो मेरे भाग्य में यह नहीं बदा है।" पट्टाभि बोले, "आज की दुपहरी हमें दफ्तर के अंदर ही बितानी पड़ेगी। आपको कोई एतराज नहीं है न?"

"नो, नो सर।"

"धूप का वह सुख बेकार न हो जाए, इस ख्याल से हम अपने प्रतिनिधियों को भेज देंगे। मिस्टर चिदम्बरम!"

"सर!"

"मेरी बेटी दिल्ली देखना चाहती है। आपका सहयोग मिलेगा न?"

"येस सर।"

"कष्ट के लिए क्षमा।"

"कोई बात नहीं, सर।"

"लौट आने पर बताइए कि धूप कैसी लगी...हा-हा-हा..." पट्टाभि हंस पड़े।

वाकई धूप सुहावनी लग रही थी, मानो हल्के हल्के ताप देकर सेंक दे रही हो, यों सुखद अनुभव हो रहा था। मंद मंद रश्मियां जो आंखों में चुभती नहीं थीं।

चिदम्बरम को लगा, आज से पहले कभी दिल्ली का सर्दी का मौसम इतना सुखद, इतना मनोहर, मन को मदमत्त करने वाला कभी नहीं रहा। उसे ऐसा एहसास हो रहा था कि धूप की हल्की, उजली किरणें, कोमल, मुलायम रेशे हों, और इन सुनहली रेशम के रेशों से बुनी हुई एक मुलायम चादर ने इन्द्राणी और उसको अपने आगोश में ले लिया हो। बिड़ला मंदिर, लाल किला और गांधी जी के समाधि स्थल पर, चप्पल उतारकर संगमरमर के फर्श पर, अपने गोरे सुंदर पांव लगा कर चलते वक्त, 'हुश्...श् बहुत गरम है,' कहती हुई इन्द्राणी कितनी सुंदर लग रही थी। गोरी चिट्टी वह युवती खुद संगमरमर की मूर्ति सी, उस धूप में चमचमाती रही। चिदम्बरम ने उसे हल्के से छूकर देखा और बोला, "आप भी इस धूप सी उजली उजली लगती हैं।" यह सुनकर वह खिलखिलाकर हंस पड़ी। उजली धूप में, उसकी दंतपंक्तियां, गीले ओठ और चमकती आंखें कैसी खिल उठी थीं। चिड़ियाघर में घूमते वक्त वह बोली, "आप लंबे हैं न? आपकी छाया में, आपके पीछे पीछे चलूंगी।" इन्द्राणी द्वारा उसका अनुगमन करते वक्त, इण्डिया गेट की झील में नौकाविहार करते वक्त, जल में अपने प्रतिबिंब को देखकर बालों की लटों को सहेजते वक्त पतवार से छितराए पानी की बूंदें, उलझे, बिखरे केश पर, उजली धूप में मोतियों की तरह झिलमिलाते वक्त, कितने मधुर, कितने सुंदर लगते थे वे क्षण! कनाट प्लेस की दुकानों की खिड़कियों के

शीशों पर झिलमिलाती सूर्य किरणें, सड़कें, सड़कों पर तेज रफ्तार से चलती मोटरें, सभी कुछ बहुत अच्छे लगे। शीशे पर उसके प्रतिबिंब को दिखाकर जब उसने पूछा "जी! इसका दाम कितना है? तब नकली गुस्से से मुंह बनाती हुई जो मुस्कराई, ओह! वह अदा... कितनी मोहक थी!

हां, धूप अच्छी लगी। दिल्ली अच्छी लगी और इन्द्राणी भी बेहद अच्छी लगी।

अगले दिन इन्हीं स्थानों को इन्द्राणी के पिताजी के साथ देखते वक्त?

कुतुब मीनार की चोटी से दिल्ली को देखकर उन्होंने लंबी आह भर ली। "कितने खुले मैदान हैं! कितना स्कोप है!" वे बोले, "बंबई और मद्रास को देखते समय मुझे लगता है, मैं अपने आप को आइने में देख रहा हूं। जो जो प्राप्त करना संभव था, उन सब का ज्यादातर फायदा उठा चुकने का संतोष और तृप्ति उसमें दिखती है। मगर नई दिल्ली को देखते वक्त, लगता है, तुम जैसे एक नौजवान को देख रहा हूं। मन में आशंका और हल्की हिचक लिए, आग पीछा सोचते, अपनी विकास योजनाओं को कार्यांवित करने वाला नया अंकुर सा लगता है। चिदम्बरम! इस नौजवान को हम चाहें तो मनचाहे ढंग से तरक्की के मार्ग पर ले जा सकते हैं साथ में अपनी तरक्की भी।"

वे बोलते ही रहे। शाम को होटल में बैठे, बातें करते वक्त भी, वे इसी बात की चर्चा कर रहे थे। हाथ में शराब का प्याला लिए हुए कहा था, "दिल्ली में मैं तुम जैसे नौजवान को रखना चाहता हूं, राघवाचारी जैसों को नहीं।"

"पिछले पांच सालों में दिल्ली की शाखा ने क्या किया है? चुने हुए कुछ पुराने ग्राहकों से आर्डर लेकर, मुख्यालय से उनके लिए आवश्यक सामान-पुर्जे मंगवाकर, वितरण करने का काम किया है।" उन्होंने कहा, "नए नए ग्राहक! बिजनेस में बढ़ोत्तरी? ऊहूं... कुछ भी नहीं। दिल्ली में जहां दिन ब दिन मोटरों की संख्या बढ़ती जा रही है, हम जो मोटरों के स्पेयर पार्ट्स के वितरक हैं, हमारी बिक्री में रत्ती भर भी वृद्धि नहीं। ऐसा क्यों? कोशिश करें तब न?"

"आगे इस दिशा में ध्यान लगाकर कोशिश करना तुम्हारी जिम्मेदारी है। दिल्ली में आगे तुम ही सेल्स मैनेजर हो। दूसरों के माल का वितरण करने के साथ साथ हम खुद भी कुछ चीजों का उत्पादन करेंगे। विकास के पथ पर अग्रसर होते शहर की मांगों की हम पूर्ति करेंगे। आवश्यक कल-पुर्जों का उत्पादन करेंगे।"

उन्होंने जो कुछ कहा था, उसे करके दिखाया। दिल्ली के पास इमारतें बनवाने के लिए साधन-सामग्री तैयार करने का एक कारखाना खड़ा किया। चिदम्बरम अब सेल्स मैनेजर बन गया। उसका जीवन-क्रम द्रुत गति से बदलता जा रहा था। दिल्ली शाखा का बिजनेस बढ़ गया। पट्टाभि चिदंबरम से प्रभावित हो गए। चिदंबरम के अधिकार, रोब और

सुविधाएं सबमें बढ़ोत्तरी हुई। इन्द्राणी और उसमें प्रेम भी फलता फूलता रहा। छह महीने पहले जब वह मद्रास गया था, उन दोनों की शादी का प्रस्ताव भी हो गया।

हां, छह महीने पहले। चिदम्बरम को बड़ी देर तक नींद नहीं आई।

सवेरे नींद खुलते ही सबसे पहले निचली बर्थ पर लेटी उस युवती के चेहरे पर ही उसकी दृष्टि पड़ी। हाथ मुंह धोकर आया, तब भी उसकी नजर उसी पर थी। सहसा उसे लगा कि उस मुखड़े पर उदासी छाई हुई है। वह बालक 'अप्पा... अप्पा!' (पिताजी पिताजी) कहते हुए सुबक रहा था। यह भी उसके ध्यान में आया। सोचता रहा कि उससे पूछें कि बात क्या है! इतने में वह बोल उठी, ''इसके पिताजी रात को किसी स्टेशन पर जो उतरे फिर लौट नहीं। लगता है, गाड़ी छूट गई और वे प्लेटफार्म पर कहीं रह गए। समझ में नहीं आता कि क्या करूं?'' इतना कहकर वह रोने लगी।

चिदम्बरम चकरा गया। बोला, ''रोइए मत। क्यों रो रही हैं। घबराएं मत।'' वह उसे दिलासा देने लगा।'' शायद किसी और डिब्बे में चढ़ गए होंगे।''

''ऐसा होता तो इतनी देर तक यहां आ नहीं जाते?''

''शायद उसी डिब्बे में सो गए होंगे। अब सुबह हो गई है। आ जाएंगे।''

चिदम्बरम ने मन ही मन सोचा, ''हाय! दुख और परेशानी में भी यह कितनी सुंदर लग रही है।'' उसकी वेदना और व्याकुलता पर उसे तरस आया, साथ ही दिलचस्प भी लग रहा था। हर स्टेशन पर गाड़ी रुकते ही उसके चेहरे पर विश्वास और आंखों में आशा की किरणें फूट पड़तीं। आंखें प्लेटफार्म पर इधर उधर भटकतीं और पति को ढूंढ़तीं। डिब्बे के अंदर आने वाले हर व्यक्ति पर उसकी निगाह जाती, सिर उठा कर देखती। परेशानी, उत्सुकता। पति के आए बिना ही गाड़ी फिर चलने लगती। उसके चेहर पर निराशा छा जाती। खिड़की के बाहर सूनी दृष्टि दौड़ाए वह बैठी रहती। बालक पूछता रहता, ''अम्मा! अप्पा कहां चले गए?'' सजल आंखों से वह बेटे को छाती से लगा लेती।

चार पांच स्टेशनों के बाद उसकी आशा और उत्सुकता धीरे धीरे धुल गई। लगा, अब दुख का आवेग भी कम हो गया है। उसके चेहरे पर अब एक अपूर्व शांति थी। एक शिलामूर्ति की भांति वह निश्चल बैठी थी। वह नन्हा सा बालक अपने आप कुछ खेलता रहा। लगता था कि वह भी अपने अप्पा को भूल गया है। क्या वह भी उन्हें भूल गई होगी। अब उसके चेहरे पर जो व्याप्त था वह सांत्वना का भाव था या गहरा रंज?

चिदम्बरम समझ नहीं पाया। अगले स्टेशन पर उसने कॉफी मंगवाई तो पहले उसने लेने से इंकार कर दिया। उसके बहुत जोर देने के बाद खुद पी और बालक को भी पिलाई। चिदम्बरम ने अखबार और कुछ पत्रिकाएं खरीदीं। उस बालक के लिए बिस्कुट का एक पाकेट और मोटर वाला खिलौना भी खरीद लाया। उसने इसे स्वीकार नहीं किया। चिदम्बरम

ने कहा, "कोई बात नहीं, बच्चे के लिए लाया हूं..." यों कहते हुए उसने स्थिति संभाल ली।

सुबह की रोशनी में भीगी सी रेलगाड़ी द्रुत गति से आगे बढ़ रही थी। कल यह लंबा सफर पूरा हो जाएगा। फिर न जाने वह कहां और यह महिला कहां? मन उसे भगाता रहा, "हूं-जल्दी-जल्दी करो न..."

चिदम्बरम उस छोटे बालक को अपनी गोद में बिठा लिया और पूछा, "बताओ! तुम्हारा क्या नाम है?"

"बालु।"

"बालु? ओह! वैरी गुड। बालु! जानते हो, यह रेलगाड़ी कैसे चलती है?"

"इंजन रेलगाड़ी को ले जा रहा है।"

"इंजन कैसे चलता है?"

"इंजन का ड्राइवर इंजन को चला रहा है। ऊ...कू... छुक् छुक्..."

"बड़े होने पर तुम इंजन ड्राइवर बनोगे?"

"ना-ना... मैं मोटर ड्राइवर बनूंगा।"

वह हंस पड़ी। बालक के उत्तर से ज्यादा चिदम्बरम को वह हंसी रसीली लगी।

वह बोली, "बालु! मामा जी को 'राइम' सुनाओ न?"

बालु गाने लगा—

"बा बा, बा बा ब्लैक शीप
हैव यू एनी वूल?
य़ेस सर, येस सर,
थ्री बैग्स फुल!"

बीच बीच में लाइन भूल जाता तो उसकी मां उसे याद दिलाती। ऐसे चार पांच राइम सुनाने के बाद वह एक कहानी सुनाने लगा, "एक जंगल में एक बड़ा मोटा मुठल्ला शेर था..." कहानी का मजा लेती हुई उसने चिदम्बरम द्वारा लाई पत्रिकाओं में से एक को उठा कर उसके पन्ने पलटने लगी। आंखों के कोर से चिदम्बरम इसे देखता रहा और खुश हो उठा। उनके बीच में सहज भाव बढ़ता जा रहा था, इस पर वह उल्लसित हो उठा।

दोपहर का भोजन तीनों ने मिलकर खाया। खाने के बाद थोड़ी देर इधर उधर की बातें हुई। बातों ही बातों में चिदंबरम ने जान लिया कि उसके पति की तरह वह भी दिल्ली की है। चिदम्बरम जिस स्कूल में पढ़ता था, वहीं पर उसकी भी शिक्षा हुई। स्कूली वातावरण की परिभाषाएं, अध्यापकों के 'निक नेम' भी उसे याद थे। दोनों बीते दिनों की यादों की जुगाली करते हुए समय बिताने लगे।

रात होते ही बालु को बगल में सुलाकर वह भी लेट गई। लेटते ही सो भी गई। चिदम्बरम सिगरेट फूंकता हुआ बैठा था। सोचा–'इसका सोना भी कितना सुंदर लग रहा है।' कितने खुलकर, खुशी से उससे बातें की उसने? लगता है, पति के बारे में सारी चिंता भूल बैठी है। खा पीकर मजे से अब सो रही है। पतिभक्ति क्या खाक चीज है?

दिल्ली में उसके परिचित संभ्रांत परिवारों की लड़कियों की याद आई। उसकी कंपनी की रिसेप्शनिस्ट शांता शादीशुदा है, फिर भी 'समाजसेवा' के नाम पर न जाने किस किस के साथ घूमती रहती है। बेबी और रत्ना कालेज की छात्राएं हैं। लेकिन कालेज में प्राक्सी का इंतजाम कराकर ऐरे गैरे के साथ फिरती रहती हैं। मिसेज मुखर्जी! वह अपने घर में बंगाली का जो वर्ग चलाती है, उसमें जवान लड़कों की संख्या ही ज्यादा है। चिदम्बरम ने भी इन लड़कियों का फायदा उठाया है लेकिन वह तो कुछ और बात है। सड़क पर पड़ी एक अमूल्य वस्तु पैरों तले आकर मन को ललचाए तो असली गुनाहगार वह वस्तु ही है, उसे उठाने वाला नहीं। यही चिदम्बरम का उसूल था। वह क्या कोई महान सुधारवादी है? वह तो एक बिल्कुल मामूली आदमी है, जो अक्सर चंचल, चपल और कमजोर होता है।

सामने गहरी नींद में पड़ी युवती की सूरत उसके दिल में न जाने कैसी कैसी कल्पनाओं को उत्तेजित कर रही थी। इन्हीं कल्पनाओं में खोया खोया सा वह सो गया था। ''चाचा... चाचाजी...'' बालक ने आवाज दी तो वह चौंककर उठ बैठा। तीन बज चुके थे। रेलगाड़ी किसी स्टेशन पर रुकी थी। चिदम्बरम ने प्यार से बालक के गाल पर हल्की सी चपत मारी और बाहर खड़े बैरे को आर्डर देकर कॉफी मंगवाई। कॉफी का ट्रे आया तो काफी बनाने के बहाने उसी तख्त पर बैठा जहां पर मां बेटे बैठे थे।

कॉफी पीने के बाद, चिदम्बरम आज की फिल्मों की खिल्ली उड़ाता हुआ कुछ बातें बनाता रहा। उसने भी कुछ कहा। दोनों बोलते रहे। दोनों में खूब बातें होती रहीं। धीरे धीरे चिदम्बरम के मन में आशा और विश्वास बनता गया। अपने दायरे के अंदर आ गए शिकार पर धावा मारने, दम साधे खड़े बाघ जैसा वह सावधान हो गया।

सहसा गाड़ी एक टनल में से गुजरी तो डिब्बे में अंधकार छा गया। चिदम्बरम का दिल जोर से धड़कने लगा। टनलों से भरे इस मार्ग के बारे में वह जानता था। टनल से गाड़ी बाहर निकली तो उसने उसकी ओर देखा। वह निश्चल बैठी थी।

अगले टनल पर रेल में प्रवेश करते ही उसने जरा भी आगा पीछा न सोचा, झट उसे अपने आलिंगन में भर लिया। उसकी पकड़ में उसका मांसल शरीर धंस गया। वह भौचक्की रह गई। बिल्कुल अप्रत्याशित झटके में वह अपना सुधबुध खो बैठी थी। मगर क्षण भर की बात थी। अगले क्षण जोर का एक थप्पड़ उसके गाल पर पड़ा। जैसे आग को छू लिया

हो, उसने झट अपने हाथ हटा लिए। ठीक इसी वक्त गाड़ी टनल से बाहर निकल गई। पल भर में सब कुछ घटित हो गया। चटकती धूप में चिदम्बरम की आंखें चौंधिया गईं। बगल में बैठी उस युवती की ओर आंख उठाकर देखने का साहस अब नहीं रहा। तपाक से उठकर डिब्बे के कोने की ओर चला गया और खुले पड़े दरवाजे के पास खड़े खड़े तेजी से चलती हवा के झोंकों की ठंड में अपने अपमान और अकुलाहट को घुलाने की कोशिश की।

छिः छिः, कितनी लज्जाजनक बात है! अब करें क्या? एक के बाद एक टनल आते जा रहे थे। अंधकार और प्रकाश बारी बारी से आते जाते रहे। चिदम्बरम के उद्वेलित हृदय में हाहाकार मच गया था। वह बेचैन था, तड़फड़ा रहा था। हुंकार भरते इंजन ने धुआं के मंडल को खखारते हुए थूक दिया था। चिदम्बरम की दोनों आंखों में कोयले की धूल आ गिरी। आंखों और दिल में खटकती वेदना, अपने आप पर घृणा, अपराध बोध की कड़वाहट लिए, वह सिर झुकाए अपनी सीट पर आ बैठा। देर तक अपने आप को कोसता रहा—मूर्ख, बेवकूफ, नासमझ...

सोच विचार कर देखा—दिल्ली में उसकी जो जान पहचान की लड़कियां हैं, उनमें से कोई उसके ऐसे व्यवहार पर उसके गाल पर ऐसा थप्पड़ मारती? एक एक करके नाम लेता रहा... नहीं... कोई भी नहीं... लेकिन... लेकिन...

"अपर्णा।"

चिदम्बरम के हृदय के अंदर अब तक अवरुद्ध बांध का ढक्कन एकाएक खुल गया। उसे लगा, उमड़ती घुमड़ती बाढ़ सी कुछ सारे शरीर में, नस नस में प्रवाहित हो रही है। हां! अपर्णा! यह बर्ताव अपर्णा को पसंद नहीं आएगा। लेकिन इसके लिए वह गाल पर थप्पड़ न मारती। क्योंकि वह उसे चाहती थी। उसके प्रति अपर्णा का प्यार सच्चा था। संभव है, चुपचाप मुंह मोड़ लेती। ऐसे अनुचित कार्य पर अपनी नाखुशी जाहिर करने वाली उलाहना भरी दृष्टि उसकी तरफ फेंकती। अपर्णा की तरफ से यही सब से बड़ा दंड है।

"अपर्णा मुझे माफ कर दो", यों चिल्लाते हुए जोर से रोने का मन हुआ। तेज रफ्तार में दौड़ती रेल से कूदकर उलटी तरफ भाग जाने का विचार उठा। हां, जिस रास्ते से आया था, पलटकर उसी रास्ते पर। अगर आज भी वह स्टेनोग्राफर ही बना रहता, इस युवती के साथ ऐसा व्यवहार करता क्या? चिदम्बरम ने सोचकर देखा। आज वह सेल्स मैनेजर है। आज बड़े बड़े लोगों से, ऊंची सोसाइटी से उसका मेलजोल है। रईसी ठाट और बाह्याडंबरों में गोता लगाता हुआ यह समझ बैठा है कि दुनिया में सब कुछ बिक्री की चीज है।

लेकिन कुछेक चीजें ऐसी भी होती हैं चाहे जितनी भी कीमत दो, तुम्हारी मुट्ठी में न आएंगी।

जब उसने उसे इडली और दही भात खिलाया था, तब क्या उसने सोचा होगा कि वह उसके साथ ऐसी हरकत कर बैठेगा? अपर्णा के यहां खाया सीधा सादा किंतु स्वादिष्ट भोजन की याद आई। अपर्णा का दफ्तर उसके दफ्तर के पास था। दोपहर के समय एक खास रेस्तरां में कई बार मिला करते थे। कभी कभी ऐसा होता कि वह अपने दफ्तर में देर तक बैठा रहता। ऐसे मौकों पर अपर्णा उसके साथ बैठी रहती। काम पूरा होने पर वह अपर्णा के साथ उसके यहां भोजन करने जाता। उसके घर वाले उसे 'दामाद साहब' कहने लगे थे। छुट्टी के दिन उसी के यहां, उसी के साथ बिताता था।

बाद में ही इन्द्राणी उसके जीवन में आई। वह भी अब सेल्स मैनेजर बन गया। नया परिवेश, नया ओहदा, नए नए दोस्त; धीरे धीरे वह अपर्णा से दूर हटता जा रहा था।

अपर्णा अपने बारे में चिंतित नहीं हुई। उलटे उसकी चिंता करने लगी। जब पहली बार उसने सिगरेट पी, शराब की चुस्की ली, तब वह कितना रोई थी? कितने आंसू बहाए थे उसने? यह सब छोड़ने के लिए कितना अनुनय विनय किया था उसने। किस कदर दुखी हो गई थी वह? यह सारी बातें अब बचपन की स्मृतियों सी लगीं।

''चाचाजी, एक कहानी सुनाऊं मैं?'' बालक की आवाज सुनते ही उसके विचारों का तांता टूट गया। उत्तर में वह एक फीकी, बेजान मुस्कराहट ही दे पाया।

''अरे रे! चाचाजी को तंग मत कर, बेटा।'' मां ने बच्चे को अपने पास खींच लिया तो उसे लगा मानो उस पर चाबुक की मार पड़ी हो।

एक धूर्त और लंपट के रूप में उसकी छवि मन में लिए वह उससे अलग होने वाली है, यह ख्याल आते ही वह अपमान से लज्जित सा सिर झुकाए बैठा था। कैसे दिन बीता, रात हुई, इसका उसे पता न था। यह भी मालूम नहीं हुआ कि उस नन्हें बालक को एकाएक बुखार आ गया है।

बाद में ही देखा। बिना आंखें खोले वह छोटा सा बालक शिथिल पड़ा है और उसकी चिंताकुल मां बार बार उसके माथे पर हाथ रखकर देखती रहती है। सहसा चिदम्बरम को लगा कि उन लोगों की सारी मुसीबतों का कारण स्वयं वही है। वही इसके लिए जिम्मेदार है। अपराध बोध से पीड़ित वह अक्सर उन दोनों की ओर आंख उठाकर देखता और सिर झुका लिया करता था। असल में वह बेहद परेशान था। गाड़ी जब एक बड़े जंकशन पर रुकी, तो वह इधर उधर तलाश करके एक डाक्टर को ले आया। डाक्टर ने बालक को दवा दी। चिदम्बरम फ्लास्क में बालक के लिए गरम पानी ले आया, साथ में संतरे भी।

उस रात को न उसने कुछ खाया, न चिदम्बरम ने। बड़ी रात तक वह बालक के पास जागा बैठा था। एक बार जब वह बीमार था, अपर्णा ने सारी रात आंखों में बिताकर उसकी सेवा की थी।

चिदम्बरम के दिल में ढेर सा दुख उमड़ पड़ा। अनजाने में ही उस अबोध बालक के प्रति ममता जग गई थी। पहले सोचा था, अपर्णा से शादी करके, एक छोटे से घर में सीधा सरल जीवन बिताऊं। एकाध बच्चे से ज्यादा नहीं हों। इस तरह के मीठे सपने देखे थे। वह सब अब, इस घड़ी में फिर से उसके स्मृति पट पर उभर आया और उसकी आंखें सजल हो आईं। सोचने लगा, ऐसी सादगी! और शांत सरल जीवन! ऐसा अन्योन्य भाव और प्रेम, क्या वह अपनी जिंदगी में आगे प्राप्त कर पाएगा?

मद्रास सेंट्रल स्टेशन में कोई बदलाव नहीं है। इन्द्राणी में भी कोई बदलाव नहीं है।

"ये हैं मिस्टर मणिवण्णन, मेरे मित्र।" इन्द्राणी ने साथ में खड़े नौजवान से परिचय कराया।

चिदम्बरम ने रुखाई से 'हेलो' कहा और बेमन से हाथ मिलाया।

बालु और उसकी मां को स्टेशन पर उनका स्वागत करने के लिए आए रिश्तेदारों के स्नेह में घुलकर मिलते देख चिदम्बरम ने संतोष की सांस ली।

"तो चलें?" इन्द्राणी ने पूछा।

"हां..."

कार पर पहुंचते ही चिदम्बरम ने कहा, "मैं गाड़ी चलाऊंगा।" इन्द्राणी और मणिवण्णन पिछली सीट पर बैठ गए। चिदम्बरम ने गाड़ी स्टार्ट की। इन्द्राणी और मणिवण्णन आपस में घुल मिलकर बातें करते, हंसते रहे। उन्होंने चिदम्बरम को भी अपने संभाषण में घसीटने की कोशिश की। लेकिन वह तो अपनी चिंताओं में मग्न था। सोच रहा था—रेल में उस युवती के स्थान पर यदि इन्द्राणी होती तो क्या किया होता उसने? अगर कोई मर्द ऐसी बदतमीजी से पेश आता तो यह उसके गाल पर थप्पड़ मारती? या...

"उश - उश... सिली..." इन्द्राणी की फुसफुसाहट सुनाई पड़ी। मणिवण्णन को उसकी पीठ पर से अपने हाथ हटाते हुए चिदम्बरम ने रियर व्यू मिरर में देखा। उसका सिर तेजी से चक्कर खाने लगा। 'इसकी अनुपस्थिति में दिल्ली में और रेल में मैंने क्या किया था? वैसे मेरी गैरहाजिरी में इसने भी क्या क्या किया होगा? शादी! शादी के बाद भी, जब कभी हमें एकांत में अकेले में रहना पड़े तो ऐसे मौकों पर हम दोनों क्या क्या करने वाले हैं?'

क्रीच...!

कार के आगे आया कोई बालक बाल बाल बच गया। बालु जैसा एक बालक था वह। चिदम्बरम ने अपने माथे पर छलके पसीने को पोंछ लिया। उसने पूछा, "मिस्टर मणिवण्णन! आप गाड़ी चलाएंगे? मेरी तबीयत कुछ ठीक नहीं लगती।"

"श्योर।"

दोनों ने अपनी जगह बदल ली। कार फिर से चलने लगी। मणिवण्णन की नजर

उन पर पड़े, इस ढंग से चिदम्बरम इन्द्राणी के कंधे पर हाथ डालकर धीमी आवाज में कहा, "मैं बहुत खुश हूं।"

"हां...मैं भी।"

"पिछले छह महीनों में कभी तुम्हें मेरी याद आई?"

"बहुत!"

चिदम्बरम उसके अधरों पर खिली मुस्कान को देखता रहा। अब तो वह बालक, उसकी मां, और अपर्णा, किसी की उसे याद न रही। उसके हृदय में मौजूद दो विभिन्न स्तरों के जज्बात में से मानवीय या सौंदर्य भावनाएं फिर से निचले तहखाने में धकेल दी गई थीं; इन्द्राणी के बल बूते पर बड़ा आदमी बनने की महत्वाकांक्षा ही अब उभरी हुई थी।

अपर बर्थ पर पांव जमाने के बाद नीचे उतर आने का मन नहीं होता।

एक आत्महत्या

दरवाजा खटखटाने की आवाज सुनकर रघु की आंखे खुल गईं। दोपहर की नींद; सारा चेहरा पसीने से तर।

'टक टक टक' फिर आवाज आई। रघु उठा नहीं। सोचा, कोई और जाकर दरवाजा खोल दे। नींद खुलते ही बिस्तर से उठ जाने को उसका मन नहीं करता। वैसे ही लेटे लेटे छत की ओर ताकते सोचता रहता है। यह दुनिया, ये लोग, किस्मत, अपनी जिंदगी का रवैया—नींद खुलते ही मन में उठते विचार व चिंतन में बड़ी स्पष्टता होती थी। बिना किसी बंधन या उलझन के निर्भयतापूर्वक स्वेच्छा से विचार घूमते रहते हैं।

'टक टक टक' फिर आवाज आई। यह कैसी मुसीबत है! रघु बिस्तर से उठा। 'हुं.. हुंम ओ मां।' उसने जोर की अंगड़ाई ली। दोपहर में नींद, रात में नींद, नींद नींद—बड़ा आलसी हो गया है वह।

झट से उसने चिटखनी खोल दी। अखिला—उसकी छोटी खड़ी थी। आजकल उसकी परीक्षाएं चल रही हैं। सालाना इम्तहान। इसलिए जल्दी घर वापस आ जाती है।

रेडियो का स्विच ऑन करके रघु बाथरूम में गया। साबुन, फेन, तौलिया, पानी—रेडियो खर खुर करने लगा था। वह दौड़ा आया और किसी स्टेशन की सुई घुमाई—फिल्मी गीत।

रसोईघर में अम्मा और अखिला बातें कर रही थीं। ...'' हाय... हाय... बेचारी। बड़ा अन्याय हो गया।'' अम्मा कह रही थी।

''कौन बेचारी है? कौन सा अन्याय है?'' पूछता हुआ रघु वहां गया।

''इसके साथ पढ़नेवाली एक लड़की ने आत्महत्या कर ली।''

''सच?''

''हां रे! कल सवेरे! हाय बेचारी।'' अखिला ने कहा।

''अपने शरीर पर मिट्टी का तेल डालकर खुद आग लगा ली।''

''इस्स... भगवान!'' रघु ने आहें भरी। यह खबर सुनते ही मन बड़ा खट्टा हो गया। कैसा अंधेर है? कितना भयानक? धू धू करके जलती आग की लपटों में एक लड़की। अपनी बहन की हमउम्र कोई लड़की.. उसकी कल्पना में सजीव साकार हो उठी।

रघु ने धीमी आवाज में पूछा, ''ऐसा क्यों कर बैठी? उस लड़की की आत्महत्या उसे

बुरी तरह झंझोड़ रही है, मानो इसे साबित करना चाहता हो। बहन से सवाल करता गया, "उसके पेपर अच्छे नहीं हुए?"

"ऐसी कोई बात नहीं है। उसकी सौतेली मां उस पर बड़ा जुल्म करती थीं, सताती रहती थी, उससे सहा न गया..."

सुना था, घर में सारा काम उसी के सिर पर था (हां, अखिला ने ही कहा था) बाहर से कोई मेहमान आए तो सौतेली मां ऐसा नाटक रचती मानो घर का सारा काम वही संभालती हो। वह लड़की कपड़ा धोकर, निचोड़कर रखती थी तो सौतेली मां उसे बाहर ले जाकर सुखाती थी ताकि देखनेवाले समझें उसी ने सारे कपड़े धोए हैं।

उस लड़की का घर से बाहर निकलना या लोगों से बातें करना उसे बुरा लगता था। कोई सहेली उससे मिलने आए तब भी सौतेली मां वहीं बैठ कर उनकी बातें सुनती रहती।

"ओह! भाग्य की बात है कि स्कूल जाने से मना नहीं किया था।"

"स्कूल में वह बेचारी बार बार बेहोश हो जाती थी।" अखिला कहती गई, "दिन भर घर में काम करने से थक जाती थी। परीक्षा के समय भी उसकी छोटी मां उसे पढ़ने नहीं देती। पुस्तक लेकर पढ़ने बैठते ही किसी काम के लिए तलब हो जाती। अक्सर गालियां देती, "मुई! जल कर राख क्यों नहीं हो जाती? कल यह लड़की जो बाथरूम में नहाने गई तो सचमुच अपने को जला लिया। घर वालों ने धुआं निकलते देख कर दरवाजा तोड़ा और तुरंत उसे अस्पताल ले गए। कहते हैं, बीच में थोड़ा सा होश आया था, लेकिन कल शाम को दम तोड़ दिया। पुलिस को दिए बयान में उसने साफ कह दिया, "इसमें मेरे पिताजी या छोटी मां की कोई गलती नहीं है, गलती मेरी ही है। मै ही अपराधी हूं।"

अखिला बोलती जा रही थी। रघु ने सोचा—'आज अखिला को अच्छा श्रोता मिल गया है।' मां ने दोसा का गीला आटा तवे पर फैलाया। इस्स...स... की चीख। आटा तवे की असहनीय आंच को बरदाश्त नहीं कर पा रहा है, इसलिए यह चीत्कार। उस लड़की ने आग की आंच को, उसकी जलन को कैसे सहा होगा? सिर के बाल, आंखें, शरीर, नाखून से जलते समय न जाने कैसा लगा होगा उसे? सुना है... वह कैसी सहनशील! कैसा साहस! रघु के रोंगटे खड़े हो गए।

दो से ज्यादा दोसा वह खा नहीं पाया।

मां ने कहा, "स्टोव बुझा दो।" रघु स्टोव की बत्तियां बुझा नीचे उताकर फू फू करके फूंकने लगा। स्टोव बुझा नहीं। "बत्तियों वाले स्टोव में यही मुसीबत है।" मां ने कहा। रघु ने दम लगाकर फिर फूंका। भभक कर स्टोव बुझ गया। मुंह पर मिट्टी के तेल की बदबू की वजह से हल्की मतली सी महसूस हुई। कहते हैं, उस लड़की ने सारे शरीर पर, सिर से पांव तक मिट्टी का तेल उड़ेल लिया था। कितना साहस! कैसी हिम्मत! रघु के शरीर

में हल्की कंपकपी दौड़ गई। वह हॉल में आया। रेडियो में कोई गा रहा था। ख्याल आया, उस लड़की ने एक दिन भी कभी आराम से रेडियो सुना होगा? जब तक जिंदा थी काम करती रही। आखिर एक दिन अल्पायु में अपने आप की हत्या कर ली। एक अबोध लड़की की शोक भरी कहानी।

रघु ने पट से रेडियो बंद कर दिया। पैंट, कमीज और चप्पल पहने रघु घर से बाहर निकला। आकाश की ओर सिर उठाकर देखा। उत्तरी दिशा पर संध्याकालीन सूर्य बदली रूपी सुंदरियों से प्रेम संलाप करता हुआ उन पर फैलती लालिमा की आभा पर ऐसा क्या कहा होगा कि उनका सारा शरीर लाज के मारे लाल हो गया है? दिगंत के उस पार दृश्य के लिए रंगमंच के पीछे प्रतीक्षा में खड़े अभिनेता की भांति चांद अस्पष्ट दीख रहा था। जैसे चांद के धीरज की परीक्षा ले रहा हो, सूर्य बदलियां रूपी रूपसियों से अपने प्रणय विहार की अवधि बढ़ाता रहा।

चहचहाते हुए तोतों का एक झुंड उड़ता गया। रघु चलने लगा। मार्च महीने का अंतिम सप्ताह। पतझड़ के सूखे पत्तों ने सड़क पर कालीन सा बिछा रखा था। सूखे पत्ते झड़ते रहें, इसकी हमें परवाह नहीं है। लेकिन हे भगवान! हरी कोंपलों को, नवांकुर को चटक से तोड़ लिया तुमने। यह कैसा निर्मम खेल है तुम्हारा?

ऐसा क्यों? क्यों?

दुनिया की सुध बुध भूलकर हाथों में हाथ लिए घूमने वाले प्रेमी युगल। आईस फ्रुट चाटती हुई चलने वाली कानवेंट की छात्राएं, पोते का हाथ पकड़े धीरे धीरे चलते बुजुर्ग, हाकी स्टिक घुमाते हुए आने वाले सिक्ख नौजवान, हनुमान जी के मंदिर आस पास आपस में फुसफुसाती लहंगे और चुनरी चमकाती चलनेवाली लड़कियों का झुंड, रिवोल्नी के द्वार पर अपने हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ शरीरों से कीमती विलायती इत्रों की खुशबु बिखेरती हुई, चमचमाती मोटरों से उतरकर थियेटर के सुहाने एयरकण्डिशंड हॉल की ओर उड़ रही हॉई सोसाइटी की रानियां, खादी भंडार के बाहर पालिश वाले को अपना 'शू' सौंप कर खड़े पति महोदय, पास ही फूल वाले से फूल खरीदती उनकी पत्नी, एक हाथ में अभी अभी खरीदी शराब की बोतलें और दूसरे हाथ में कुत्ते की रस्सी पकड़े चलते विलायती युवक... रघु को हर दृश्य पर, हर बात पर झुंझलाहट हो रही थी।

छिः छिः, यह कैसी दुनिया है। हर किसी को अपनी सीमित जिंदगी की चिंता बनी रहती है। हर किसी के लिए अपनी सुविधा, अपना सुख ही अहमियत रखता है; सब अपने अपने छोटे से दायरे में घिरे पड़े हैं। दूसरे लोग जाएं भाड़ में, हमें क्या पड़ी है?

वह लड़की! बेचारी!

हाय! बेचारी! बड़ी बदनसीब! ऐ लड़की! ओ भोली भाली लड़की! अच्छी भली लड़की!

ऐसी बेमौत क्यों मरी तुम? गुड़िया सी लड़की! हाय रे! यह भी कोई जिंदगी है?

रघु कॉफी हाउस में प्रवेश करके, इधर उधर नजर दौड़ता हुआ मेजों के बीचोंबीच चलता रहा।

"हेलो।"

रघु ने मुड़कर देखा, कृष्णन बैठा था।

"बड़ी देर से यहां बैठे हो?" रघु मुस्कराता हुआ पास में एक खाली पड़ी कुर्सी पर बैठ गया।

"नहीं! दस मिनट हुए होंगे। और लोग कहां हैं?"

"आ जाएंगे।" रघु ने चारों तरफ देखा। वही हमेशा की भीड़; वे ही लोग, वही चेहरे। बोर! बोर!... बोर! जैसे कपड़े बदलते हैं, वैसे चेहरों को जब तब बदलते रहें तो अच्छा। जिंदगी में थोड़ा सा परिवर्तन आएगा।

कृष्णन, रघु और उनके कुछ मित्र, रोज शाम को कॉफी हाउस में इकट्ठा होते हैं। कॉफी की चुस्की लेते हुए दुनिया की बड़ी बड़ी समस्याओं को लेकर बड़ी गंभीरता से बहस करते हैं, इतनी गंभीरता से कि सारी समस्याओं का भार उन्हीं के सिर पर हो। चर्चाएं, गरमागरम बहस... कॉफी, सिगरेट... फिर बहस... बातें... बोलना... बोलना... बोलते रहना, छिः।

आज रघु बातें करने के मूड में नहीं था। इधर उधर दौड़ लगाते बैरों को देखा। उन पर उसे दया आई। बैरे के हाथ की थाली को अपने हाथ में लेकर उसे कुर्सी पर बिठा देने की इच्छा हुई।

"अरे यार! क्यों गुमसुम बैठे हो?" कृष्णन ने पूछा।

"त्स्... कोई बात नहीं बताने को।"

"लो चन्द्रन और भास्करन आ रहे हैं।"

चन्द्रन और भास्करन आ बैठे।

"क्यों इतनी देर हो गई?" कृष्णन ने पूछा।

"तुम्हारे जैसी सरकारी नौकरी है क्या? काम पूरा होने के बाद ही निकल सकते हैं।" भास्करन ने कहा। वह एक ट्रैवल एजेंसी में काम करता था।

चन्द्रन ने कहा, "आगे से कॉफी हाउस के समय में कटौती करनी पड़ेगी।"

"क्यों?"

"यू सी! विदेशों में अर्थव्यवस्था एक निश्चित स्तर को पार कर चुकी है। वे होटलों में आराम से बैठे रह सकते हैं। घंटों बोलते रहें तो भी कोई बात नहीं। लेकिन हमारे पास उतना अवकाश नहीं है। हमें हर पल, हर मिनट कड़ी मेहनत करनी है।"

"हियर! हियर!..." कृष्णन ने कहा

भास्करन ने धीरे से पूछा, "रघु मुन्ना, क्यों गुमसुम बैठा है?"

रघु ने आंख मटकाते हुए कहा, "मेरे पास बोलने के लिए फुर्सत नहीं है। विदेश के युवक ही गप्पें लड़ा सकते हैं।"

सब हंस पड़े।

"तुम्हें आए बहुत देर हो गई?" भास्करन ने उससे पूछा

"सब से पहले मैं आया था। बाद में रघु।" कृष्णन ने बताया।

रघु ने टोका, "लेकिन रोज सब से पहले आनेवाला मैं ही हूं, याद रखना।"

"तुम्हें क्या है, यार! किस्मत वाले हो! जब चाहे आ सकते हो।"

"ओह! ताना मारते हो?" रघु ने पूछा। असल में रघु इंजीनियरिंग की परीक्षा देकर अब घर में आराम से बैठा था। अच्छी खासी नौकरी के इंतजार में था। उसके पिताजी भी इसी की प्रतीक्षा में थे।

"नौकरी चाहिए। एक युवा इंजीनियरिंग ग्रैजुएट के लिए नौकरी चाहिए। वेतन शुरू में हजार रुपए। जहां अच्छे कॉफी हाउस, सिनेमा थिएटर हैं, वहां नियुक्ति मिले तो बेहतर होगा। दिन में जब तक उसकी आंखे नहीं लगतीं, लड़का तहे दिल से काम करेगा। कमरे में एयरकंडिशन चालू रहे, रेडियो गाता रहे, कोई हर्ज नहीं, लड़का लगातार दिल लगाकर काम करता रहेगा। चाहे तो इसकी जांच करा सकते हैं। लड़का गुणवान और चरित्रवान है, शिष्टाचार में माहिर है। अफसर सिगरेट या कॉफी पेश करे तो इंकार नहीं करेगा (अफसर कृपया अपने ब्राण्ड का जिक्र करें)।"

"लड़का गोरा चिट्टा है। देखने में सुंदर है। रोबदार पर्सनालिटी है उसकी। किसी भी दफ्तर की शोभा बढ़ा सकता है, इसमें कोई शक नहीं। जहां पर लेडी स्टनो हैं वे कंपनियां (यूरोपीय कंपनी हो तो अच्छा) मात्र आवेदन भेंजे।" चन्द्रन ने कहा।

"विदेशी स्टेनो या विदेशी कंपनी?"

"जैसे चाहें अर्थ ले सकते हैं।"

"बढ़िया! कल ही अपने अखबार में प्रकाशित कर दो।" कृष्णन ने तत्काल कहा—चन्द्रन एक दैनिक में रिर्पोटर था।

रघु बोला, "मुझे बिल्कुल हंसी नहीं आई।"

"गुदगुदी पैदा करके हंसाऊं?" भास्करन ने पूछा।

इतने में बैरा आया।

"चार गरम गरम कॉफी लाना—जल्दी।"

"हां—हां। जल्दी, जल्दी। सुंदर सलोनी जवानी, स्फूर्ति और मस्ती से भरी काया, खुशी से नाचता दिल, जहां देखो आनंद ही आनंद है। कोलाहल है हर कहीं; सुख भोगने की

उम्र है यह; यौवन की मस्ती ढलने के पहले इसका पूरा मजा लूटेंगे हम। वेटर! जल्दी ले आना! गरम गरम कॉफी!"

भास्करन ने सिगरेट का पाकेट निकाला।

"सिगरेट।"

सिगरेट बांटी गई। चन्द्रन को एक, कृष्णन को एक, रघु को एक... जरा हिचकते हुए रघु ने सिगरेट ले ली। चरक्–भास्करन ने सलाई जलाई। उठी तीली की ज्वाला। रघु चौंक पड़ा। वह लड़की। जल भुनकर जो खाक हो गई थी वह लड़की। उस लड़की की याद जो दिल की तह में दब सी गई थी, अब पूरे जोर से उभर आई। जलती सलाई जब उसके होठों के पास आई, रघु ने झट होठों से लगी सिगरेट हटा ली।

"अरे! यार! क्या हो गया तुम्हें?"

"मैं स्मोक नहीं करूंगा?"

"क्यों?"

"नहीं चाहिए।"

"अरे–पीओ न?"

"ना-ना।"

"नहीं पिओगे?"

"ऊहूं।"

"एकाएक तुम्हें क्या हो गया?"

"पता नहीं, अब पीने का मन नहीं, बस।"

"और क्या पीने का मन है रे?"

"भास्करन! मुझे कुछ नहीं चाहिए। मुझे तंग मत करना। प्लीज।"

जलती सलाई उंगली तक आ गई। जल्दी जल्दी उसे फेंककर उंगली झटक दी। उस उंगली को मुंह में डालकर थूक की महरम लगाई। इतनी सी जलन जब इससे सहा नहीं जाता? तब तो उस लड़की ने? हे भगवान, भंयकर है।

कॉफी आई। सब के पीने तक रघु चुप बैठा था। फिर बोलना शुरु किया, "आज एक शोकपूर्ण घटना घटी है।" वह अपने दिल का बोझ उनसे बांटना चाहता था। "मेरी छोटी बहन की क्लासमेट थी वह लड़की..." यों शुरू करके उस बदनसीब लड़की की कहानी सुनाने लगा।

भावुकता में भरकर जो कुछ उसने सुना था उसके साथ अपने हृदय की भावनाओं को भी मिला कर वह सुनाता जा रहा था। लेकिन श्रोताओं के चेहरों को देखते समय उसे बेहद निराशा हो रही थी। उस अनजानी लड़की की आत्महत्या ने उसके दिल पर गहरी

चोट पहुंचाई थी। लेकिन लगा, इस दुखद घटना का उन पर कोई असर नहीं पड़ा है। शायद हृदयस्पर्शी ढंग से उस शोककथा को सुनाना उसे नहीं आया हो।

"बस इतनी सी बात है। एक छोटी सी लड़की जुल्म की मारी जल कर मरी।" रघु ने अपनी कहानी पूरी की।

"उफ्! बड़ी बुरी बात है।" भास्करन ने कहा।

"कुछ लोग ऐसे ही निर्दय होते हैं, बेरहम कहीं के।" कृष्णन ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

"असली गुनाहगार उस लड़की का पिता है, जिसने दूसरी शादी की है। दूसरी बीवी कम उम्र की होगी न? और उसके लिए तो यह पहली शादी है! पति का सारा प्यार, पूरा का पूरा उसी को मिले, वह यही चाहती होगी। पति के प्यार को और किसी से बांटने के लिए वह तैयार नहीं थी। उसकी पहली पत्नी के बच्चों को भी उसमें हिस्सा दिए बिना पूर्ण रूप से स्वयं भोगने की हवस... भूख ईर्ष्या..."

थोड़ी देर तक वहां पर खामोशी छाई रही। सबने दिल से मान लिया था कि यह अत्यंत शोकपूर्ण और दुखद घटना है। उस लड़की के प्रति सबने हमदर्दी जाहिर की। किंतु साथ ही रघु को ऐसा महसूस होने लगा, शायद उसके साथी मन में यही विचार कर रहे होंगे कि ऐसी एक शोकपूर्ण घटना को सुनाकर रघु उन लोगों की उस उल्लासपूर्ण संध्या को अवसाद से न भरा होता तो बेहतर होता। उसे लगा, मानो वे उससे पूछ रहे हों, "अरे यार! यह सारा संसार ऐसे ही दुखों से भरा सागर है। इसके लिए हम तुम क्या कर सकेंगे?"

"आत्महत्या कर लेना कायरता है या साहसपूर्ण कृत्य है?" उसने मौन को भंग करते हुए पूछा।

कृष्णन ने कहा, "कायरता है।"

"ऐसा नहीं कह सकते।" भास्करन ने तर्क दिया।

"किसी व्यक्ति की आत्महत्या कभी कभी गंभीर, पवित्र और सौंदर्ययुक्त भी हो सकती है। वह अपने दिल में जिस बात पर दृढ़ विश्वास रखता है, उसे अपने आप को और दूसरों को साबित करने के लिए आत्महत्या ही एकमात्र साधन रहा होगा।"

"निर्देशक बर्गमैन की फिल्म का एक पात्र इसी चिंता से पीड़ित होकर आत्महत्या कर लेता है, हाय! चीन अणुबम बनाने लगा है। ये लोग जिम्मेदारी से काम लेंगे या नहीं। इनसे गलती हो जाए तो दुनिया की क्या हालत होगी।" भास्करन बोलता जा रहा था। रघु ने सोचा, सिनेमा के बारे में चर्चा न करे तो इसे नींद नहीं आएगी। बर्गमैन, फैलिनी, पोलंस्की, सत्यजीत रे जैसे विश्वविख्यात निर्देशकों का जिक्र उसकी बातों में अवश्य आता है। भास्करन के दिल में खुद एक निर्देशक बनने की चाह थी। लेकिन बेचारा स्टूडियों में

अपनी जिंदगी बिताए बगैर एक ट्रैवल एजेंसी में दिन काट रहा है। सचमुच फिल्म जगत एक युवा निर्माता से वंचित रह गया है।

"भास्करन के विचारों का मैं समर्थन करता हूं।" चन्द्रन ने कहा।

"भावनाएं और आशा अभिलाषाएं रखने वाली मशहूर हीरोइन मर्लिन मन्टो को इस बात पर बेहद दुख था कि दुनिया के लोग उसे केवल शृंगार और कामवासना की पुतली मानते हैं। अंत में ही लोगों ने उसे समझा। टालस्टाय की अन्ना करीना, फ्लावर्ट की मैडम बेवरी आदि की आत्महत्याओं के बारे में पढ़ते समय यद्यपि हमारे दिल को टीस पहुंचती है, फिर भी एक प्रकार की मानसिक तृप्ति और रोमांचकारी अनुभूति होती है। हेमिंग्वे ने अपने आपको गोली मार कर खुदकुशी कर ली, कितना महान था वह प्राणोत्सर्ग! इस पीढ़ी की उद्दण्डता और निरर्थकता को उन्होंने जिस ढंग से अपने लेखन में अंकित किया था उसी तरह ही अपनी मृत्यु के द्वारा भी उसे निरूपित भी कर दिया।"

बैठे बैठे बड़ी बड़ी बातें हो रही थीं, गंभीर चर्चाएं। "उस मासूम लड़की पर जरा सोचिए न!" रघु ने उन लोगों की कोमल भावना को छूने का प्रयास किया। बोला, "जीवन को पूरी तरह से भोगे बिना—जीवन का आनंद उठाए बिना—दुख में ही जीकर दुख में ही मर गई उस लड़की के जीवन को केंद्र बनाकर एक उपन्यास लिखना चाहिए, एक फिल्म बनानी चाहिए।"

"हां फिल्म बनानी चाहिए।" भास्करन ने कहा। जो अभिनेत्री हमें नापसंद है, उसे उस लड़की का रोल दें और सचमुच आग लगा दें तो उसमें रियलिज्म भी बना रहेगा।"

"सौतेली मां के जुल्म और अत्याचार इत्यादि पुरानी 'थीम' है यार! इन बातों को लेकर कितनी बार कलम घिसते रहें हम!" चन्द्रन ने बताया।

चन्द्रन पहले बहुत लिखा करता था। आजकल उसकी लेखनी विश्राम ले रही है। जो कुछ लिखा था, वह सब प्रकाशित नहीं हुआ। उसकी निराशा, कड़वाहट में बदल गई थी। अब तो साहित्य और लेखकों की हंसी उड़ाना ही उसका मनोविनोद है।

आगे इन लोगों से बातें करने से कोई फायदा नहीं होगा। ऐसा सोचकर रघु चुप हो गया।

वह लड़की कभी ऐसे होटलों में आई होगी? एक्सप्रसो कॉफी पी होगी? टूटी फ्रूटी खाई होगी? कनाट प्लेस, कुतुबमीनार, चिड़ियाघर, 70 एम.एम. फिल्म यह सब देखा होगा उसने? रघु सोचता रहा।

रात को भोजन के बाद बरामदे में खड़ा होकर रघु खुले आसमान की ओर ताकता रहा। सारा आकाश तारों से भरा था। वह अबोध लड़की भी एक तारा बन गई होगी। या स्वर्ग ने प्यार से उसका स्वागत करके उसे अपने आलिंगन में भर लिया होगा। इतना

सारा प्यार बरसाया होगा कि वह चकरा गई होगी। तरह तरह के कपड़े-लत्ते, आभूषण। तब तो उस बेचारी की किस्मत खुल गई।

उसकी बहन की अंग्रेजी पुस्तक में आंडरसन की लिखी एक कहानी है 'दियासलाई की लड़की'। दियासलाई बेचने वाली एक छोटी सी बालिका को सड़क के किनारे रात बितानी पड़ती है। क्रिसमस के दिन थे। बेहद ठंडी रात। बरफ की वर्षा हो रही है। वह लड़की आग तापने के लिए सलाइयों को एक एक करके जलाती रहती है। हर तीली के जलते वक्त उस मंद प्रकाश में कई सुंदर दृश्य उसकी आंखों के सामने छा जाते हैं। जैसे वह कीमती और सुंदर कपड़े पहने किसी महल में नाच रही है। दावत में तरह तरह के मिष्ठान्न खा रही है—ऐसे सारी रात मीठी, मधुर और सुखद अनुभूति में वह तिरती रही। पौ फटने पर सड़क पर गुजरते लोगों ने ठंड से ठिठुड़कर मरी पड़ी एक बालिका को और उसके चारों तरफ बिखरी पड़ी तीलियों को देखा। उस बालिका ने जो जो सुंदर दृश्य देखे थे, उनके बारे में लोगों को क्या पता? संभव है, जिस क्षण लड़की ने भी बाथरूम में अपने आप पर आग लगाई थी, उस क्षण से, एक अनुभूत आनंद की दुनिया में प्रवेश किया होगा। कौन जाने?

अंदर अखिला, पिताजी से बातें कर रही थी। हां, बातें उस लड़की के बारे में ही हो रही थीं। रघु ने उनकी बातों में भाग लिया। पूछा, "आज परीक्षा हॉल में उस लड़की की कुर्सी खाली पड़ी होगी, है न?"

"ऊहूं! नहीं। उस कुर्सी को हटाकर दूसरी कुर्सियों को एडजस्ट कर लिया गया।"

रघु को चुभन सी महसूस हुई। यही नियति है। संसार की क्रूर नियति है। दुनिया अपने ढंग से चलती रहेगी, ऐसी एक लड़की के अस्तित्व का बोध ही नहीं रहेगा। परीक्षा की हाजिरी सूची में पहले दो दिन तक 'हाजिर', फिर 'गैर हाजिर'। हाजिरी बही में उसके नाम के आगे एक लाल लकीर—यही इस बात की गवाह के रूप में बाकी रहेगी कि एक छोटी लड़की इस दुनिया में रहती थी, स्कूल फाइनल तक पढ़ी।

अखबारों मे परीक्षाफल निकलेगा। उस लड़की का नाम उसमें नहीं रहेगा। अखिला कालेज में जाएगी। बी. ए. करेगी। एम. ए. भी करेगी। फिर एक दिन काले रंग का गाऊन पहने अपनी फोटो खिंचवाएगी। फिर, फिर एक दिन शादी की रंगीन लाल साड़ी पहने फोटो लेने का मौका भी उसके जीवन में आएगा। शादी, पति, फिर बच्चे, परिवार... एक लड़की की जिंदगी में ऐसी कितनी ही स्थितियां आती हैं। लेकिन वह बेचारी, बदनसीब लड़की ने कुछ न देखा, न सुख भोगा, हमेशा हमेशा के लिए चल बसी।

उस लड़की की याद आते ही रघु के मन में करुणा उमड़ आई। लेकिन न जाने क्यों, उसके मित्रों की दृष्टि में वह अहमियत रखनेवाली कोई खास घटना नहीं थी।

सोचा—मैं घर में बेकार बैठा हूं न? संभव है इसलिए मैं इन बातों पर अधिक सोचता और चिंतित होता रहता हूं। यदि मेरी भी नौकरी लग जाए तो...

अलग अलग अवस्थाओं में भिन्न भिन्न प्रकार के लोगों ने उसे आकर्षित किया था। बड़े होने पर उनके जैसे बनने की इच्छा मन में उठती थी। पांच साल की अवस्था में इंजिन या बस ड्राइवर। दस साल में उसके आदर्श थे लेफ्टिनेंट फूफाजी। पंद्रह वर्ष की उम्र में उसके पड़ोसी चित्रकार। उनको चित्र बनाते देखकर वह भी चित्र बनाने लगा था। इस पर वह चित्रकार बहुत प्रसन्न हुआ। कहा था, "प्रतिभा है, विकसित कर लो।" पंद्रह साल की अवस्था में जो इच्छा दिल में अंकुरित हुई वही सच्ची थी। तहेदिल से वह चाहता था कि वह चित्रकार बने। वह आर्ट स्कूल में नाम लिखाना चाहता था। कलाकार की जिंदगी ने उसे बेहद आकर्षित किया था। उसकी हार्दिक अभिलाषा भी यही थी।

लेकिन पिताजी ने नहीं माना। नैसर्गिक रूप से अनायास ही मन में अंकुरित होने वाली इच्छा के अनुरूप अपनी जिंदगी को बनाने में जो आनंद है वह उनकी समझ नहीं आया। जीवन के आखिरी दिन तक के लिए पहले से ही योजना बनाने में विश्वास रखनेवाले व्यक्ति थे। उनकी मान्यता थी कि हर बात के निर्णायक वे ही हैं। बच्चे को यदि स्वेच्छा से चलने दिया जाए तो ठोकर खाने पर भी वह नहीं रोएगा। यह सच्चाई उनकी समझ में नहीं आई।

"मैंने ठोकर नहीं खाई, आगे ठोकर खाऊंगा भी नहीं। आज मैं एक इंजीनियर हूं। लेकिन इससे मेरा लाभ हुआ है या हानि?" रघु गहरे विचार में पड़ गया। चंद वर्ष पहले तक उसके हृदय में अनगिनत सुंदर भाव और विचार कल्पना की रंगीनियों के साथ लहरें मार रहे थे जिनसे नई नई आकृतियों का सृजन होना था। उसे भाव-चित्रों को कागज या कैन्वास पर उतारने की हवस नशे के समान छाई रहती थी। लेकिन अब तो केवल भावनाएं और विचार हैं, उन्माद या नशा नहीं है और कुछ सालों में ये भावनाएं भी बुझ जाएंगी क्या? तब अगर कोई लड़की आत्महत्या कर ले तो शायद मैं भी अपने इन मित्रों के जैसे अप्रभावित रह जाऊंगा। इनके जैसे ही मानवीय सहानूभूति, दया, ममता आदि कोमल भावनाओं की तेज धार कुंद पड़ जाएगी?

तब तो मैं भी चन्द्रन और भास्करन की तरह कला और कलाकारों के बारे में शुष्क विचारों को व्यक्त करता रहूंगा। उसमें कोई जान न रहेगी, प्राणों का स्पंदन नहीं रहेगा। मेरे अंदर भरी हुई तेजोमय भावनाएं धीरे धीरे मरती रहेंगी।

यह भी तो आत्महत्या है। आत्मा का हनन है?

रघु को लगा कि कोई उसके हृदय को बुरी तरह मसल रहा है। सिर पर कोई धड़ा-धड़ हथौड़ा मार रहा है। बाहर जाकर खुले मैदान में चिल्ला कर रोने की इच्छा हो रही

थी। यह...यह भी आत्महत्या ही है; हां, आत्मा का हनन है। जिस समाज में कलात्मक अभिरुचियों और हृदय की कोमल भावनाओं के लिए स्थान नहीं है, मानवीय लक्ष्यों का आदर नहीं है, उसमें आए दिन इस तरह की कितनी कितनी आत्महत्याएं घटित हो रही हैं।

जिंदगी को पूर्ण रूप से जिए बिना ही, भोगे बिना ही वह लड़की मर गई। इधर हम भी इस बोध के विना ही जीते रहते हैं कि असल में तिल तिल मर रहे हैं।

वह लड़की किस्मत वाली है।

इंटरव्यू

स्वामीनाथन अपने पिताजी के साथ बाजार में घूम रहा था।

कितनी दुकानें! कैसी भीड़! कैसे कैसे दृश्य? लेकिन स्वामीनाथन का ध्यान इस ओर नहीं था। मैं अपने पिताजी के साथ साथ चल रहा हूं। हां, पिताजी के साथ साथ, इस बात पर बड़े गर्व से वह फूलता जा रहा था। पिताजी ने एकाएक पूछा, "आईसक्रीम खाओगे, बेटा?" स्वामीनाथन को पिता के इस प्रश्न पर आश्चर्य के साथ थोड़ा सा रोष भी हुआ। कहा, "नहीं, मैं बच्चा थोड़े हूं ?" पिता हंस पड़े।

टन टन की आवाज। अप्पा की हंसी की ध्वनि सड़क पर चलती साइकिल की घंटी की आवाज थी...? स्वामीनाथन हड़बड़ाकर बिस्तर पर उठ बैठा। घड़ी की अलार्म रिंग ट्रिंग... करती चाबी खत्म होने तक बजती रही।

ओह! आज इंटरव्यू!

बिस्तर को लपेटकर एक तरफ रखने के बाद पिछली रात को दीदी के कमरे से चुपके से जो घड़ी उठा आया था, उसे लेकर दबे पांव बगल के कमरे में गया। निद्रामग्न दीदी के पास घड़ी को रखा तो घड़ी की अलार्म फिर से धीमी आवाज में बजने लगी जैसे रो धोकर थका-मांदा बच्चा नींद के बीच में भी एकाध बार सुबकता है? अच्छा हुआ, दीदी की नींद नहीं खुली।

दंतमंजन की चुस्ती भरी मिठास और मुस्कराहट... वह इंटरव्यू के बारे में सोचने लगा। कमरे के अंदर प्रवेश करते ही 'गुड मार्निंग' या गुड आफ्टरनून, (मुस्कराहट के साथ)... फिर, हर प्रश्न का, बिना घबराए, (जो भी पूछा जाए) धड़ाधड़ उत्तर देते जाना है। घबराना किसलिए? जिस तरह नौकरी की जरूरत है, वैसे उन्हें भी तो काम करने के लिए आदमी चाहिए। शायद वह खास व्यक्ति वही हो? बस, इसकी जांच होगी आज। अब जो वह उनकी दृष्टी में प्रार्थनापत्र में अंकित केवल एक नाम मात्र है। पासपोर्ट साइज की फोटो में संकोच के साथ टुकुर टुकुर ताकता एक जवान लड़का है। आज ही वे लोग रक्त और मज्जे से युक्त एक जीते जागते युवक के रूप में उसे देखने वाले हैं। कौन है यह स्वामीनाथन? कैसा शख्स है? साहसी है या डरपोक? बुद्धिमान है या अहमक? चुस्त दुरुस्त है या सुस्त ? ईमानदार है या बेईमान? लायक आदमी है या नालायक? इतनी सारी

बातों की जांच होगी आज। हां, एक ही दिन में—चंद मिनट में—इन सब बातों का पता लगाने वाले हैं। हाय रे! इन बीस सालों में वह खुद अपने को पूर्ण रूप से, सही सही पहचान पाया है, यह कहना मुश्किल है। कभी कभी उसे अपने आप पर तरस आया है, कभी गुस्सा। बीस साल अर्थात सात हजार तीन सौ दिन। इन दिनों में कम से कम कुछ स्थितियों में कुछेक दिनों में, कुछ और ढंग से विचार किया होता, कुछ और निर्णय लिया होता, कुछ अलग ही राह पर कदम बढ़ाया होता तो आज वह बिल्कुल दूसरे ढंग का आदमी बन गया होता। आज वह जिस हालत में है, ऐसा न होकर भिन्न परिस्थिति में कुछ और तरीके से जिंदगी बिता रहा होता?

सहसा दूध वाले की आवाज आई। वह जाकर दूध ले आया ओर स्टोव पर रखा। इतने में उसकी मां की नींद खुल गई।

जब वह दैनिक अखबार पढ़ चुका था, मां कॉफी के साथ आई। पूछा, "कितने बजे खाओगे, बेटा?"

"आठ बजे!"

"इतनी जल्दी?"

"बस से जाना है न? ईश्वरन चाचाजी के यहां भी जाना है।"

"अच्छा! जरा सब्जी काट दोगे?"

"उ...मृ...।"

उसी को घर के कामों में मां का हाथ बटाना पड़ता है, घर का छोटा मोटा काम करना पड़ता है। जानू तो कमाने वाली लड़की है। उससे काम लेने की हिम्मत मां में नहीं है। यदि स्वामी की भी नौकरी लग जाती, तब?

वह सब्जी काट रहा था कि जानू आई। बोली, "न जाने आज अलार्म क्यों न बजी? तुमने कुछ शरारत की है रे?"

"तुम्हारी घड़ी के बारे में मैं क्या जानूं?"

"वह बेचारा क्या करता?" अम्मा बीच में बोल उठी।

जानू को लगा, मां बेटे के बीच में कोई आपत्तिजनक अन्योन्य व रहस्यपूर्ण समझौते चालू हैं। वह तुरंत फट पड़ी, "तुम्हें उसकी तरफदारी करने की कोई जरूरत नहीं।" वह जानबूझकर कुछ ऐसा करता रहता है। एक दिन मेरे हेयरपिन को कहीं छिपा रखा था।"

"तुमने ही पहले मेरा शेविंग सेट कहीं छिपा दिया था।" स्वामीनाथन ने कहा।

"रोज जब मैं दफ्तर जाने की तैयारी में रहती, तुम रेजर ड्रेसिंग टेबुल के सामने बैठ जाते थे इसलिए छिपाया था।"

"तुम्हें जिस तरह दफ्तर जाना था, मुझे भी कालेज जाना है न?"

उन दिनों तुम्हारे चेहरे पर एक भी बाल नहीं उगा था, फिर भी तुम्हें जल्दी पड़ गई शेविंग करने की। शेव न बनाते तो क्या होता? क्या कालेज में नहीं घुसने देते?

"पाउडर और स्नो पच पच कर पोत न लेती तो क्या तुम्हें दफ्तर के अंदर जाने न देते?"

"ज्यादा मुंह न चलाना, समझे?"

"तुमसे तो मैं कम ही बोलता हूं।"

"मेरे दफ्तर जाने से ही तुम कालेज की सीढ़ियों पर पांव रख पाए, याद रखना।" जानू फुफकार उठी।

"पिताजी के पैसे पर ही मैं कालेज गया था।"

"हां-हां... तेरे दादाजी के पैसे! अरे, मैं कमाने न लगती जब आटे दाल का भाव मालूम होता। चार कौड़ी कमाने का दम नहीं, मुंह लड़ाता है मुझसे। बेशरम कहीं का।"

स्वीमानाथन को बात लग गई। आगे वह कुछ न कह पाया। खामोश हो गया। तीर निशाने पर लग गया है, इस बात पर संतुष्ट होकर जानू भी चुप हो गई। "मैं कमाती हूं। इस घर में कमाने वाली मैं ही हूं।" यही उसका ब्रह्मास्त्र था।

जानू को कॉफी पिलाकर मां रसोईघर से निकल गई थी। उमड़ते आंसूओं को जबर्दस्ती से दबाते, स्वामीनाथन ने सब्जी काटने का काम पूरा किया, फिर उठकर तेजी से स्नानघर की ओर चला। सोचा था, वहां जी भर के रो ले, लेकिन अम्मा वहां नहा रही थी। स्वामीनाथन ने जोर से दरवाजा खटखटाया। अम्मा को अब क्या जल्दी आ पड़ी है नहाने की।"

"कौन है रे?" अम्मा ने आवाज दी।

"मुझे देर हो रही है।"

"लो! अभी आई। पांच मिनट में।"

मां को बाहर आने में पांच मिनट से ज्यादा ही लगा। स्वामीनाथन बौखलाया हुआ बाहर चहलकदमी करता रहा। आखिर अम्मा बाहर निकली और क्षमायाचना के स्वर में बोली, "नल में पानी बहुत कम आ रहा है रे।"

ब्लाउज के बिना साड़ी में लिपटी मां की ओर आंख उठाकर देखने में शरमाता हुआ स्वामीनाथन ने अपनी आंखें दूसरी तरफ फेर लीं। घर में दोनों स्त्रियां हैं, अकेला वही मर्द है। अगर पिताजी जिंदा रहते?

स्नानघर में नल खोलकर खड़े खड़े स्वामीनाथन सोचने लगा—बाप की मृत्यु के पहले जानू और मैं कितने हिलमिलकर रहते थे? आठों पहर हंसी ठहाका, खेल कूद, कितना हो हल्ला मचाते थे हम दोनों। पिताजी की डांट सुनते ही हम चुप हो जाते थोड़ी देर के लिए। फिर वही सिलसिला। सारा घर सिर पर उठा लेते थे।

लेकिन अब तो न पहले जैसा स्नेह, न खेल-तमाशा। आठों पहर खट पट, रगड़ा झगड़ा बस और कुछ नहीं।

जब वह नहाकर आया, जानू ड्रेसिंग टेबल के सामने बैठी, सिनेमा की कोई धुन गुनगुनाती बालों पर तेल लगाती कंघी कर रही थी। ओह! कितनी मस्ती, कैसी खुशी... कितना उल्लास! उसे चिढ़ाने में जानू को बड़ा मजा आता था। ड्रेसिंग टेबल की दराज में उसका बनियान था। बोला, "मुझे बनियान निकालना है।" वह उठी नहीं, जरा सा एक तरफ हट गई। स्वामीनाथन संकोच के साथ उसकी बगल की तरफ से झुका और दराज खोलकर बनियान ढूंढ़ने लगा। जानू ऊपर से नीचे की तरफ कंघी करते अपना केश संवारती रही। एकाध बार उसकी साड़ी का पल्लू उसकी नंगी पीठ पर सरकती रही। बाल संवारते खनखनाती चूड़ियों की मधुर ध्वनि, नस नस में मस्ती भरने वाली सुगंध की लहर। स्वामीनाथन के दिल में उसके प्रति जो नफरत थी वह पल भर में काफूर हो गई। उसकी जगह उल्लास और मस्ती का अनुभव हुआ। कभी कभी जानू को देखते समय ऐसे ख्याल मन में उठकर उसे विह्वल बना देता है कि उसे स्वंय अपने ऊपर ढेर सा गुस्सा आता है। जानू के अंदर कोई ऐसी बात है, जिसकी उपेक्षा वह कर नहीं पाता, इसी बात पर उससे उसे जलन महसूस होती है।

वह बाल संवार रहा था कि जानू नहाने कि लिए निकली। क्षण भर उसके पीछे खड़ी होकर आइने में उसने अपना प्रतिबिंब देखा। स्वामीनाथन फिर से मन ही मन झल्ला उठा। अपने चेहरे पर अभी तक उसे पूरा विश्वास नहीं आया था कि दूसरे की मौजूदगी में अपने को आइने में देखने में उसे संकोच हो रहा था।

माथे पर विभूति लगाकर उसने भगवान के चित्र को नमस्कार किया और खाने बैठा। वह खाने लगा कि स्नानघर से जानू ने आवाज दी, "मां, ओ मां!"

मां चली गई। स्वामीनाथन सांबर भात खा चुका था। थाली में परोसी सब्जी को भी खाली कर दिया। एक एक करके उंगलियां चाटने लगा। मां अभी तक नहीं लौटी। उसे गुस्सा आ रहा था : पहले तो स्नानघर में घुस गई थी, अब अधूरा खाना परोस कर कहीं चली गई। और कितनी देर करेगी मां और जानू, दोनों मिलकर मुझे लेट करने की साजिश त: नहीं कर रही हैं?

"ऐ मां! ओ मां!!"

मां दौड़ी दौड़ी आई। "जानू ने पीठ रगड़ने के लिए बुलाया था"--बुदबुदाती हुई मां जल्दी जल्दी परोसने लगी। बस बस... स्वामीनाथन ने मुठ्ठी भर भात परे हटा दिया।

"आजकल तुम ठीक से खाते नहीं हो।"

"थाली पर बिठाकर, परोसने में तीन घंटे लगाओगी तो खूब खाऊंगा न मैं?"

"भूल गई कि तुम खाने बैठे हो।"

"हां-हां, तुम भूल ही जाओगी न मुझे।"

"तुम्हें कितना गुस्सा आता है? ठीक अपने अप्पा जैसे।" अम्मा ने दही डालते हुए कहा।

उसने जल्दी जल्दी खाना खाया। पैंट और कमीज पहनकर जब वह पैरों में मोजे पहन रहा था तब जानू नहाकर आई। मोजा एक छोर पर फटा हुआ था। बड़ा सा छेद था। जानू की साड़ियां, चोलियां, रूमाल और चप्पलें सारे घर में इधर उधर बिखरी पड़ी हैं, लेकिन उसे सलीके से पहनने के लिए एकाध कपड़े से ज्यादा नहीं। जब तक पिताजी जिंदा रहे उसकी जरूरत की हर चीज ध्यान से लाते थे।

पेट के बीचोंबीच साड़ी खोंसते खोंसते जानू ने पूछा, "इंटरव्यू तुम्हारा कहां हो रहा है?" स्वामीनाथन ने उस कंपनी का नाम बता दिया।

"पैसा चाहिए कुछ?"

"ना।"

जानू के मुखड़े पर हंसी की रेखा उभर आई।

हंसो-हंसो, खूब हंसो। एक बार मेरी नौकरी लग जाए, फिर मुझे और मां को तुम्हारे सामने हाथ फैलाने की जरूरत नहीं पड़ेगी—मन ही मन बौखलाया-सा वह रूमाल, पर्स, प्रमाणपत्र वगैरह बटोरता हुआ निकला।

"हो आओ बेटा! घबराना मत! भगवान का नाम लेकर चलो। उन्हें याद कर लो।"

घर की देहली पार करके उसने माथे पर की भभूत पोंछ डाली। भगवान की याद करना काफी है न?

सुबह की हल्की हल्की धूप में चलना बड़ा सुहावना लग रहा था। सफाई कर्मचारी ने, जो सड़क की सफाई कर रहा था, उसे देखते ही पूछा, "कितने बजे हैं जी?" स्वामीनाथन जरा सा अधकचाया, फिर संभलकर बोला, "भई साढ़े आठ बजे हैं।" उसने मन में सोचा, "नौकरी लगते ही एक बढ़िया घड़ी लेनी है।" फिर वह सब को सही टाइम बता पाएगा।

ईश्वरन चाचाजी अपने मकान के बरामदे में बैठे थे। स्वामीनाथन के पहुंचते ही उसे घर के अंदर ले गए और पूछा, "इंटरव्यू कितने बजे है?"

"दस बजे।"

बोले, "आज मंगलवार है न? आज तीन बजे ही राहुकाल* है, चिंता नहीं, "तुम्हारा सर्टिफिकेट तैयार है। कमली! वह थैली ले आना बेटी!" उन्होंने बेटी को आवाज दी।

---

*राहुकाल—दक्षिण भारत में लोग राहुकाल का विचार करते हैं। इसमें विश्वास करने वाले लोग कोई भी शुभ कार्य या नया उद्यम राहुकाल में नहीं करते। यह सप्ताह के प्रत्येक दिन में डेढ़ डेढ़ घंटे तक रहता है। मंगलवार को राहुकाल अपराह्न तीन बजे से साढ़े चार बजे तक होता है।

स्वामीनाथन ने उनसे अपने चरित्र का प्रमाणपत्र मांगा था। कमली थैली लेकर आई तो उसकी मां भी पीछे पीछे आ गई। आते ही पूछा, "स्वामीनाथन? घर में सब कुशल हैं?"

"हां।"

"तुम्हारी मां भूलकर भी इस ओर नहीं आती।"

"घर में काम बहुत है, आंटी को।" स्वामीनाथन ने कहा। उसने मन में सोचा—मेरी नौकरी लग जाए और मेरी हैसियत अच्छी हो जाए उसके बाद, सब से मिलने जुलने के लिए बाहर जाएगी।

सर्टिफिकेट लेकर वह चलने लगा तो ईश्वरन चाचाजी ने कहा, "मेरी गाड़ी में चलो न? मैं ड्राप कर दूंगा।"

नई गाड़ी, मुलायम गद्दा। बिना झटके के आरामदेह चाल। आज जानू और मां जानबूझकर उसे टोक रहे थे ताकि वह लेट हो जाए। लेकिन देखो, कार में लिफ्ट मिल गई। डैडी के जैसे ही डैडी के सभी दोस्त अच्छे हैं, दरियादिल हैं।

ईश्वरन गीत की कोई पंक्ति गुनगुनाते हुए गाड़ी चला रहे थे। पिताजी भी ऐसे ही गुनगुनाते थे। ईश्वरन चाचाजी के सिर पर चांद निकलने लगा है। हां। ठीक पिताजी के जैसे सिर पर बीचोंबीच। सहसा उसे अतीत की बातें याद आई, जब वह पिताजी के साथ टैक्सी में गया था। आज तड़के पिताजी सपने में आए थे। कितने सुंदर लगते थे वे।

इंटरव्यू के लिए जिस कंपनी से बुलावा आया था, उस कंपनी के द्वार पर उसे उतारकर "राईटो! गुड लक।" कहते हुए ईश्वरन चाचा निकल गए।

स्वामीनाथन ने सिर उठाकर अपने सामने खड़ी उंची इमारत को देखा। उंची, सुंदर और भव्य इमारत शीशे के दरवाजे को अंदर की तरफ धकेलते हुए उसने प्रवेश किया। फर्श पर बिछी सुंदर मैट, शीशे, प्लास्टिक और प्लाईवुड से निर्मित दीवारें, खंभे, चमचमाती मेज के सामने बैठी, फोन पर बातें करती रिसेप्शनिस्ट, यह सब देखते ही उसे अनजाने ही घबराहट और संकोच ने घेर लिया।

रिसेप्शनिस्ट बहुत ही सुंदर लग रही थी। लाल रंग की साड़ी और काले रंग की चोली से अनावृत बचकर उसकी गोरी गोरी देह इधर उधर से दिख रही थी। स्वामीनाथन को अपनी तरफ आते देखा तो मुस्कराती हुई बोली, "येस प्लीज।"

स्वामीनाथ का दिल धक धक करने लगा।

"इंटरव्यू के लिए आया हूं।" हड़बड़ाता हुआ उसने चिट्ठी उसकी तरफ बढ़ाई।

"सेकेंड प्लोर प्लीज, रूम नंबर टू नाट टू।" उसी मुस्कान के साथ उसने मार्गदर्शन किया।

दूसरी मंजिल के एक कोने में तीन चपरासी खड़े खड़े आपस में कुछ बतिया रहे थे। उनसे नंबर 202 कमरे का पता लगाकर स्वामीनाथन आगे बढ़ा। उसके पीठ के पीछे उनके हंसने की आवाज सुनाई पड़ी। शायद उसी की हंसी उड़ा रहे होंगे! इनके पास कोई और काम नहीं है क्या? देखते रहना। जब उसे यहां नौकरी मिलेगी, वह इनसे खूब काम लेगा।

दो सौ दो नंबर के कमरे में उसके पहले ही कई नौजवान इंतजार में बैठे थे। उसके कमरे में प्रवेश करते ही सब की आंखें उसकी तरफ घूमीं। संकोच के साथ वहां पड़ी एक खाली कुर्सी पर वह बैठ गया। अब तक जो उसकी तरफ घूरते रहे, उन्होंने अपनी आंखें दूसरी तरफ फेर लीं। उनकी हरकत ऐसी लगी मानो वे सोचते होंगे कि यह व्यक्ति जो उनका प्रतिद्वंद्वी बनकर आया है ऐसा कोई बड़ा "तोप" नहीं है। स्वामीनाथन ने उन पर सरसरी नजर दौड़ाई। सोचा, इनमें से कुछेक को वह जरूर परास्त करेगा।

सहसा, एक छोटी मूंछ वाले ने उसकी तरफ देखकर कहा, "हेलो।" स्वामीनाथन रोजगार दफ्तर में उस युवक से मिला था। कड़ी धूप में, लंबी क्यू में दोनों खड़े थे। गर्मी की झुंझलाहट और परेशानी के उस वातावरण में अंकुरित मित्रता अब ताजा हो उठी है। बदले में स्वामीनाथन ने भी 'हेलो' कहा।

"लगता है, अभी तक नौकरी नहीं लगी है।"

"नहीं यार।"

परस्पर सहानूभूति! आपस में मशविरा।

हा-हा-हा... का अट्टहास। सामने की तरफ बैठा एक मोटा, मुठल्ला युवक हंस रहा था। अब तक जितने इंटरव्यू में गया है, उन सब का विवरण देते हुए इंटरव्यू की हंसी उड़ा रहा है।

"कालेज की पढ़ाई पूरी करके इतने दिनों से क्या करते रहे थे?"

"आपके विज्ञापन के इंतजार में था, सर।"

"इस नौकरी के लिए अपने को योग्य मानते हो ?"

"जी, जरूर! लेकिन लगता है, यह नौकरी मेरे लिए उतनी लायक नहीं।"

"टाइप जानते हो?"

"नहीं साहब! वह महाशय कौन हैं? बताइए!"

"कितनी तनख्वाह चाहते हो?"

"आप बताइए! आप कितना दे सकेंगे?"

उस मुठल्ल के मुंह से निकलते हर जवाब पर जोर की हंसी हो रही थी। वहां पर छाई खामोशी, क्षण प्रति क्षण भूताकार फैलती घबराहट और विफलता से बचने के इरादे से वे लोग हंस रहे थे। उपने मन के भय और कमजोरियों को छिपाने के लिए, असली

स्थिति को भूल जाने के लिए वे लोग हंस रहे थे। इंटरव्यू में सबकी कलई खुल जाएगी। सच्चाई से सामना हो जाएगा। तब तक, उस क्षण तक तो वे हंसते, कहकहा लगाते रह सकते हैं।

सहसा एक चश्माधारी हाथ म एक लिस्ट लिए कमरे में आया और बोला, ''साइलेंस प्लीज!''

''आप जैसे शिक्षित जवान लोग...'' ऐसा एक छोटा सा भाषण भी झाड़ा। उम्मीदवारों में से किसी ने भी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। सबके सब खामोश हो गए। कंपनी में अपना काम चलना है तो वहां के बंदे का हर बकवास झेलना ही पड़ेगा।

उस 'चश्मे' ने एक एक करके सब के प्रमाण पत्रों की जांच की। फिर बगल के कमरे का पुशडोर खोलकर अंदर की तरफ झांका, और फुसफुसाया। फिर उम्मीदवारों की ओर मुखातिब होकर बोला, ''आल राइट, मैं एक एक करके नाम पुकारूंगा। जिसका नाम पुकारा जाए वह अंदर जाएगा।''

पहला नाम अपना नहीं रहा, इस बात पर स्वामीनाथन को आश्वासन हो रहा था। वैसे भी वह पहला नहीं है, आखिरी भी नहीं है। उसकी इच्छा इन दोनों के बीच में एक गुप्त स्थान में अपने को छिपा लेने की है। पहला बनने में हिचक थी और अंतिम स्थान से नफरत थी।

एक, दो, तीन, जिनका नाम पुकारा गया, वे एक एक करके अंदर गए। मुठल्ले ने कहा, ''यह सब कुछ 'आइ वाश' है। सिफारिश के बल पर पहले ही किसी को चुन लिया होगा। हमारे सारे सर्टिफिकेट बेकार हैं। हमारा यहां आना भी फिजूल की बात है।''

मुठल्ले का भाषण जारी था। खूब बातें करता है साला। तूफान सा भाषण—इस बात की पूरी संभावना है कि वह एक न एक दिन कोई नेता बन जाए। स्वामीनाथन कल्पना में भी नहीं सोच सका कि यह मुठल्ला किसी दफ्तर में किसी के अधीन काम करेगा। वह खुद अपने बारे में भी सोच नहीं पा रहा था कि वह स्वयं भी एक ही जगह पर बैठकर कुर्सी कैसे घिसा सकता है। यह सोचना भी उसे कठिन लग रहा था। न जाने यह कैसी नौकरी होगी? विज्ञापन में लिखा था 'कार्यालय सहायक' की जरूरत है। किसका सहायक? कैसा सहायक? पता नहीं। उसके मातहत भी कोई सहायक होगा कि नहीं? चपरासी? हां! कम से कम उन्हें तो हांक लगा सकता है। एक विशाल कमरे में और कुछ लोगों के साथ वह भी बैठा रहेगा... हां, इसी तरह का कोई विशाल कमरा होगा।

स्वामीनाथन ने फिर से उस कमरे के चारों तरफ नजर दौड़ाई। सिर के ऊपर 'चटर पटर' का शोर करता हुआ बिजली का पंखा घूम रहा था। दीवार पर एक छिपकली बैठी थी। खुली खिड़की के जरिए दूरी पर नीला आकाश और हरे भरे वृक्ष की डालियां और

पत्ते दीख रहे थे। धूप की किरणें फर्श पर खिड़की के आकार में प्रकाश की कई चौकोर आकृतियां बिछा रखीं थीं। खिड़की के शीशे पर एक भौंरा झंकार करता हुआ बार बार शीशे के साथ अपना सिर टकराता रहा। पास ही कहीं से टाइपराइटर से खट्-खट् की आवाज आ रही थी।

वह मोटा मुठल्ला और मूंछों वाला आपस में जोश खरोश के साथ कुछ बहस कर रहे थे। कमरे में बैठे लोग एक एक करके उठते, जाते रहे। स्वामीनाथन का मन कर रहा था, सब कुछ बिसर जाए—वह कमरा, वहां बैठे हुए लोग, और होने वाला इंटरव्यू कुछ भी याद न रहे। बाहर चटकती धूप में जो कुछ घटित हो रहा था, उन नजारों की कल्पना करने लगा। धड़ धड़ करते स्कूटरों का शोर, तरह तरह के हार्न की ध्वनियां, धरती की छाती को दहलाती लारियों का शोर गुल, मोटर और बसों की आवाजें बाहर से हवा में तैरती आ रही थीं। नौकरी लग जाने के बाद उसके पास इतना समय नहीं होगा कि जाकर आंखें चौंधियाती धूप में बाहर की दुनिया का आस्वादन करे। वह तो सुबह और शाम की धूप ही देख पाएगा।

स्वामीनाथन ने कसकर आंखें बंद कर लीं। सिर के ऊपर चटर पटर का शोर करता बिजली का पंखा। मुठल्ले के बोलने की आवाज। खट खट करते टाइपराइटर की ध्वनि। भौंरो का झंकार। एकाएक दीवार पर बैठी छिपकली किर्र र... किर्र र बोली। स्वामीनाथन ने आंखें खोलकर देखा। परीक्षा हॉल में एक छिपकली दीवार पर बैठी थी। हर रोज नियत समय के पहले ही अपना पेपर खत्म कर५ वह यों ही अध्यापक का मुखड़ा, दीवारें, खिड़कियां, छिपकली और हाथ की कलम को बारी बारी से देखता हुआ, इसी प्रतीक्षा में बैठा रहता था कि देखें कौन सब से पहले अपना पेपर देकर जाता है। तब तो उसे सभी प्रश्नों का उत्तर मालूम था। सभी परीक्षाओं में आराम से बैठे सभी प्रश्नों का उत्तर तीन घंटो में लिख दिया होता तो, आज तीसरे दर्जे में पास होकर ऐसे बेमतलब के साक्षात्कारों के इंतजार करते रहने की नौबत न आती।

सोचा—अब मां और दीदी क्या करती होंगी? दोपहर की नींद से उठी होंगी। जानू तो स्टेनो है। कुछ न कुछ टाइप करती होगी। या पेंसिल, नाखून अथवा रूमाल को दांतों से काटती कुतरती बैठी होगी। बेकार बैठे रहते समय ऐसा कुछ न कुछ कुतरते रहना उसकी आदत बनी है। स्वामीनाथन ने उसका दफ्तर देखा है। बहुत पुरानी बिल्डिंग है उसकी। दीदी के दफ्तर से बढ़कर एक सुंदर शानदार कार्यालय में उसको नौकरी मिलने वाली है। इस कार्यालय में थोड़े दिनों के अंदर ही वह बड़ा नाम कमा लेगा। बहुत सारे दोस्त हो जाएंगे। दीदी या मां के साथ बाहर घूमने जाते वक्त, ये मित्र उसे देखकर मुस्कराएंगे और हाथ मिलाएंगे। तब मां जान लेगी कि दीदी बड़ी है या वह? बड़े बड़े लोग उससे मिलने

के लिए घर आएंगे। पूछेंगे, "मिस्टर स्वामीनाथन हैं घर पर? यही मिस्टर स्वामीनाथन का मकान है? आई स्पीक टु मिस्टर स्वामीनाथन?"

स्वामीनाथन—स्वामीनाथन, स्वामीनाथन, स्वामीनाथन!

"स्वामीनाथन!"

चौंककर उसने सिर उठा के देखा। हां, वही चश्माधारी। क्या इतनी जल्दी उसकी बारी आ गई?

चश्मा वाले को पार करके, कमरे में प्रवेश करते ही, अब तक जितनी हिम्मत बांध रखा था, वह सारी न जाने कहां काफूर हो गई।

सामने एक, दो, तीन, चार... आदमी विराजमान थे। चार आदमियों के मुकाबले में अकेला एक वह। कहना चाहा, "गुड आफ्टरनून।" किंतु मुंह से जो शब्द निकला कुल मिलाकर अर्थहीन ध्वनि अनुक्रम रह गया। घबराहट, सांसों की तीव्र गति, उलझन और पसोपेश में उसकी ध्वनि फुसफुसाहट मात्र रह गई।

"सिट् डाउन।"

कुर्सी पर पीठ टिकाए बिना सामने की तरफ जरा झुका सा बैठा मानो बड़े धर्मसंकट में पड़ा हो। उसे चार जोड़ी आंखें घूर रही थीं। उसे अस्थिर बनानेवाली 'मर्करी लाईट' सी चौंधियाती, चार जोड़ी आंखें। उसकी छानबीन करती मर्मभेदी चार एक्सरे कैमरे वाली आंखें।

"आप ही मिस्टर स्वामीनाथन हैं?"

सामने बैठे काले चश्मे वाले एक मोटे आदमी ने यह प्रश्न पूछा। उनकी तरफ देखते हुए स्वामीनाथन ने कहा, "हां?।"

"आपकी उम्र कितने साल ही है?"

"इक्कीस वर्ष।"

"देखने में इससे कम उम्र के लगते हैं!"

"यह मेरी गलती तो नहीं, सर!" स्वामीनाथन की उम्मीद थी कि वे लोग उसकी इस जवाब पर मुस्कराएंगे। मगर कोई नहीं हंसा। अब तो वह दुविधा में पड़ गया।

सामने बैठे लोगों के कुछ और सवालों का जवाब देने के बाद उसकी घबराहट जरा कम होने लगी थी। लेकिन इसी समय उसकी दाईं तरफ बैठे सज्जन ने सहसा एक सवाल दागा। वह तो अपने सामने बैठे सज्जन पर सारा ध्यान केंद्रित करके बैठा था। एकाएक आकस्मिक आक्रमण से वह चकरा गया। उन्हें उत्तर दे ही रहा था कि बाईं तरफ से एक ने तीसरा सवाल दागा। टेनिस के खेल में जिस तरह गेंद उछल उछल कर आता है यहां प्रश्नों का हाल यही था। स्वामीनाथन को अकेले ही हमलों का सामना करना पड़ा। शत्रुपक्ष

में चार व्यक्ति थे और प्रश्न बेशुमार। गेंद की सर्विस हमेशा उन्हीं के हाथ में...

कैसे कैसे सवाल! परिवार का ज्येष्ठ पुत्र वही है क्या?

इतने दिनों से क्या करता रहा? आज के दैनिक के हेडलाइंस क्या थे? आखिर में उसने कौन सी पुस्तक पढ़ी है? इस हाल में कितनी कुर्सियां हैं? वगैरह... वगैरह ... स्वामीनाथन, जो सामने बैठे सज्जनों के हर सवाल का बड़े अदब से सोच समझकर उत्तर देता आ रहा था एकाएक बौखला उठा। लगा, ये लोग अपने को बड़ा बुद्धिमान और निष्पक्ष होने का ढोंग रचा रहे हैं। ये लोग जब नौकरी पर आए ऐसे ही इंटरव्यू के जरिए चुने गए थे? या कुछ अन्य तरीकों से? वे जिन उंचे ओहदों पर आसीन हो गए हैं उन्हें सीधे मार्ग पर चलकर ईमानदारी से अख्तियार किया है? क्या खाली जगहों पर अपने अपने आदमियों की नियुक्ति की होगी। ये सज्जन जो अपनी शान दिखा रहे हैं, और जबर्दस्ती जिन भावों को अपने चेहरों पर ओढ़ रखा है, उस नकली मुखौटे को चीरकर उनको चौंका देने के लिए वह बेचैन हो उठा।

उनकी जिंदगी के गुजरे अध्याय, उनके चेहरों पर पड़े सिकुड़नों पर गड्ढों और रेखाओं पर पके बालों या गंजे पड़े सिरों पर, उनके शरीर की मुटाई और चर्बी चढ़ी देह की परतों पर साफ साफ अंकित थे। चाहे उन्होंने जो भी कमा लिया हो, बटोर लिया हो, एक बात को हमेशा हमेशा के जिए गंवा बैठे हैं। वह थी उनकी जवानी। जवानी की वे उमंगें, वह स्फूर्ति, वह उत्साह, वह जोश, वह निष्कलंक पवित्रता आदि से हाथ धो कर बैठे थे। उनकी वह धन दौलत, पदवी, अधिकार और अनुभव को कभी न कभी स्वामीनाथन प्राप्त कर सकेगा। लेकिन उसकी इस जवानी को, अब तक एक अध्याय भी जिस पर अंकित न हुआ है तथा उस मासूम, पवित्र, निष्कलंक मुखड़े को वे कभी पा न सकेंगे। कभी नहीं।

स्वामीनाथन का हृदय गर्व से फूल उठा। उसे अब किसी बा : की न परवाह थी न चिंता। उसकी सारी जिंदगी उसके सामने फैली पड़ी है। इस इंटरव्यू के लिए इन बेफकूफ निकम्मों से वह क्यों डरे? इस वातानुकूलित कमरे के बाहर धूप फैली पड़ी है। उस बाहरी दुनिया में और भी लोग हैं। जिंदगी है। अब स्वामीनाथन की घबराहट जाती रही। बड़े इत्मीनान से बेझिझक होकर सवालों का उत्तर देने लगा। लेकिन जब तक उसकी हिम्मत बंधी तब तक इंटरव्यू खत्म हो चुका था।

संध्या की हल्की धूप और ठंडी ठंडी हवा में स्वामीनाथन, इंटरव्यू के बारे में सोचता हुआ चलने लगा। सड़क के नुक्कड़ पर रास्ता पार करने के लिए जरा रुका। लाल बत्ती के जलने और गाड़ियों के रोके जाने के इंतजार में जो खड़ा था सिर उठाकर सामने की तरफ देखा, एक पल दो पल देखते हुए रुक गया। सामने सड़क पर वह कौन जा रही है? स्वामीनाथन का सिर घूमने लगा।

जानू और उसके साथ में था एक नौजवान। जानू की नजर उस पर न पड़ी थी। वह खुश थी। हंस रही थी वह। साथ वाला नौजवान भी हंस रहा था। काला चश्मा पहने हट्टा कट्टा अलमस्त वह नौजवान फिल्मी हीरो सा लगता था। लाल बत्ती जल उठी। गाड़ियां रुक गईं। स्वामीनाथन बिना सड़क पार किए सामने की तरफ देखता ही रह गया। फिर से हरी बत्ती जल उठी और गाड़ियां चलने लगीं। स्वामीनाथन बिना सड़क पार किए चलने लगा।

थोड़ी दूर चलने पर एक सिनेमा थिएटर था। उसकी पसंद की अभिनेत्री ने इसमें काम किया था। थिएटर के बरामदे में अंकित छायाचित्रों को देखने लगा। उस अभिनेत्री की विविध अदाएं। कंपनी की रिसेप्शनिस्ट की याद आई। अपनी दीदी और उस काले चश्मे वाले नौजवान के रूप उभर आए। सहसा एक अखंड शून्यता और उदासी ने उसे आ घेरा और वह झट एक टिकट ले कर थिएटर में घुस गया।

सिनेमा थिएटर उसे अच्छे लगते थे। केवल वहीं पर उस अंधेरे में वह भूल पाता कि वह स्वामीनाथम है। वहां पर वह अपनी समस्त चिंताएं और दुखों को भूल जाता है। लेकिन आज उसका दिल सिनेमा में न लगा था। इंटरव्यू के बारे में, दीदी के बारे में, मां के बारे में वह सोचता ही रहा। सोच रहा था कि मां घर में उसकी राह देखती होगी। देर हो जाने की वजह से चिंतित हो रही होगी। दिन भर घर में बैठे बैठे चिंता में अकुलाती रहने की आदी हो गई है वह। सहसा ख्याल आया कि मां ने बहुत दिनों से सिनेमा देखा ही नहीं। जब तक पिताजी जिंदा रहे, सब को अपने साथ सिनेमा देखने ले जाया करते थे।

इंटरवेल में वह उठकर बाहर आया। चारों तरफ सुखी परिवारों के लोग दीख पड़े। पिताजी अगर जिंदा रहते तो उसका परिवार भी इतना ही खुश नजर आता। उनका संसार उनकी हंसी खुशी पिताजी के इर्द गिर्द ही घूमती रही। वे ही उनके सब कुछ थे। वे उनके संसार थे। उनकी मृत्यु के बाद ही वे तीनों आदमी अपनी अपनी अलग दुनिया की तलाश में हैं। मां घर की चारदीवारियों के बीच, जानू उस काले चश्मेवाले नौजवान जैसे लोगों के बीच, स्वामीनाथन इंटरव्यूओं में। पिताजी के दिन का सारा समय जिस बाहरी दुनिया में बीत जाया करता था उस बाहरी दुनिया को अब वह खोज रहा है। उस दुनिया की निदर्यतापूर्ण कठोरता के आघातों को सहने में असमर्थ होकर सिनेमा थिएटर के अंधकार में अपने को छिपा लेता है।

इंटरवेल के बाद फिर से थिएटर के अंदर जाने का मन न रहा। वह बस स्टैंड की ओर चल पड़ा।

बस स्टैंड पर बिल्कुल भीड़ नहीं थी। स्वामीनाथन अपने विचारों में डूबते उतराते अकेले

खड़ा था। घर लौटने की इच्छा न जानू को होती है, न उसे। घर में रहते समय घर का मर्द होते हुए भी पिताजी की जगह पर घर जिम्मेदारियों को अपने कंधे पर उठाए विना उसका रहना जानू के मन को सालता रहता है। एक लाड़ली विटिया के नाते जिन सुख-सुविधाओं की वह भागीदार रही, उससे वंचित होकर नौकरी पर जाने की मजवूरी पर जानू कुढ़ती रहती है।

घर लौटते ही मां का पहला सवाल यही रहेगा, "इंटरव्यू कैसा रहा? अच्छा किया है न तुमने?..." मां की सव से वड़ी कामना यही है कि वेटे को अच्छी नौकरी मिल जाए। तभी स्वर्गीय पति की जगह पर वह उसे देख पाएगी। गर्व से छाती फुलाते हुए वाहरी दुनिया में कदम रख सकेगी। जानू भी यही चाहती है कि वह नौकरी पर लग जाए। स्वामीनाथन की भी यही चाह है। उसे नौकरी मिल जाए तो वह आजाद हो जाएगा। अपना अलग संसार वसा लेगा वह। फिर इस जानू की दया की प्रतीक्षा में उसे जीना न होगा।

लेकिन उन दोनों को यह भी डर है कि कहीं नौकरी न मिल जाए। मन ही मन घवराती हैं। मां डरती रहती है कि चार पैसे कमाने लगाता तो जानू के जैसे वह भी अपनी दुनिया से निकल जाएगा, फिसल जाएगा उसकी पकड़ से। जानू को भय है, उसका अधिकार, उसकी आजादी छिन जाएगी, ये निश्चिंत दुपहर का सुनहला समय तव दूसरों के कब्जे में हो जाएगा।

यह मुई वस अव तक क्यों नही आ रही है? यदि यही सिनेमा हो तो, एक सुंदर रिसेप्शनिस्ट चमचमाती कार में टपक पड़ेगी, और उसे पास विठाकर फुर्र से निकल जाएगी। वाद में ही उसे पता चलेगा कि वह और कोई नहीं कंपनी के मालिक की विटिया है। यदि सिनेमा हो तो इंटरवेल के वाद उसके पिताजी जिंदा लौट आते और उसे नौकरी की तलाश में भटकने की जरूरत न पड़ती। जिंदगी अगर सिनेमा जैसी होती तो कोई चिंता नहीं होती।

जिंदगी क्यों इतनी टेढ़ी और मुसीबतों से भरी है? स्वामीनाथन वस स्टैंड पर खड़ा खड़ा सोचता रहा।

मृतक

लंच टाइम के लिए अभी पंद्रह मिनिट बाकी था कि वह कमरे में आया। एक सिहरन सी दौड़ी उसके अंदर, कोई संदेह नहीं है इसमें।

दैट इज इट ... लव। (हां, वही मुहब्बत है)।

उसकी दृष्टि उसके चेहरे पर पड़ी। मगर वहीं पर नहीं ठहरी, फिसलती हुई गई और मिसेज पिल्लै पर जा रुकी। मानो उसी से मिलने आया हो, वह उसके पास गया।

''हेलो!''

''हेलो।'' मिसेज पिल्लै ने कहा, ''बैठिए।''

वह बैठा। उसकी आंखें ऊपर उठने से जैसे हिचकती हों, मेज पर मंडराती रहीं, पूछा, ''क्या चल रहा है?''

उसने ओठ बिचकाते हुए दोनों हाथ फैलाए। वह उसकी मेज पर पड़े फ्रूफों, तस्वीरों के ढेर से एक फोटो उठाकर देखा। ''मुस्कराती हुई जैक्विलिन''।

''इसके बारे में क्या लिखने का इरादा है?''

''इन्वेस्टिगेटिव (अन्वेषक) लेख। अर्थात अब वह किससे शादी करने वाली है?''

''माई गाड।''

''क्यों?''

''भद्दा नहीं लगता?''

''कौन सी बात? उसकी दूसरी शादी करना?''

''नहीं नहीं ... उसके बारे में इस तरह का ...''

''यह तो बिजनेस है।'' मिसेज पिल्लै ने कंधों को उचकाया। बोली, ''जैक्विलिन एक जीती-जागती सच्चाई है, साथ ही एक काल्पनिक पात्र का सा निरालापन और दिलचस्प बातें उसमें हैं। अर्थात औसत मिडिल क्लास रीडर को उकसाने की ...''

''आई सी!''

''इनमें से ज्यादतर लोग अपने आप को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि उनका स्तर ऊंचा है। लेकिन असल में वे कुछ चटपटी, मजेदार, मनोरंजक कोई चीज पढ़ना चाहते हैं।''

"सो कर रहे हैं।"

"सो? आप लोग क्या कर रहे हैं अपने दैनिक अखबार में? राजनेताओं का चटपटा जोरदार भाषण, भले ही वे बेकार और बेमतलब के हों, उन्हीं को ज्यादातर छापना चाहते हैं। चुनाव लड़ने वाले राजनीतिक दलों के बारे में ऊहापोह, अनुमान और कभी निर्णय-निष्कर्ष को परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से या कभी रहस्य रोमांच वाले उपन्यास की भांति सनसनीखेज बनाकर लिखते हैं... फलां ऐसा है, ढकां वैसा है... यह ठीक है, यह गलत है..."

"और आप जैक्विलिन पर लिखते हैं।"

"हां जी।"

वह मुस्कराता हुआ, असल में जिसकी ओर नजर फरमाने आया, जिसे देखने आया, उसकी तरफ देखा। वह भी मुस्कराई। अरे बाबा! दम घोटने वाला तनाव ढीला हो गया। पहली दीवार लांघ चुका है, अब...

"भारतीय लोग मिथ में सराबोर डूबे हैं। सच्चाई को नग्न सत्य के रूप में, जैसे के तैसे स्वीकारने में यह पृष्ठभूमि बाधक बनी हुई है। भारतीय अवचेतन मन यथार्थ को स्वीकार करने के पहले उसे मिथक बनाता है। अच्छी शक्तियां और बुरी शक्यिां, अधिदेवता और अधिराक्षस, पाप और पुण्य, हमारे पूंजीवादी अखबार भी... हमें इन्हें झेलना ही होगा... इन मिथों को बनाए रखने के लिए यह फायदेमंद सिद्धांत हैं। सच्चाई को समझना कठिन है, दिलचस्प बात भी नहीं हैं।

"ट्रूथ डज नाट सेल ..." (सत्य बिकाऊ नहीं है)।

"इस बारे में आपका क्या ख्याल है, मिसिज सेन?" उसने पूछा। यह दूसरी दीवार लांघने की कोशिश थी जो उतना सरल काम भी नहीं था। फिर भी हरेक प्रयत्न स्वागत योग्य है, प्रोत्साहन देने योग्य है।

मिसेज सेन ने उसके प्रयत्न की स्वीकृति में मैत्रीपूर्ण किंतु शरारत में भिगोई नजर उसकी तरफ डालते हुए पूछा, "किसके बारे में?"

"उसे तुम किसी भी हालत में समझ नहीं पाओगी", मिसेज पिल्ले ने मिसेज सेन से कहा। फिर उसकी ओर मुखातिब होकर कहने लगी, "शी इज आल्सो रोमांटिक... आपकी आदर्श पाठकों में एक। वह जो चाहती है पलायन... कैथारिस... जहां तक उसका ताल्लुक है, राजनीति एक सनसनीखेज रंगमंच है।"

यह तो हर व्यक्ति के स्वभाव और प्रकृति के अनुसार होने वाला अनुभव है। इसका कारण कुछ भी हो सकता है। इसके लिए आप दैनिक पत्र को कैसे दोष दे सकती हैं?

"आप लोगों की इस प्रवृति का फायदा उठाने की कोशिश करते हैं। आप उन्हें सही दिशा की ओर नहीं ले जाते। यही मेरी शिकायत है। आप उन्हें जो दे रहे हैं वह केवल

नाम, मुखड़े और भाषण है और कुछ नहीं... ये सब उनके अंतर्मन के मिथ में घुल जाते हैं और तरह तरह के और बिंबों के रूप में अंकुरित होते हैं। हां, गलत बिंबों के रूप में।''

''बताइए इसके लिए क्या करना है?''

''सही बिंबों का बीज उनके दिलों में बोइए। उनसे कहें कि वे लोग कोई हीरे नहीं हैं... अतिमानव भी नहीं, आज हमारी मांग किसी पवित्र पुनीत और दैवी व्यक्त्वि नहीं है। आज की अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की सच्चाइयों को समझकर उसके अनुरूप काम करने वाले शक्तिशाली कर्मवीरों की हमें जरूरत है। अपने हक को अपनी धाक और रोब से पाने में समर्थ हों... आज व्यापार की दृष्टि से और सैनिक दृष्टि से दुनिया के राष्ट्र एक दूसरे से आगे निकलने पर तुले हुए हैं, अपनी ताकत बढ़ाने की कोशिश में हैं। आज की सच्चाई यही है।''

उसने ताली बजाई।

मिसेज पिल्लै निश्चल भाव से बोली, ''यह इस तरह तालियां बजाना भी दकियानूसी बिंबों का परिणाम है। किसी महिला से आप लोग गंभीर और महत्वपूर्ण बात की प्रत्याशा नहीं करते जो आपके लिए फायदेमंद साबित हो। आप ताली बजाकर जैसे वह कोई हंसी तमाशे की बात हो, उसका निराकरण कर देते हैं।''

''मिसेज पिल्लै! यू मेक मी नर्वस।'' (आप मुझे अधीर और विकल बना रही हैं)।

''रिलैक्स, आई एम गोइंग...''

वह अपनी मेज पर पड़ी चीजों को जल्दी जल्दी करीने से सजाने लगी। ऊपर पड़े कुछ कागजों को दराज खोल कर उसके अंदर धकेला, फिर हैंड बैग लेकर उठ गई। दोनों की तरफ एक नजर देखकर कहा, ''ओ. के.।'' फिर हाथ हिलाती हुई निकल गई।

अब वे दोनों अकेले।

''सो।'' उसने जल्दी से कहा जैसे मौन को और मौन की दुविधा को टालना चाहता हो। मौन जो है, मन की चिंतन और भाव-धारा को बेरोकटोक प्रवाहित करता है, उनका अनुभव कराता है, इसलिए वह खतरनाक है। वह उसके बारे में सोचने लगी, सदा ही किसी से संलग्न हुए बिना फिसल जाना इसकी प्रवृति है...।''

''मिसिज पिल्लै को राजनीति में होना चाहिए था।'' वह बोला।

इसका उत्तर देने में असमर्थ सी वह उसी को देखने लगी। उसकी आंखें शायद कह रही थीं, ''आप जो कुछ कहना चाहते हैं, वह तो यह नहीं है न?''

उसने झट अपनी नजर झुका ली। बोला नहीं।

घने काले समृद्ध बाल। उन्नत माथा। सुडौल नाक।

सहसा उसकी नाक को छूने का मन हुआ।

यह बहुत मामूली बात है। फिर भी कितना असंभव सा लगता है। हां किसी की नाक छूने की बात। कितनी दीवारें, मुखौटे।

और कितनी ही बातें? ढेर सारे शब्द बेमतलब के।

बोलते, कहते सुनते, बतियाते... बतियाते...

"सो...", उसने फिर सिर उठाया। उससे आंखें चार होते ही हड़बड़ाया। अपनी हड़बड़ाहट को छिपाते हुए बोला, "फिर से हम दोनों अकेले हैं।"

"........."

"कुछ नहीं बोलोगी?"

"मैं तो हमेशा बोलती रहती हूं। आज तुम्हीं कुछ कहो।"

वह कंधे उचकाता हुआ मेज पर उंगलियों से ताल देने लगा। उसने उन उंगलियों को देखा। लंबी उंगलियां! मोम सी मुलायम दिखती उंगलियां। किसी चीज के लिए तरसती, तड़पती, तलाशती उंगलियां। मेज पर पड़ी हैं उसके हाथ के बिल्कुल निकट। व्हाई डजंट ही टच माई हैंड? वाई डजंट ही ग्रिप माई शोल्डर्स? (यह मेरा हाथ क्यों नहीं पकड़ लेता? मेरा कंधा क्यों नहीं थमाता?)।

"हाउ इज युवर वाइफ?" उसने आखिर पूछा? और कोई चारा नहीं। आज भी आखिर उसी को बोलना पड़ा।

"फाईन।"

"चिट्ठी आई?"

"हां, कल।"

उसने कुछ कहना शुरू किया, लेकिन तुरंत चुप हो गई मानो कहना नहीं चाहती हो।

फिर से चुप्पी ....।

"लगता है उसे बड़ी चिंता है मेरे खाने वाने के बारे में। सोच रही होगी। मैं भोजन के लिए क्या कर रहा हूं। चिट्ठी में खास इसी बात की चिंता व्यक्त है। और पूछा है, पूजागृह में दीप जलाता हूं? नल में पानी आता है? पानी बंद होने से पहले नहा लेता हूं कि नहीं। जमादार, नौकरानी वगैरह ठीक से काम करते हैं? स्टोव की मरम्मत हो गई क्या? इस तरह बहुत सी बातों पर अपनी चिंता प्रकट की है। हां... पड़ोसियों को अपना स्नेह बताने के लिए भी लिखा है।"

अधरों पर मुस्कराहट लिए वह यह सब सुनती रही। ये सारी बातें यह मुझे क्यों सुना रहा है? क्या वह एक औसत हिंदू धर्मपत्नी का व्यंग्यचित्र उतार रहा है या केवल बातचीत के लिए कह रहा है? जैसा भी हो। वह बोलता रहे। बातें करते करते उसका तनाव ढीला होता जाएगा। वह खुल जाएगा। बुद्धिवादी का कवच जो ओढ़ लिया है इसने, वह उतर

जाएगा। नरमी आ जाएगी। धीरे धीरे यह मन की कोमल भावनाओं से प्रभावित होने की दशा पर पहुंच जाएगा।

"आज सवेरे मैंने खुद खाना बनाया। भात जैसा हो गया था। सांबर में नमक ज्यादा हो गया। बैंगन की सब्जी अधपकी रह गई।"

(आज रात को फिर इसे भोजन पर न्योता दूं? खैर पहले इसे अपनी बातें पूरा करने दूं, उसके बाद)

वह हंसते हुए बोली, "अब तो समझ में आ गया न! खाना बनाना उतना आसान काम नहीं हैं।"

"हां जरूर। बहुत ही मुश्किल। पेचीदा, नाजुक" (प्यारे हम दोनो क्यों ऐसा नाटक कर रहे हैं? जो कुछ मुझसे कहना चाहते हो... बातें ये नहीं है न? कम ऑन, ओपन आउट 'अपने को खोल दो न')।

"अभी महसूस हो रहा है कि अपना खाना खुद बनाने की मजबूरी किस कदर चिढ़ पैदा करने वाली बात है... जैसे ऊंचे ओहदे से एकाएक नीचे गिर जाने की अनुभूति। अपने आप पर तरस खाने का एहसास... सामंतवादी मनोवृत्ति तो नहीं झलक रही है? मैं अपने को प्रगतिवादी सिद्धांतों के समर्थक के रूप में मान रहा हूं।"

"कोई भी हरफन मौला नहीं हो सकता है।"

"सच्ची बात है।"

कमरे से सटी सीढियों पर सहसा पैरों की आहटें। बोलने की आवाजें।

"एक बज गया है।"

"लंच के बारे में क्या इरादा है तुम्हारा?"

"कहीं बाहर जाना है। घर से कुछ नहीं लाया हूं।"

"मैं भी कुछ नहीं लाई। शैल वी गो?"

संग संग चलते समय उसकी देह की निकटता... उसकी सच्चाई उसे प्रभावित कर रही थी। उसकी देह का प्रत्येक तार झंकृत हो रहा हो, ऐसा एक सिहरन। कद काठी, देहयष्टि का गठन ऐसा मानो उसके लिए नाप जोखकर बनाया गया हो।... न्योता देने की देर कि साथ में चल पड़ा।

अभी दो दिन पहले उसके फ्लैट पर गया था। भोजन के निमंत्रण पर। तब एक दो बार उसकी नजरें चुपके से उसके शरीर के उतार चढ़ावों पर फिरती रही। उसने उस दृष्टि को रंगे हाथ पकड़ लिया था।

अनदेखे कुछ अवसर भी ऐसे रहे होंगे। उस दिन उनकी बातचीत मार्लिन ब्रांडो की फिल्मों को लेकर चली थी।

आज जैसे खाना बनाने के बारे में बात शुरू हुई, इसी तरह।

बुलाने पर जरूर आता है।

अपनी चाह और अरमानों को जाहिर करना नहीं चाहता, या नहीं आता।

हिपोक्राइट या जस्ट क्लम्सी? (ढोंगी या अनाड़ी?)।

दोनों रेस्तरां में जा बैठे। सुखद अंधकार। धीमी आवाज में संगीत आज भी पुरानी हिंदी फिल्मों के गीत!

इसी तरह पहले एक दिन दोनों इसी जगह बैठे थे। तब वह अपनी जीवन कथा का सार उसे सुना चुकी थी। जब वह उन्नीस साल की थी, किसी से मुहब्बत... और फिर शादी... तीस साल के होते होते प्रेम बंधन का टूट जाना यह सब बताया था। बोर्डिंग में रहकर पढ़ने वाले अपने बेटे के बारे में सुनाया था। यह भी बताया कि उन्नीस साल की उम्र में उसे बिल्कुल मालूम नहीं था कि प्रेम माने क्या है? उसका प्रेमी उसका प्राध्यापक था। गुड फीचर्स, फोर्सफुल स्पीकर, स्वेप्ट ऑफ हर फीट। (देखने में अच्छा, प्रबल वक्ता, उसका मन जीत लिया)

ओनली टु कम डाउन क्रैशिंग हर। (केवल इसलिए कि बाद में उसे धड़ाम से गिरा दे)।

उस दिन भी जब उनमें ये बातें हो रही थीं, यही पुराने हिंदी फिल्मों के गाने पार्श्व संगीत के समान गूंज रहे थे। बीच बीच में वह उससे पूछती रही, "तुम ने यह फिल्म देखी है? यह गाना सुना है? वह सीन याद है?"

उसने वह सब देखा था। उसे सब कुछ याद था।

सहसा उनके बीच में एक प्रकार की आत्मीयता अंकुरित हो उठी।

दस बीस सालों के पहले उन दोनों की देखी फिल्मों ने उन दोनों के बीच में एक ऐसी सहजता और निकटता की भावना को जगाने की पक्की नींव डाली थी, अब इसकी याद करते समय उसे आश्चर्य हो रहा था।

तब तो दस बीस सालों के पहले ही यह बात पूर्व निश्चित थी? तब तो? ये दोनों यों...

विचारों में सामानता ऐसी तादात्म्य भावना जगा देती है? या मजबूरन ऐसी बातें बटोरी जाती हैं, ताकि वह आत्मीयता बनी रहे।

वह बोली, "कल अमर की चिट्ठी आई थी।"

उसके चेहरे पर प्रश्नचिह्न नजर आया।

"अमर... मेरा बेटा।" उसने समझाया, "अगले महीने सात तारीख को उसकी परीक्षाएं शुरू होनेवाली हैं।"

"कौन से क्लास में है वह?"

"नौवीं में।"

हां, नौवीं में। चेहरे पर हल्की रोमावली अंकुरित होने लगी है। अगले महीने पेपर पूरा होने पर अमर घर लौटकर आ जाएगा। तब तो किसी को घर आने का न्योता देने से पहले उसे सोचना पड़ेगा।

"दो थाली! वेजिटेरियन।"

बैरे ने पूछा कि कौन कौन सी सब्जी चाहिए।

"क्या क्या है?"

"बैंगन की तर सब्जी, आलू टमाटर, आलू पालक, फूलगोभी, भिंडी।"

वह उसकी ओर देखने लगी मानो पूछना चाहती हो कि क्या चाहिए।

उसने कहा, "जो चाहे आर्डर दे दो।"

क्या इसकी अपनी ऐसी कोई रुचि नहीं? जो भी हो, कोई बात नहीं वाली भावना सचमुच चिढ़ पैदा करने वाली बात है।

इस बात से वह अपने मन में एक तरह की अरक्षितता महसूस करने लगी।

बैरे के चले जाने पर उसके दिल में गुदगुदी सी हुई कि सामने बैठे उसकी सुडौल नाक को पकड़कर झंझोड़ दे। लुक, व्हाई डोंट यू से यू वांट दिस यू वांट दैट। से यू वांट मी (कहना चाहती थी, देखो साफ क्यों नहीं कहते कि मुझे यह पसंद है या वह पसंद है। कहो न कि तुम्हें मैं चाहिए।)।

लेकिन उसे दोष देने से क्या फायदा? वह तो ऐसे ही वातावरण में पला है।

ऐसी भावनाओं को प्रोत्साहित करने वाला नहीं है वह। परंपरा के नाम पर 'अहम' को कुचलने वाले नियमों का बंधन। संस्कार के नाम पर अंधविश्वास, जैसे उसने स्वयं कहा है (दक्षिण भारतीय ब्राह्मण परिवार का प्रतिनिधि हूं, उसके सभी पूर्वग्रहों से युक्त प्रतिनिधि।)।

हां, जिस दिन वह उसे आपबीती सुना रही थी, उस दिन उसने भी अपने बारे में कुछ कहा था। जो कुछ बोझ सा उसके दिल को दबा रहा था, उसमें थोड़ा सा भार उतारा था। शुरू में उसके दिल्ली में जन्म लेकर बड़े होने तक की संक्षिप्त रिपोर्ट, जिस तरह वह शादी के नाम पर एक भूल कर बैठी थी, उसी तरह उसने भी हाल में एक शादी कर ली है।

हर शादी गलत सिद्ध हो, यह जरूरी नहीं है।

"हां, गलती न कर बैठें?" उसने कहा, "वह लड़की—अर्थात उसकी पत्नी भी अय्यर परिवार की है, वडमाल उपजाति की है। इडली-दोसा बनाना जानती है। संगीत का अभ्यास

है। पूजा-पाठ वगैरह करना आता है। अंधेरे में पति के लिए वैश्या बनने की कला भी आती है... कुछ लोग ऐसी सहधर्मिणी के साथ खुश भी रहते हैं।"

"आप नहीं क्या?" उसने झट पूछ लिया। पूछने के बाद लगा, हाय! कहीं ऐसा न हो, वह समझ जाए कि मैं बहुत ज्यादा उत्सुकता व्यक्त कर रही हूं। वह अपने आप को कोसने लगी।

"आइ डोंट नो।" देवदास की तरह लंबी आह भरते हुए उसने कहा, "आइ डोंट नो।" हर कोई थोड़े समय के लिए अस्थाई रूप में देवदास बना रहना चाहता है, त्रासदी का हीरो बना रहना चाहता है।

उसने बताया, "उसकी देखी हालिवुड और हिंदी फिल्में पत्नी ने नहीं देखी हैं। न वे गीत सुने हैं, न ही वे किताबे पढ़ी हैं।"

"सिवाय 'शिवकायिन् शपथम्' के।"

"वह क्या चीज है?" उसने पूछा।

"तमिल भाषा में एक मशहूर ऐतिहासिक उपन्यास है।" वह आगे बोला, "ब्राण्डो, चैपलीन, शेरली, दिलीप, गुरूदत्त, सहगल, पंकज मल्लिक, सुरैया, लता—ये सब मेरी जवानी, जवानी के सपनों का एक अंश बन कर मेरे अंतर्मन में घुल मिल गए हैं, बट दीज नेम्स डोंट मीन एनीथिंग टु हर, इन फैक्ट (किंतु ये सब नाम उसके अंदर कोई संवेदना पैदा नहीं करते, हां सचमुच) वह बिल्कुल हिंदी नहीं जानती..."

"और अंग्रेजी?"

वह मद्रास विश्वविद्यालय से बी.ए. है। हम दोनों के पढ़े उपन्यास हैं प्राइड एण्ड प्रिजुडिज, डेविड कापरफील्ड, गुड अर्थ।"

"इनके बारे में बातें कर सकते हैं न?"

वह हंस पड़ा। उदासी की हंसी। देवदास की हंसी। उसकी सहधर्मिणी को यह देवदास स्टाइल समझ में न आता। वाट ए पिटी? (कैसी कारुणिक दशा है?)।

"लुक! यहीं दिल्ली में जन्म लेकर यहीं पली हुई लड़की से शादी करने से तुम्हें किसने मना किया था?"

"ज्योतिषियों ने।" उसने कहा, "मेरी जन्मकुण्डली केवल इसी लड़की की जन्मपत्री से मिली थी।"

"हाउ रिडिक्यूलस!" (कैसी हास्यास्पद स्थिति है?)।

उसने इस तरह कंधे उचकाए मानो बता रहा हो कि यही हमारी जिंदगी है।

"बैरा!"

"रोटी, सब्जी, दाल..."

"राइस?" (चावल?) पूछा उसने।

"सॉरी! खत्म हो गया।"

"हाय रे।" वह उसकी ओर देखने लगी।

"परेशान होने की बात नहीं, मुझे केवल भात ही पसंद है, ऐसी कोई बात नहीं। रोटी इज... ओ. के.।" वह बोला।

वह टिपिकल साउथ इंडियन (दक्षिण भारतीय की सभी विशेषताओं से युक्त) नहीं है, इसे सिद्ध करने का बेहद प्रयास कर रहा है। लेकिन असल में...?

उसके खाने के तरीके को चाव से देखती हुई वह बोली, "मैंने कल उपमा* बनाया था।" वह कैसे खा रहा था। रोटी को तोड़कर, हर टुकड़े को हाथ में लिए, किस में डुबो कर उसे खाएं, यह सोचता विचारता, जैसे वह भारी समस्या बनकर उसके सम्मुख खड़ी हो, हिचकिचाहता हुआ...। उसकी यह परेशानी आस्वादन की चीज थी।

"रियली?"

"बहुत अच्छा बना था... तुम्हें खाकर देखना था।"

"लाई क्यों नहीं?"

"तब तो मिसेज पिल्लै उसे खाली कर देती!"

वह हंस पड़ा ।(अच्छा रिलैक्स हो रहा है)।

"आई से... यह मिसेज पिल्लै मुझे डरा देती है।"

शी इज बेरी नाइस... वह बोली। उसने कंधे उचकाए केरी ग्रांट... और पीटर ओडफल की भांति। उसकी सहधर्मिणी को यह कंधे उचकाना समझ में नहीं आता। सो... मेरे साथ रहते वक्त अगर वह बार बार कंधे उचकाए तो मुझे इसकी परवाह नहीं करनी है...

"दाल को छुआ तक नहीं?"

"उम्...म्।" बोला वह, इस बात पर परेशान से होते हुए कि मेरे खाने पर यह किसलिए इतनी बारीकी से ध्यान दे रही है?

"मिसेज पिल्लै से काहे को डर है? वे राजनीति पर बात करती हैं, इसलिए?" उसने पूछा।

"नो-नो।" वह पल भर रोटी के टुकड़े को चबाता रहा। फिर उसे गले के नीचे उतार कर पानी पिया और पूछा, "अरे तुमने कुछ खाया नहीं?"

"पहले आप बताइए। ऐसा क्यों?"

"वह तो... आइ मीन... लगता है, वह कहीं हम दोनों को लेकर कुछ शक तो नहीं कर रही है, यही सोचकर..."

---

* उपमा—नमकीन सूजी का हलवा जो दक्षिण भारत के नाश्ता प्रकारों में एक है।

"कैसा शक?"

फिर से केरी ग्रांट। (कंधा उचकाया उसने)।

"मैं समझ नहीं पा रही हूं।"

"यू नो, हमारे बीच में..."

वह चुप रहा। बोला नहीं।

"कुछ है! हमारे बीच में?"

वह मन ही मन मुस्कराई। खूब फंसा लिया है उसे। 'हां' कहने की हिम्मत नहीं। 'नां' कहने से डरता भी है।

"बताने की जरूरत नहीं है।" उसने झट अपने बांए हाथ से उसका बाएं हाथ पकड़ लिया। एकाएक बिजली के शाक जैसा उसने एतराज नहीं किया, हाथ हटाया नहीं। वह उसका हाथ सहलाती रही। फिर जैसे दोसा को उलट रही हो, हल्के से उसका हाथ पलटकर बोली, "नाइस हैंड।" वह उसकी हथेली सहलाने लगी। "जानते हो, तुम्हारी उंगलियां कितनी सुंदर है!" वह एक एक करके हर उंगली पर हाथ फेरती रही।

सहसा उसने भी अपनी उंगलियां उसकी उंगलियों से मिला लीं। हल्के से दबाया, फिर अपने हाथ से उसका हाथ लेकर वह देर तक सहलाने लगा।

सहसा उसका आंचल खिसक गया। वह देख रही थी, उसकी शरारत से भरी आंखें वहां उसका कुछ ढूंढ़ रही थीं। वह मुस्कराई।

वह बोली, "आई एम हैपी... विथ यू (मैं खुश हूं... तुम्हारे साथ बहुत खुश हूं।)

"हां- मैं भी।" हल्की मुस्कान के साथ वह बोला। मगर उसमें दुविधा थी, सहजता नहीं थी।

क्या इसे स्वयं सुनिश्चित नहीं है कि यह अब प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है? लेकिन वह प्रभावित जरूर है, चाहे जाने या न जाने।

उसके कान लाल हो गए हैं। हां खूब लाल।

"बैरा।"

उन्होंने अपने अपने हाथ हटा लिए। उसने अपना आंचल ठीक कर लिया।

"आइसक्रीम खाएं?"

"बैरा, पिस्ता दो।"

उस दिन शाम को, उसके घर आया था। मार्लिन ब्रांडो की नाजुक अभिव्यक्तियां के बारे में, बिना ओंठ हिलाए उसके बोलने की अदा उसके भव्य ललाट और उसके अधरों आदि के बारे में चर्चा करता रहा। वह बोली, "यू आल्सो हैव नाइस लिप्स।" (तुम्हारे अधर भी खूबसूरत हैं।)।

तब भी उसके कान एकदम लाल हो गए थे। उसकी उम्मीद थी, उस दिन वह कम से कम चूमे तो लेगा। उस दिन दन दोनों के बीच छाई खामोशियां कितनी गर्माहट ली हुई थीं। न जाने कितनी ही बार अपने कवचों का ढीला छोड़कर, वे परस्पर बिल्कुल स्वाभाविक रूप से एक दूसरे की भावनाओं की गहराई को टटोलते हुए गाढालिंगन में बंधने की विह्लता के छोर तक पहुंचते, असीम खामाशी में अपने को उलझाते रहे। हिचक..डर..

अंधी गलियों में भटकना... फिर बाहर आना, उन क्षणों को नकारने के बाद फिर उन्हें रूप देना... फिर भटकना, फिर संभलना... बनाना... मिटाना... ओह!

उस दिन उन्होंने एक दूसरे का हाथ तक नहीं पकड़ा था।

आज ही वह घटित हुआ है।

बड़ी धीमी धीमी चाल से बढ़ रहा सफर है यह। इसी रफ्तार से चलते रहें तब तक तो उसका बेटा आ जाएगा। और, इसकी पत्नी लौट कर आ जाएगी। वक्त ज्यादा नहीं है।

सच्चाई का सामना करने से वह क्यों इतना हिचकिचाता है?

प्यारे! सच्चाई बहुत सुंदर है।

हम दोनो के बीच में जो कुछ चल रहा है... यही सच्चाई है।

आओ! हम इसे पूर्ण रूप से प्रकट होने दें।

आईसक्रीम।

उससे पूछना है कि वह क्या करने वाला है?

उसी को पूछना पड़ेगा। वह कहां कुछ पूछने वाला है।

वह यही बताएगा, "कुछ नहीं।" वह इंतजार कर रहा है कि मांगना हो तो वही मांगे।

"मेरे साथ डिनर खाने आओ," यों अनुरोध करेगी तो वह बताएगा, "ठीक है।"

यदि उसकी तरफ से मांग आए जो अच्छा रहेगा।

वह तो चुपचाप आईसक्रीम खा रहा है। बीच बीच में उसकी आंखें ऊपर उठतीं, उससे आंखें चार होते ही दूसरी तरफ झट फिसल जाती हैं।

मानो बता रहा हो, यों ही देखा था। कोई बात नहीं है।

हां, यों ही तुम्हारे साथ खाना खा रहा हूं।

हां, यों ही।

लेकिन तुम बुलाओगी तो आ जाऊंगा।

दिस फैलो इज गेटिंग ऑन माइ नर्वस। (यह शख्स तो मेरी नसों को पकड़कर आगे बढ़ रहा है।)

वह चुप रही। यह सोचकर चुप्पी साध ली कि वह घबरा जाए। कुछ न कुछ बोलने

की कोशिश तो करे।

एक क्षण, दो क्षण...

कप में चम्मचों के टकराने की ध्वनियां मात्र जोर से सुनाई दे रही हैं।

एकाएक उसने कहा, "आज मैंने एक मौत देखी।" अपने चहरे को प्रश्नचिह्न बनाते हुए वह उसके चेहरे को—जो अपनी ओर मुड़ गया था—टटोलने लगी।

"मैं हमेशा जिस बस स्टैंड पर बस के लिए खड़ा रहता हूं। एक आदमी, जो तेज चलती बस में लपककर चढ़ने लगा, फिसलकर गिर गया। पीछे की तरफ से जो बस आ रही थी, उसके नीचे आ गया—ओहो उफ् इट्..वाज हारिबल।"

अब तो उसे उपने चेहरे पर सहानुभूति दर्शानी है।

अपनी दृष्टि में इस समय सवाल और परेशानी का जो मिश्रित भाव है उसे निरोभूत करना है, इसलिए प्रसंग के लिए माकूल नहीं होगा।

आई हेट हिम् ।(मैं उससे नफरत करती हूं)।

ऐन मौके पर, अहमियत से लदे लमहों में अपने ऊपर आ पड़ी जिम्मेवारी को टालने के लिए वह इसी तरह की युक्ति को अपनाता है, हमेशा।

दुर्घटनाएं रोज होती ही रहती हैं। आदमी रोज मरते ही रहते हैं।

बट यू एंड आई आर एलाइव दिस मोमेंट।

वह कुछ न बोली।

"मेरा मन उदास है उस घटना को देखने के बाद।" उसने फिर कहा।

फिर क्यों मेरे साथ चले आए? आईसक्रीम क्यों खाया? काहे को?

"मृतक कितने साल का होगा?" मजबूरन उसने कुछ पूछा।

उसने बताया

उसने जो कुछ कहा वह दिल में अंकित नहीं हुआ। होठों के हिलने को निहारती रही। सचमुच कितने सुंदर होंठ है इसके।

बैरा।

उसने पैसा देना चाहा। मगर यह उसे जबर्दस्ती उसे रोकते हुए खुद पैसा दे डाली।

इस तरह उससे बदला लेने का संतोष हो रहा था।

दोनों बाहर आए। सवा दो बज गए थे। अब उस इमारत की भिन्न भिन्न मंजिलों में, अलग अलग कमरों में उन्हें कैद होना है।

उसे कल के अखबार को रूप देने में, और इसे अगले महीले के लिए महिला जगत का निर्माण करने में अपने को लगाना है। एक ही पूंजीपति के दो भिन्न भिन्न चेहरों का सृजन कराना है, साकार रूप देना है।

बट व्हाट अबाउट अवर ओन फेसिज? (लेकिन हमारे अपने चेहरे?)।

अंतरंग क्षणों में, परस्पर एक दूसरे की भावनाओं की सच्चाई को महसूस करके आत्म-विभोर हो जाएं इसके लिए तुम लालायित, उत्तेजित नहीं हो क्या?

क्या मुझे ही तुम्हें निमंत्रण देना है?

ओह! तुम मुझे ऐसा महसूस करने को विवश करते हो कि मैं वेश्या हूं।

शायद तुम्हें एक वेश्या की ही जरूरत है।

दोसा बनाने वाली, पूजा पाठ करने वाली वेश्या।

वह मुस्कराई।

उसने उसकी ओर देखा, मानो पूछ रहा हो, क्या बात है?

उसने सिर हिलाते हुए जताया कि कुछ नहीं।

दोनों अपने कार्यालय की ओर चलने लगे।